भा० दि० जैन-संघ-ग्रन्थमालायाः प्रथमपुष्पस्य षोडशमो दलः

श्रीयतिवृषभाचार्यरचितचूर्णिसूत्रसमन्वितम्

श्रीभगवद्गुणधराचार्यप्रणीतम्

कसायपाहुडं

तयोश्च

श्रीवीरसेनाचार्यविरचिता जयधवला टीका

[पञ्चदशमाधिकारे चारित्रमोहक्षपणानुयोगद्वारम्]

सम्पादकौ

पं० फूलचन्द्रः
सिद्धान्तशास्त्री, सिद्धान्ताचार्यः
महाबन्धस्य सम्पादकः,
धवलायाः सहसम्पादकः
धवला [प्र० सं०] आदि

पं० कैलाशचन्द्रः
सिद्धान्तशास्त्री, सिद्धान्ताचार्यः
स्याद्वाद महाविद्यालयस्य प्राचार्यः

प्रकाशकः

भा० दिगम्बर जैन-संघस्य, चौरासी, मथुरा

वीरनिर्वाणाब्दः २५१४

वि० सं० २०४५]

मूल्यं रूप्यकपञ्चविंशतिकम्

[ई० सं० १९८८

भा० दि० जैन-संघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाका उद्देश्य
संस्कृत, प्राकृत आदिमें निबद्ध दि० जैनागम, दर्शन
साहित्य, पुराण आदिका यथासम्भव
हिन्दी-अनुवाद सहित प्रकाशन

•

संशोधन में सहायक
श्री रतनचन्दजी मुख्तार, सहारनपुर
श्री पं० जवाहरलालजी सिद्धान्तशास्त्री, भिण्डर
श्री डॉ० सुदर्शनलालजी जैन, वाराणसी
(रीडर, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)

प्रकाशक
भा० दि० जैन संघ
ग्रन्थाङ्क १-१६

प्राप्तिस्थान
भा० दि० जैन संघ
चौरासी, मथुरा

मुद्रक
वर्द्धमान मुद्रणालय, जवाहरनगर कालोनी, वाराणसी

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala No 1—16

KASAYA-PAHUDAM

XVI

CHARITRAMOHA KSHAPANA

By

GUNADHARACHARYA

WITH

Churni Sutra of Yativrashabhacharya

AND

THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF

VIRASENACARYA THERE UPON

EDITED BY

Pandit Phoolchandra Siddhantashastri

EDITOR MAHABANDHA

JOINT EDITOR DHAVALA

Pandit Kailashachandra Siddhantashastri

Nyayatirtha, Siddhantaratna

PUBLISHED BY

THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT

THE ALL-INDIA DIGAMBAR JAIN SANGHA

CHAURASI, MATHURA

VIKRAMA S. 2045 VIRA-SAMVAT 2515 1988 A. C.

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala

Foundation year— Vira Niravan Samvat 2468

Aim of the Series—

Publication of Digambara jain Siddhanta, Darshana, Purana, Sahitya and other works in Prakrit etc., possibly with Hindi Commentary and Translation

DIRECTOR

SHRI BHARATAVARSIYA
DIGAMBARA JAIN SANGHA

To be had from—

THE MANAGER
SRI DIG. JAIN SANGHA
CHAURASI, MATHURA

Printed By
Vardhaman Mudranalaya
Jawaharnagar, Varanasi-10

800 Copies **Price Rs. ~~Twenty-five~~**

आभार

जयधवला ग्रन्थ का सोलहवाँ और अन्तिम भाग जिज्ञासु पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यधिक हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस भाग के साथ ही महामनीषी विद्वान् और जैन संघ के संस्थापक स्वर्गीय पं० राजेन्द्र कुमार जी का सपना पूरा हुआ है। महान विद्वान् स्व० पं० महेन्द्रकुमार जी का तथा स्वर्गीय पं० कैलाशचंद जी सिद्धान्तशास्त्री का भी ग्रन्थ की अभूतपूर्व सफलता हेतु सादर स्मरण करते हैं। ग्रन्थ के इस अन्तिम भाग के पूर्ण होने तक जैनदर्शन के महान् चिन्तक, वयोवृद्ध श्रीमान् पं० फूलचंद जी सिद्धान्तशास्त्री जी के अथक प्रयास के प्रति हम नत हैं। अशक्त अवस्था में भी पं० जी ने जयधवला ग्रन्थ की सफल टीका करके समस्त दि० जैन समाज को उपकृत किया है।

ग्रन्थ-प्रकाशन एवं संघ-संचालन में श्रद्धेय पं० जगन्मोहनलाल जी शास्त्री की छत्र-छाया और मार्गदर्शन भी संघ परिवार को प्रेरणाश्रोत रहा है।

जयधवला प्रकाशन के इस भाग में हम श्रीमान् ब्रह्मचारी श्री हीरालाल खुशालचंद जी दोशी, ग्राम मांडवे (सोलापुर) महाराष्ट्र के प्रति अत्यधिक आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने अपने विरक्त भाव और स्वाध्याय प्रेम से ग्रन्थ-प्रकाशन में तीस हजार रुपया दान स्वरूप प्रदान करके संघ को अभूतपूर्व सहयोग दिया है।

जयधवला के पूर्व-प्रकाशित भाग जो समाप्त हो गये हैं उनका पुनः प्रकाशन कराया जा रहा है, उसी क्रम में हमें दातार पाठकों का सहयोग मिल रहा है। अतः उन महानुभावों के प्रति भी हम हार्दिक आभारी हैं।

अन्त में भारतवर्षीय दि० जैन संघ के यशस्वी अध्यक्ष श्रीमान् सेठ रतनलाल जी गंगवाल के प्रति भी हम कृतज्ञ हैं जिनके सतत् नेतृत्व से संघ परिवार को सदैव प्रेरणा और बल मिलता है। इन प्रकाशनों की सफलता में वर्द्धमान मुद्रणालय, वाराणसी का भी महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा। अन्त में सभी सहयोगियों का सादर आभार मानते हैं।

विनीत

ताराचंद प्रेमी

प्रधान मंत्री

भारतवर्षीय दि० जैन संघ चौरासी, मथुरा

संघ के जयधवला और अन्य प्रकाशनों के लिए प्राप्त सहायता सूची

३०००००) ब्र० श्री हीरालाल खुशालचंद दोशी माँडवे

५०००) श्री सिंघई कन्हैयालाल टोडरमल परमार्थिक ट्रस्ट, कटनी

५०००) स्व० श्री मिश्रीलाल जी कटारिया की पुण्य स्मृति में

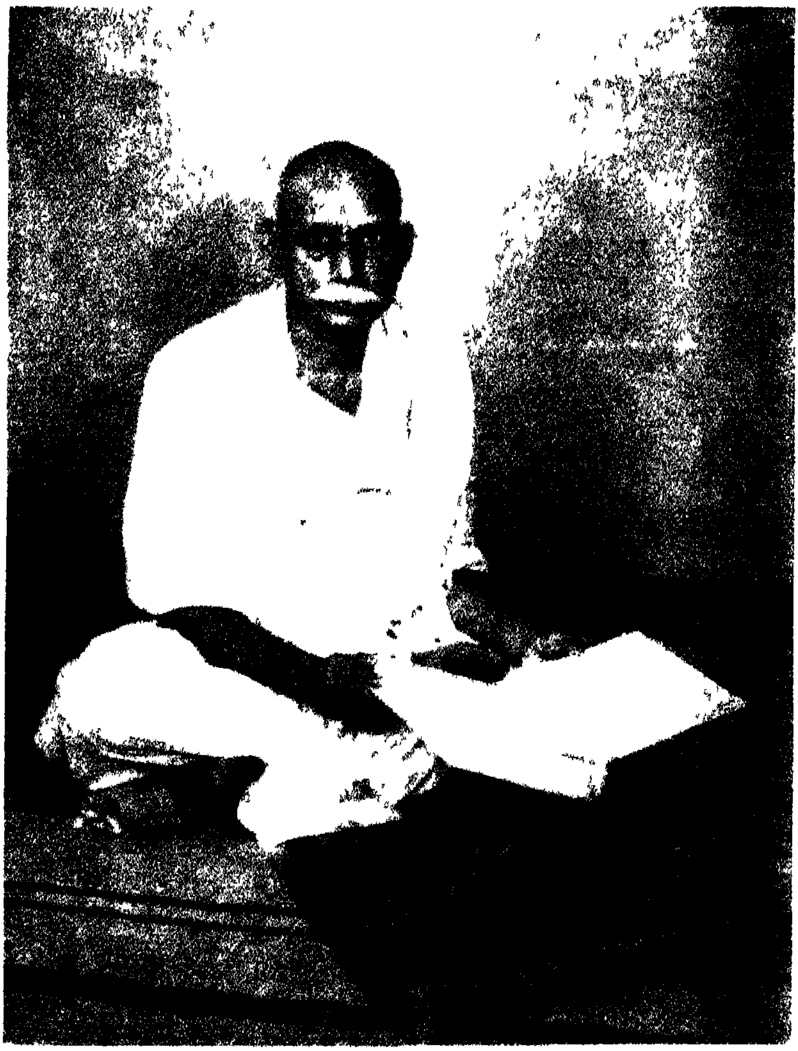
१०००) सवाई सिंघई कन्हैयालाल रतनचंद जैन शिक्षा ट्रस्ट

१०००) श्री कंचन वेन छोटेलाल शाह

१०००) ब्र० श्री निर्मल वेन भायाणी

१०००) श्री मंगल वेन केशवलाल शाह

—धन्यवाद सहित।



ब्र० श्री हीरालाल खुशालचन्द दोशी

श्री बालब्रह्मचारी हीरालाल खुशालचन्द्र दोशी

भा० दि० जैन संघ के संस्थापक प्रधानमंत्री स्व० शार्दूल पंडित राजेन्द्र कुमार जी द्वारा आरब्ध जयधवला प्रकाशन की पूर्णता (अर्थात् सोलहवें खण्ड में हमारे आर्थिक सहयोगी बालब्रह्मचारी श्री हीरालाल खुशालचन्द्र दोशी का जन्म वारबरी (फलटन) के श्रीमान् सेठ रामचन्द्र रेवाजी दोषी के धार्मिक एवं उदार परिवार में २३-८-१९२८ को सेठ खुशालचन्द्र के पुत्र रूप से हुआ था। यह परिवार दि० जैन मूलसंघी, सरस्वती गच्छी एवं बलात्कार गणी बीसाहूमड़ कुलीन मंत्रेश्वर गोत्री था। फलतः हीरालाल जी को बाल्हिते व्रत-शील से चाव था। इनके सहोदर फूलचन्द तथा सहोदराएं सौ० सोनूबाई कान्तिलाल गांधी (लसुर्डे) तथा सौ० मथुराबाई रतनचन्द दोशी (मांडवी) को भी श्रावक के रत्नत्रय (देवदर्शन, जलगालन तथा निशिभोजनत्याग) माता माणिकबाई के दूध के साथ मिले थे।

तत्कालीन वाणिज्य प्रधान कुलों की परम्परा के अनुसार हीरालाल जी की लौकिक शिक्षा सातवीं कक्षा तक ही हुई थी किन्तु फलटन की पाठशाला की धार्मिक शिक्षा का ओंकार ऐसा हुआ था कि वह कभी समाप्त ही नहीं हुई। स्वाध्याय इनका स्वभाव बन गया। तथा 'णाणं पयासयं' भावना का ही यह सुफल है कि उन्होंने पेज्जदोसपाहुड़ की पूर्णता के लिए सानन्द अर्थभार उठाया है। ज्ञानाराधक एवं निसर्गज विरत हीरालाल जी ने सोलह वर्ष की वयमें ही श्री १०८ नेमिसागर महाराज का समागम प्राप्त होते ही विधिवत् अष्ट मूलगुण ग्रहण किये थे तथा ६ वर्ष बाद (वि० नि० २४७६) धर्मसागर महासागर से दर्शन प्रतिमा की प्रतिज्ञा की थी। पूर्ण वयस्क हो जाने पर पितरों के आग्रह करने पर भी आपने विवाह को टाला और अपने आपको पुंवेदके आक्रमणों से बचा कर चलते रहे। तथा दो वर्ष बाद (वी० नि० २४७८) युगाचार्य श्री १०८ शान्तिसागर महाराज का समागम होते ही गुरू आज्ञा को मानते हुए ५ वर्ष के लिए ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। तथा इसकी समाप्ति पर २९ वर्ष की वयमें आजीवन ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की।

बालब्रह्मचारी जी ने किशोर अवस्था से ही अपने जीवन को तीर्थबन्दना, सद्गुरु-समागम और अन्तर्मुखता की ओर मोड़ दिया था। तीर्थबंदना के क्रम में १९६५ ई० में माता-पिता के साथ पूरे भारत की तीर्थयात्रा में तीन मास तक रहे। १६-६-१९६६ को माताजी का स्वर्गवास हो जाने के बाद इन्होंने पैत्रिक तथा स्वोपार्जित सम्पत्ति का दान आ० शान्तिसागर जिनवाणी प्रकाशक संस्थान, सन्मतिनर्सिंग होम, बाढ़पीडित सहायक संस्थान (माढ़ा), गोरक्षकमंडल (करमाल), महावीर ज्ञानोपासना समिति (कारंजा) आदि १६ धार्मिक संस्थानों को लगभग आधा लाख रुपया देकर गृहस्थ के आवश्यक दान का उत्तम पालन किया।

इनकी दानधारा का अधिक प्रवाह जिनवाणी-प्रकाशन में ही हुआ। और पिताश्री के चिरवियोग (२४-६-८८) तक इनकी आर्थिक प्रेरणा से वर्तमान मुनिमंघ आहार विचार सम्बन्धी दो हिन्दी पुस्तकें; तथा बालक, बालिका, प्रौढ़ आदि साधर्मी लोगों के आदर्श जीवन निर्माण के लिए त्रिकाल देवबंदना, प्रायश्चित्त, व्यन्तरागाधाना पसूते नुकसान, माताका पुत्रीको उपदेश पुस्तिकाएँ तथा आसादन, पाण्यामध्ये जीव, भक्ष्याभक्ष्य, आत्मचिंतन, इष्ट ग्रन्थ आदि के सात चार्ट लिख-लिखाकर प्रकाशित किये हैं। तथा अपने इस जिनवाणी-प्रतिष्ठा के भव्य मन्दिर पर जयधवला के अन्तिम खण्ड का प्रकाशन कराके मणिमयी उन्नत कलश रखा है।

बालब्रह्मचारी दोशी जी के अष्टाह्निका, रत्नत्रय, दशलक्षणी, आदि समस्त पर्व उपवास पूर्वक जाते हैं। वर्ष में लगभग आधे दिन उपवासी रहने वाले ब्र० हीरालाल जी का पूरा समय चिन्तवन—वाचन में जाता है। आगमविरुद्ध लिखने-बोलने वालों को अंकुश लगाना आपकी वीतरागकथा होती है। इस स्पष्ट एवं साधार कथनी—लेखनी के कारण कतिपय कुण्ठ लोगों ने आप पर शारीरिक आघात ही नहीं किये, अपितु मूर्च्छित हो जाने पर, मृत समझ कर एक बोरे में बाँधकर जंगल में फेंक दिया था। किन्तु 'धर्मो रक्षति रक्षितः' के अनुसार वर्षा के कारण आपको होश आया। तथा लोगों की परिचर्या से वे स्वस्थ होकर धर्म-समाज सेवा के साथ 'अंते समाहिमरणं' के मार्ग पर अग्रसर हैं। हमें संघ के इन संरक्षक-सदस्य का बहुमान है।

प्रा० लीलावंतीबहिन के सहयोग से

प्रकाशकीय

"स्व० भाई पं० राजेन्द्रकुमार जी कृष्ण थे मैं (सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र जी) सुदामा या विदुर था। और तुम्हें भी उन्होंने पार्थ माना था। यह संयोग है कि हमारा गुरुकुल (स्याद्वाद महा विद्यालय) कार्यक्षेत्र (भा० दि० जैन संघ) भी एक हैं। और हमारे समान तुम्हें भी जन्मकुल और निजीघर से ये अधिक मान्य हैं। अपने वेध-प्रस्ताव की अवमानना को भूलकर अपने एक संस्था व्रत को निभाओ। तुम्हारी उम्र, समझ और स्वास्थ्य अभी ईसरी रहने लायक नहीं है। मेरी स्मृति गड़बड़ा रही है।" स्या० म० वि० के अधिष्ठाता-कक्ष में एक सन्दर्भ पूछने जाने पर उन्होंने कहा था। अंतिमवार रांची जाने पर अपनी स्मृति, प्रतिभिज्ञाक्षीण स्थिति में "विद्यालय' और 'संघ' के साथ 'सन्देश" का भी नाम लिया था। तथा दुबारा जाने पर हमारे "गुरुकुल को अनिष्ट दो नामों के साथ रुक कर 'जयधवला" भी कहा था। 'ताराचन्द्र जी ने अंतिम खंड प्रारंभ करा दिया है' सुनकर वे लेट गये थे। और मैं संप्र० भी अपनी भा० दि० संघसेवा-निवृत्ति की ओट में इस पुण्य-प्रकाशन की पूर्णा की कामना करता था।

प्रसन्नता का विषय है कि संघ के अध्यक्ष (सेठ रतनलाल गंगवाल) तथा प्रधानमंत्री (पं० ताराचन्द्र जी) को सिद्धान्ताचार्य (पं० कैलाशचन्द्र जी) की भावना का स्वयमेव बहुमान है क्योंकि वे संघ की बौद्धिक 'वृत्तियों के अजस्र स्रोत थे। इन्होंने जयधवला की पूर्णा पर उनकी ओर से प्रकाशकीय लिखने को कहा क्योंकि संप्र० इस प्रकाशन के प्रारंभ के पहिले से ही संघ का लघुतम सेवक रहा हूँ। फलतः प्रथमखंड की प्रकाशन के समय आयी एक सैद्धान्तिक उलझन के विषय में, उक्त दोनों युगपुरुषों ने संप्र० के करावास जीवन में भी उससे परामर्श करके उसे मान्यता दी थी।

एकनिष्ठा, वीतराग वाचन-लेखन-कथन की मर्यादा तथा समयबद्धता की प्रतिमूर्ति सिद्धान्ताचार्य द्वारा जयधवला-कार्यालय को दिया समय (अपरा० २ बजे से ५ बजे तक) कुछ समय बाद जिनवाणी-सेवा का समय बनकर नित्यचर्या बन गया था। अपने परम प्रिय विद्यालय तथा संघ से आर्थिक सम्बन्ध छोड़ देने पर भी उनका यह समय भी आचैतन्य अविच्छिन्न था। वे लिखते—

देवपूजा (मन्दिर-निर्माण एवं मूर्तिप्रतिष्ठा) की समाज रुचि इतनी हो चुकी है कि अगली पीढ़ी को पूजाव्रती ही नहीं दर्शनव्रती भी खोजने पड़ेंगे। गुरुपास्ति भी चरम विकास पर है क्योंकि इस समय १९ आचार्य और उनके संघ तथा एकल-विहारी दि० मुनि विद्यमान हैं। यदि कमी है तो शास्त्र-प्रतिष्ठा की, क्योंकि यह शारीरिक होने के साथ-साथ मानसिक भी है। पूज्यवर गुरुवर गणेशवर्णी के समान महाव्रती-गुरुजन भक्तों को स्वाध्याय का नियम दिलाने पर या शास्त्र प्रकाशन पर उतना जोर नहीं देते, जितना प्रचार और प्रदर्शन के निर्माण-प्रकाशनों पर देते हैं। श्रमण-विद्या या जिनवाणी की ज्योति को प्रारम्भ से ही स्वाध्यायी व्रतियों और गृहस्थों ने प्रज्वलित रखा है। साक्षरता और विकसित-मध्यमवर्गता जैन समाज की विरासतें हैं। अतएव आज के विविध खर्चों के समान प्रत्येक गृहस्थ को पुस्तक-क्रय करके आजीविका के साथ जीव-उद्धार-कला का भी पालन करना चाहिये।

सन् ४२ से अरब्ध यह जयधवल-प्रकाशन-सत्र जिन धीमानों और श्रीमानों के सहयोग से पूर्णा पर आया है, संघ सबका त्रियोग से आभारी है। और आशा करता है कि वदान्य जैन

समाज अब अपनी दानधारा को शास्त्र-प्रतिष्ठा,प्रसार और प्रदान की ओर मोड़ कर विज्ञान से बढ़ी भौतिकताकी मृगमरीचिका में फंसने से मानवता को बचाने के लिए उसी प्रकार बढ़ेगा जैसे अबतक गजरथ और पंचकल्याणक प्रतिष्ठा प्रवाहृपतित प्रदर्शनों पर करता रहा है। और जीव उद्धार-कला के सरल उपायों से परिपूर्ण जैन-वाङ्मय के सम्पर्क में सुलभ करके संयमवाद की सुखद छाया में आने का अवसर प्रदान करके यथार्थ-प्रभावना का पुण्य लेगा। क्योंकि—

ये यजन्ति श्रुतं भक्त्या ते यजन्तेऽञ्जसा जिनम् ।
न किञ्चिदन्तरं प्राहु राप्ता हि श्रुत देवयोः ॥

विनीत,

कैलाशचन्द्र शास्त्री
मंत्री—प्रकाशन विभाग
भा० दि० जैन संघ

३० एफ, है० हु० को० रांची
२३-९-१९८७

(साभार डॉ० कंछेदीलाल जैन से)

जयधवला-गाथा

वेदों में 'वेद-पूर्व-जन'—

आगम ग्रन्थों का उद्धार एवं प्रकाशन जैन-जागरण की एक ऐसी घटना है जो श्रमण-संस्कृति के इतिहास में स्तूपांक (लैण्डमार्क) है। क्योंकि विश्व इतिहास तथा संस्कृति के विशेषज्ञों मैक्समूलर, आदि को भारत तथा विश्व इतिहास की दृष्टि से वेद की दुहरी उपयोगिता के ही समान यह भी मान्य होगी। पाश्चात्य विद्वानों शोधकों की इस वीतराग ज्ञान-कथा ने वेद के व्याख्याकारों का अनुगमन किया। तथा भारतीय परिवेश से दूर होते हुए भी प्रामाणिकता के साथ वैदिक साक्षियों के आधार पर इतिहास तथा संस्कृति का 'ताना-बाना' किया था। ईसा की ९ वीं शती तक अविकसित समाज के; पाश्चात्य लोगों के लिए, यह कल्पना भी सुकर नहीं थी कि कम से कम १५०० ई० पू० फैली; वैदिक संस्कृति से भी पुरानी कोई संस्कृति भारत या किसी भूभाग में रही होगी। पुरावशेषों के बलपर मिश्र की संस्कृति को लगभग ३००० ई० पू० मानने को आकृष्ट होने पर भी वे शोधक सोचते थे कि इस (मिश्रकी) संस्कृति ने भी पूर्व से कुछ लिया है। किन्तु तब तक भारतमें मिश्रसे पुराने पुरावशेष अप्राप्त थे। अतः वैदिक संस्कृतिको पशुपालक, कर्मकाण्डी तथा स्वर्गकामी आव्रजकों (आर्यों) की समाज-व्यवस्था मानकर भी, वेदों में आये, वेदपूर्व जनों (दास, व्रात्य, पणि, आदि) को कृषि-वाणिज्य प्रधान, अध्यात्मी एवं मोक्षकामी नागरिक जानकर भी वे पुरावशेष, साहित्यादि मय साक्षियों के अभावके कारण; उन्हें वैदिक समाज का ही विकसित रूप मानने को विवश थे। जैसा कि प्राच्य विद्वानों ने संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद् रूप-से वैदिक साहित्य का विकास-क्रम माना था। किन्तु वैदिक साहित्य के उदार परिशीलन तथा आर्यसमाजी अहिंसापरक व्याख्या ने स्पष्ट कर दिया है कि दास, व्रात्य या पणि वे जन थे, जिन्होंने वैदिक जनों का अनुगमन नहीं किया था। तथा जिनकी दिनचर्या, मान्यता भाषा तथा धार्मिक विधियां वैदिक जनों से भिन्न थीं। वे सम्पन्न थे और बलि या हिंसामय धर्माचरण को नहीं मानते थे। उनके आराध्य वनवासी 'शिश्नदेव' थे, जो कि 'वातरशन' होते थे। यदि अपने प्रमुखों के दासान्तनामों के कारण उन्हें 'दास' कहा गया था तो कृषि-वाणिज्यके कारण वे पणि थे तथा व्रतों (नियमों-यमों) के कारण व्रात्य थे।

व्रात्य (श्रमण)-विद्या—

व्रात्यों के शिश्नदेवों (अचेलों दिगंबरों) की साधना से मोह की समाप्ति पर आत्मा का शुद्ध एवं पूर्ण ज्ञानमय रूप 'आगम' था। जिसे साधक विशेषजन (गणधर) ही समझते थे तथा शब्द रूप देते थे, यह ग्रन्थ कहा जाता था। वह बारह अंगों (भागों) में वर्गीकृत किया गया था। तथा इसका पठन-पाठन (वाचन) गुरु-शिष्य रूपसे चलता था अतः इसे 'श्रुत' नाम मिला था। यह क्रम व्रात्यों के अंतिम शिश्नदेव महावीर के निर्वाण की छठी-सातवीं शती तक चलता रहा। इसके बाद कलि (पंचम) कालके प्रभाव से स्मृति घटती गयी तो बारहवें अंग दृष्टिवाद में प्रधान, संसारके कारण और मोक्षके बाधक मोह-कर्म को विवरण को गुणधर भट्टारक ने लिखित गाथा बद्ध किया तथा धरसेनाचार्य के शिष्यों (पुष्पदन्त-भूतवलि) ने षट्खंडागम 'को भी लिपिबद्ध किया इस प्रकार आगम को शास्त्ररूप मिला था। और मौर्य कालीन युगमें मगधके द्वादश वर्षीय अकालके कारण शिश्नदेवों में आये सुखशीलता तथा उपाश्रय-निवास के कारण गौतमबुद्ध की मज्झिमा-वृत्ति से

अनुकृत; सचेलता के आने पर बने व्रात्य-सम्प्रदाय में गणधर ग्रथित आगम के आचार, सूत्र, आदि ग्यारह अंगों के बचे-खुचे रूप को देवर्धिगणी ने वीर निर्वाण की दशवीं शती में स्मृति रूप से लिपि-बद्ध कराया था। अतः शास्त्र रूप में सुरक्षित व्रात्य श्रमण विद्या का यह विशाल लिखित रूप, संभव है कि ऋग्वेदकी हस्तलिखित प्रति की अपेक्षा, पूर्व नहीं तो सम-या किंचिदुत्तरकालीन सिद्ध हो। किन्तु इसकी भाषा (प्राकृत), संस्कृति तथा अध्यात्म स्पष्ट संकेत करते हैं कि इन्द्र (उग्र), सोम, अश्व तथा बाणों के कारण आव्रजकोंने अहिंसक, संयमी, संपन्न, रथयायी तथा गदा-खड्ग धारी दस्सों या व्रात्यों पर विजय पाने के बाद उनके समान ग्राम-पल्ली निवास, कृषि तथा संयम को अपनाया था। यज्ञविधि सूक्त 'ब्राह्मणों' के बाद वनवासी शिश्नदेवों को देखकर 'अरण्यक' विधि अपनायी। तथा उनके निकट समागम (उप-निषत्) में आने पर जन्मान्तर मय दर्शन या अध्यात्म का विकास किया था। इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान का यह सुफल था कि पातञ्जलि काल तक शाश्वत विरोधी कहे जाने वाले श्रमण (व्रात्य) ब्राह्मणों (वैदिकों) में एक शाश्वत समन्वय हो गया था। जिसे लगभग तीन हजार वर्ष बाद हुए वेदके संस्कृत टीकाकार सोच भी नहीं सकते थे। और चमत्कार युग को चकाचौंध के कारण 'शिश्न एव देवः' तथा 'वैदिक-वृत्ताद्वाह्यः व्रात्येदि' करने को विवश हुए होंगे।

श्रमण-जागरण—

उक्त वेदपूर्व श्रमण-विद्या के आधार पर उत्तर कालमें लिखित चूर्णियों, वृत्तियों तथा भाष्यों का स्वाध्याय करने के कारण भारतीय श्रमण (दिगम्बरों) समाजने भी भारत के सांस्कृतिक-जागरण (रीनेसां) के लिए लगभग एक शती पहिले (वी० नि० २४२०) कदम बढ़ाया था। तथा संघधर्म होने के कारण 'संघे शक्तिः कलौयुगे' को चरितार्थ करते हुए 'महासभा' का सूत्रपात किया था। यह एक ऐसा मंच था जो अपनी पुण्य तथा पितृभूमि में बौद्धिक (अपेक्षावाद) तथा शारीरिक (अहिंसा) सह-अस्तित्व की उस धारा को प्रवाहित रखना था, जो आव्रजको के पूर्ववर्ती व्रात्यों के युगमें जनतंत्र, जनभाषा तथा जनकल्याण के रूपमें प्रचलित था। किन्तु मुस्लिम-विजय के साथ आयी धार्मिक असहिष्णुता का कतिपय श्रमणो मे प्रवेश हो चुका था। वे भी धार्मिक विधि-विधान की अपेक्षा अपनी मान्यता को ही आगमपंथ मानने लगे थे। फलतः २८ वर्ष वाद वे लोग इस संघ-टनसे अलग होने को विवश हुए जो श्रमण-विद्याके मूल आधार, क्षेत्र, काल- द्रव्य (व्यक्ति) और भाव (वैचारिकता) की अपेक्षा पुरातन को समझते और पालन करते थे। इस दूसरे श्रमण संघटन ने श्रमण-परिषद् रूपसे अपना कार्य करते हुए समाज के आधुनिकीकरण को लक्ष्य बनाया था। किन्तु आर्यसमाज ने सनातन वैदिक समाज की रूढ़ियों आदि पर आघात के साथ साथ मूर्ति-पूजा, आदि पर भी प्रहार करके आद्य मूर्तिपूजकों (श्रमणों) को भी घेर लिया था। तथा आस्तिक नास्तिक की संकुचित परिभाषा (नास्तिको वेद निन्दकः) पर मुग्ध हो कर श्रमण समाज पर भी आक्षेप करने प्रारम्भ कर दिये थे। परिषदके उत्साही सदस्य सामाजिक-सुधारों में व्यस्त रहने के कारण आक्षेप-समाधान की स्थितिमें नहीं थे। तथा स्वयंभू श्रमणविद्या-निष्णात गुरु गोपालदास जी के अस्त के बाद इनके शिष्य धीमान् भी मूलज्ञ होनेके कारण आधुनिक विधिका शास्त्रार्थ (डिबेट) से संकुचाते थे। और इनके अनुयायी श्रीमान् तो अपनी संस्कृति की उच्चता दर्शाने के लिए कर ही क्या सकते थे।

संघोदय—

प्रथम विश्वयुद्धके बादके दशकों ने विश्वके साथ भारत तथा श्रमण-समाजमें ऐसे विचारकों तथा स्वाध्यायियों का दिया था जो सभी संघटनों को चकाचौंध से बचते हुए वीतराग रूपसे

ज्ञानाराधना करते थे। ऐसे लोगों में पं० मंगलसेन वेद-विशारद, अर्हद्दास, लाला शिब्बामलजी, आदिने पं० राजेन्द्रकुमार जी को अपना मुख बनाया। और इन शार्दूल-पंडित ने भी अपने दादागुरु गोपालदास को याद करके आर्यसमाजियों को चकित कर दिया। तथा सिद्ध किया कि पत्थरकी मूर्ति ही मूर्ति नहीं है। अपितु वेदमंत्रों के अक्षर भी वैदिक ज्ञान-ध्वनि की मूर्तियां हैं। इस प्रथम विजयके बाद केकड़ी, संभल, पानीपत, खतौली, ग्वालियर, मेरठ, झांसी, ज्वालापुर, आदि दर्जनों स्थानों पर सफल शास्त्रार्थों की लड़ी लग गयी। और गुणग्राही समाजने इनको भरपूर सहयोग दिया। अनायास ही १९३१ में 'भा० दि० जैन शास्त्रार्थ 'संघ' श्रमण संस्कृति के संरक्षक रूपमें सामने आया। प्रतिभा तथा साहसके धनी शार्दूलपंडितजी ने ७ वर्ष तक शास्त्रार्थ का मोर्चा अपने अग्रज साथियों के साथ एकाकी सम्हाला। और आर्यसमाजी अभियान के दण्डनायक ने ही कर्मानन्द रूप मे श्रमण-धर्म स्वीकार कर लिया। तथा शास्त्रार्थ की चुनौतियों को आर्य समाजियों ने भी वीतकाल मानकर राष्ट्रीय-महासभा (कांग्रेस) के पूर्वरूप में आकर 'सर्व धर्मे समानत्वं' को अपना लिया था।

स्व० शार्दूल पंडितजीने भी श्रमण समाज के स्थितिपालकों तथा सुधारकों का सहयोग प्राप्त होते ही उपदेशक-विद्यालय, साहित्य प्रकाशन, उपसर्ग निवारण, तीर्थ संरक्षण (बिजोलिया केस खेखड़ाकांड तथा सिद्धान्तो की रक्षा पूर्वक रुचि समन्वयी दृष्टिके लिए पत्रिका-पत्र प्रकाशन पर जोर दिया। इसके लिए उन्होंने अपने गुरुओ को सम्मान दिलाया, साथियों को उनकी क्षमता के अनुरूप त्रिविध सहयोग देकर समाजमें प्रतिष्ठित किया तथा अनुजों को खोज-खोज कर देशधर्म की सेवा का व्रती बना दिया। भा० दि० जैने संघ श्रवण-समाज की कनिष्ट भा० संस्था होने पर भी देखते-देखते प्रधान कार्यालय (संघभवन, चौरासी-मथुरा), (मुखपत्र, जैनदर्शन, जैनसन्देश यदि समस्त विद्वान अदम्य शास्त्रार्थी संस्थापक प्रधानमंत्री जी के 'विरोध-परिहार' का अनुकरण करते हुए 'जैनदर्शन' के द्वारा आगमके नामपर चली आयी प्रवाह-पतित धार्मिक-सामाजिक मान्यताओं की शुद्ध आगमिक व्याख्या करके प्रवचन तथा प्रचार का आदर्श उपस्थित करते थे, तो 'जैनसन्देश' भी सिद्धान्ताचार्य के सम्पादकीयों के कारण समाजका यथार्थ एवं निर्भीक मार्गदर्शक साप्ताहिक बन गया था। और अनजाने ही संघके युवक विद्वानों (स०/श्री लालबहादुर शास्त्री, बलभद्र न्या०, ती० आदि) को व्यापक स्तर का सम्पादक बना सका था। अनजाने ही 'सन्देश' ने पाश्चात्य ढंगके उदारशिक्षित व्यक्तियों को 'शंकासमाधान, पत्राचार द्वारा धर्मशिक्षण' आदि स्तम्भों में ला कर जहां अन्य पत्रों को दिशा दो थी, वहीं इन स्वयंबुद्ध स्वाध्यायियों (स्व० रतनचन्द्र मुख्तार, श्री नेमिचन्द वकील, आदि) को समम्मान सार्धमियों का सेवा-व्रती बनाया था। इस 'गुणिषुप्रमोदं' का चरम विकास; आजोवन स्वान्तः सुखाय श्रमण-इतिहास एवं संस्कृति के साधक डा० ज्योतिप्रसाद द्वारा सम्पादित 'शोधांक' था। जो बौद्धिक जगत को भी मान्य था और दशकों अजैन शोधकों को जैन विषयोंकी शोध में लगा सका था), तथा दर्जनों तत्त्वोपदेशकों और भजनोपदेशकों की जीवित एवं कर्मठ संस्था बन गया था तथा समस्त अधिकारियों, कार्यकर्त्ताओं और कर्मचारियों ने 'भारत-सेवक-समाज' के समान नाममात्र का 'योगक्षेम' लेकर आजीवन सेवा व्रत लिया था। यह संघके संस्थापक प्रधान मंत्रीजी का ही व्यक्तित्व था जिसने पंचकल्याणक रथोत्सव करके सामाजिक उपाधि (श्रीमन्तसेठ) लेने के लिए तत्पर श्रीमान् को सिद्धान्त ग्रन्थ-प्रकाशन की ओर मोड़ दिया था। तथा उनके गुरु स्व० पं० देवकीनंदनजी तथा प्रशंसक डा० हीरालाल तथा अज जमनालाल कलरैया ने इस योजना को सोत्साह कार्यरूप दिलाया था। तथा श्रीमानों में स्व० पं० हीरालाल (साढूमल) ने इस पुण्य प्रकाशन का ओंकार किया था।

तथा स०/श्री पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री एवं बालचन्द्र शास्त्री के पूर्ण सहयोग ने प्रगति दी थी। तथा मध्य में डॉ० आ० ने० उपाध्ये भी डॉ० हीरालाल के परम सहयोगी हो गये थे।

संघ का व्यापक रूप—

उक्त प्रकार से साहसिक एवं विवेकी जैन-जागरण के अग्रदूत पंडित जी (रा० कु०) के उपदेशक-विद्यालय के स्नातक स/श्री पं० सुरेशचन्द्र जी, इन्द्रचन्द्र जी, लालबहादुर शास्त्री, धर्मचन्द्र, नारायण प्रसादादि तत्त्वोपदेशक तथा मास्टर रामानन्द, भैयालाल भजनसागर, पं० विनयकुमार, (जीवन-धनदानी) ताराचन्द्र प्रेमी, सुभाषचन्द्रादि भजनोपदेश समाज पर छा गये थे। पंजाब के स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों में मुद्रित 'जैनधर्म बौद्धधर्म की शाखा है, हिसार शिक्षा विभाग का 'जैनियों को उच्च जाति में शुमार न करने' का परिपत्र, आदि जैनत्व की अवज्ञाकर प्रवृत्तियाँ भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं रहीं। और इस प्रकार संघ ने भारतीय इतिहास संशोधनादि बौद्धिक कार्यों को अनायास ही किया था। १९३२ में कुड़ची (वेलगांव-मुंबई प्रान्त) में हुए जैनों के दमन और जिनमूर्तिभंजन के विरुद्ध तो संघ ने जिलाधिकारी को ही नहीं अपितु प्रान्तीय सरकार को भी हिला कर न्याय करने के लिए बाध्य किया था। इसी प्रकार मांडवी (सूरत) उदगीर (हैदराबाद), इन्दौर (होल्करराज्य) में दि० मुनियों के विहार पर लगे सरकारी आदेशों की धज्जियाँ ही नहीं उड़वा दी थीं, अपितु 'भगवान वीर का अचेलक धर्म', 'दिगम्बरत्व एवं जैनमुनि' आदि ट्रैक्ट प्रकाशन करा के शिश्नदेवत्व के रहस्य की प्रविष्ठा भी की थी।

प्राग्वैदिक श्रमणविद्या को पठन-पाठन में लाने के लिए ब्रह्मणत्व के अभेद्य गढ़, तथा प्राच्य-अध्ययन के प्रमुख केन्द्र गवर्नमेंट संस्कृत (क्वीनस्) कालेज को पंजाब के संस्कृत शिक्षा विभाग के समान जैनदर्शन-सिद्धान्त के पाठ्य-क्रम को चलाने के लिए तत्कालीन प्राचार्य डॉ० मंगलदेव शास्त्री के सहयोग से सहमत किया था। जैन विद्या तथा विधा की समस्त प्रवृत्तियों पर स्व० पं० राजेन्द्रकुमार जी अपने परम सहयोगी पुण्य श्लोक बा० दिग्विजय सिंह जी, स्व० पं० कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्ताचार्य, चैनसुखदास-न्यायतीर्थ, अजितकुमार शास्त्री तथा अनेक युवक विद्वानों के साथ संघ के उदय (१९३१) के बाद तीन दशकों तक छाये रहे। तथा संघ को परिवार समझ के कुलपति के समान प्रत्येक साधर्मी की उलझन को अपना समझते थे। तथा सहयोगियों (लालबहादुर शास्त्री भजनसागर, पथिकजी के अपवर्त्यों के निवारक थे। श्रीमानों के जैन-समाज में धीमान्-नेतृत्व तब उजागर हुआ जब कलकत्ता के वीरशासन जयन्ती महोत्सव में उनकी प्रेरणा से 'दि० जैन विद्वत् परिषद्' साकार होकर सैद्धान्तिक विषयों पर अधिकृत वक्ता बनी।

जयधवल—

मोक्षमार्ग प्रकाश (खड़ी बोली), जैनधर्म, रामचरित, वरांगचरित, ईश्वरमीमांसा, ऋषभदेव, आदि संघ के प्रकाशनों के शिखर पर जयधवला के मणिमयी कलश को रखने के आद्य मंगलाचरण (जयधवलसंपादन) ने ही उक्त भूमिका को बना दिया था। जिसे वे करणानुयोग के सर्वोपरि विद्वान अपने सहाध्यायी पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री की वाणिज्योन्मुखता का निग्रह करके आजीवन जिनवाणी सेवा-साधना का सुयोग मिलाकर के कर चुके थे। क्योंकि आधुनिक जैन समाज संघटन के सूत्रधार, परिवार की उदात्त परम्परा के सर्वोपरि निर्वाहक श्रावक-शिरोमणि साहु शान्तिप्रसाद जी ने 'जयधवला' सम्पादन-प्रकाशन को मूर्तिग्रन्थमाला से भी बढ़कर अपना कार्य माना था। तथा एक आकस्मिक-स्थिति और आत्मनिह्नवी स्वभाव के कारण आजीवन अपनी जयधवला-प्रकाशन की आद्य-स्रोतता को अप्रकट ही रखा है। 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि' के अनुसार प्रथमखंड के बाद द्वि०

खंड को द्वि० विश्वयुद्ध ने विलम्बित किया था। इसके बाद १९५१ में समाज की अनावश्यक चिन्ता का समाधान करने के लिए मा० संस्थापक प्रधानमंत्री जी के अवकाश पर चले जाने पर आयीं स्थितियों का आर्थिक समाधान, दानवीर सेठ भागचन्द्र जी (डोंगरगढ़) तथा उनकी परमसेवा-भावी धर्मात्मा पत्नी नर्मदाबाई जी ने किया था। सेठ दम्पत्ति में; यदि सेठजी संघ जी सेवाओं और पं० जगमोहनलाल जी को आदर्श मानते थे तो सौ० सेठानी बाई पं० फूलचन्द्र जी के जीवन से प्रभावित होकर उन्हें अपना सहोदर ही मानती थीं। फलतः इनके सहयोग से तृतीय खंड के १९५५ में प्रकाशित होने पर यह योजना चली थी। तथा अनेक श्रुत भक्तों एवं बालब्रह्मचारी बालचन्द्र हीराचन्द्रजी दोशी के स्वयं-दत्त सहयोग से पूर्णापर है। हम इन सबको सादर एवं साभार स्मरण करते हुए जयधवला प्रकाशन की पूर्णा पर मूल-प्रेरक स्व० पं० राजेन्द्रकुमार जी तथा श्रा० शि० स्व० शान्तिप्रसाद जी का (सचित्र) स्मरण करते हुए उन्हें भी नमन करते हैं।

जो सुअणाण सरीरो जिणवयणाणुगामिनां अग्गो।
जइधवल विति कत्ता गुरु वीरसेणो/सेणजिनो चिरं जयदु ॥

'सरलागार'
बी २७/८७ ए, दुर्गाकुंड मार्ग
वाराणसी–५

खुशालचन्द्र गोरावाला

जयधवला-प्रकाशन के आत्मनिह्नवी मूल स्रोत



धीमान्

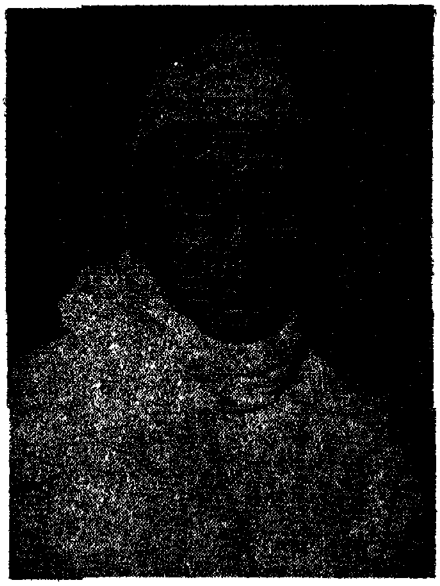
युगपुरुष शार्दूलपण्डित स्व० राजेन्द्रकुमारजी जैन



श्रीमान्

श्रावकशिरोमणि स्व० साहु शान्तिप्रसादजी जैन

सिद्धान्तशास्त्री पं. फूलचन्द्रजी



उदय—आधुनिक जैन-जागरण के धीमान् अग्रदूत गुरुवर गणेशवर्णी महाराज के प्रसाद से पूरा भारत दि० जैन पाठशालाओं की दीपमालिका से जगमगा उठा था। यह इनका ही प्रभाव था जिससे प्रेरित हो कर बमराना के सेठ बन्धुओं में कनिष्ट स्व० सेठ लक्ष्मीचन्द्र जी ने अपनी जमीदारी-जायदाद के चौदह आना की निधि (ट्रष्ट) करके 'महावीर दि० जैन पाठशाला' साढूमल को स्थापित करके स्थायो भी कर दिया था। तथा स्व० पं० घनश्याम दास को प्राचार्य पद पर बुला कर इस पाठशाला को मेधावी छात्रों के परम आकर्षण का केन्द्र बना दिया था। इस पाठशाला के आद्य छात्रों में करणानुयोग के मूर्धन्य विद्वान् सिद्धान्तशास्त्री फूलचन्द्र जी भी थे। और अपनी प्रखर बुद्धि तथा तल्लीनता के कारण गुरुओं को विशेष प्रिय हो गये थे। आपका जन्म झांसी जनपद के सिलावन ग्राम के दृढ़ जैन संस्कारी साव दरयावलाल के तृतीय पुत्र रूप मे हुआ था। फलत: परिवार के धर्मपालन की प्रेरक एवं साधक माता जानकी बाई से शिशु फूलचन्द्र को धर्म प्रेम भरपूर प्राप्त हुआ था।

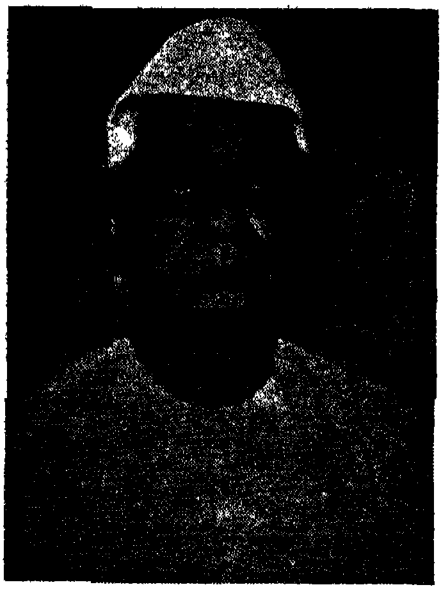
शिक्षा-कार्य—गांव के मदरसा की प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करने के पहिले ही इन्हें साढूमल पाठ शाला भेज दिया गया था। और इनके सातिशय क्षयोमशम के कारण 'स्याद्वाद महा विद्यालय' तथा गुरु गोपालदासजो के 'सिद्धान्त विद्यालय' में गुरुओं एवं उनके प्रथम शिष्यों (स्व० पं० देवकीनन्दनजी, वंशीधरजी, आदि) के मुख से धर्मशास्त्र पढ़ने का भी सुअवसर प्राप्त हुआ था। अपने प्रखर पांडित्य के कारण इन्हें जबलपुर शिक्षा मन्दिर में आमन्त्रित किया गया था। तथा पं० घनश्यामदासजी के खुरई पाठशाला चले जाने पर आपने अपने प्रथम गुरुकुल (महावीर पाठशाला, साढूमल) का आचार्यत्व स्वीकार करके उसके प्रति कृतज्ञता का प्रदर्शन किया था। इसी प्रकार स्याद्वाद महा विद्यालय-वाराणसी के आदेश की शिरोधार्य करके उसके प्राचार्यत्व को सम्हाला था। और काशी विश्वविद्या० की भारतीय धर्म-शिक्षण योजनान्तर्गत जैनधर्म प्रशिक्षण का कार्य करके कला-विज्ञान-इंजीनियरिंग आदि कक्षाओं के स्नातकों को धार्मिक शिक्षा दी की। वाराणसी से आप बीना पाठशाला में आये। और अपनी करणानुयोग प्रखरता के कारण दक्षिण भारत से बुलाये गये वहां नातेपूत-अमरावती में भी अपने ज्ञान की गंगा बहाते रहे। तथा 'धवल' सिद्धान्त-ग्रन्थों का संपादन आरम्भ होने पर डा० एवं पं० हृरीलाल-द्वय के दांये हाथ बन गये। और अपनी सूक्ष्म पकड़ के कारण समुचित पदपूर्ति को लेकर उठे मतभेद से हृट कर वाणिज्य की ओर मुड़े। किन्तु इनकी सुझ-बूझ के पारखी भा० दि० जैनसंघ के संस्थापक तथा इनके सहाध्यायी को यह सहन नहीं हुआ। फलत: इनकी क्षमतानुसार जयधवला-सम्पादन इनको ही अग्रसर करके किया

गया। प्रथम भाग तक स्व० पं० महेन्द्रकुमार जी इनके सहयोगी थे और 'संघ के बौद्धिक स्तम्भ स्व० पं० कैलाश चन्द्रजी अन्त तक भूमिका, परामर्श तथा प्रकाशन मंत्री रूप से सहयोगी रहे हैं। तथापि इसकी पूर्णा की वेला में आप एकाकी हैं।

अपने स्वतंत्र चिन्तन के कारण सिद्धान्त शास्त्रीजी को जीवन यात्रा में अनेक विषम घाटियों से गुजरना पड़ा है। इसमें उनकी साहसी पत्नी सौ० पुतली बाई उनकी परछांयी के समान रही हैं। संघके सम्पर्क में आने पर आपकी विधायक-वृत्ति ने जोर पकड़ा। और सन्त गुरुवर गणेश वर्णी के नाम पर स्थापित ग्रन्थ-माला दानवीर सेठ भागचन्द्र जी डोंगरगढ़ तथा उनकी पतिपरायणा धर्मपत्नी नर्मदा बाईजी के प्रथम तथा प्रमुख सहयोग से 'गणेशवर्णी शोध संस्थान' रूप में विकसित हुआ है। यह संस्थान आर्ष ग्रन्थों के प्रकाशन के साथ श्रमण-विषयों में कार्य करने वाले शोध स्नातकों का भी बौद्धिक तथा आर्थिक मार्गदर्शक है। तथा इस परिणत वय और क्षीण कायिक स्थिति में भी जिनवाणी हो सिद्धान्तशास्त्री जी की चिन्तन-लेखन-प्रवचनकी एकाकी धारा है।

रतनलाल गंगवाल
अध्यक्ष
भा० दि० जैन संघ

सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्रजी



सामन्तशाही रसूक में पले और बढ़े लाला मुसद्दीलालजी (नहटोर जि० बिजनोर) को कार्तिक शु० १२ सं० १९६० (१९०३) में द्वितीय पुत्रका जन्म हुआ था। जिसका नाम कैलाशचन्द्र रखा गया था। माता सौ०………देवी का लालन-पालन उस समयकी शुद्ध तेरापंथी मान्यताके वातावरण में हुआ था। फलतः हस्तिनापुर, शिखरजी यात्रा प्रसंग से शिशु कैलाश को गुरु गोपालदास तथा ह०-गुरुकुल और स्याद्वाद महा विद्यालय देखने पर उन्होंने भी अपने छोटे बेटे को वही पढ़ानेका विचार कर लिया था। क्योंकि उस समय के प्रमुख श्रीमान् देवकुमार रईश लाला जम्बूप्रसाद देवीप्रसाद आदि भी अपने पुत्रों (प्रद्युम्नकुमारजी, बाबू निर्मलकुमार) अनुजों (उमरावसिंहादि) आदि को धार्मिक शिक्षा के लिए भेजते थे। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद बालक कैलाशचन्द्र जी भी रा० ब० द्वारकाप्रसाद जी को प्रेरणा से १९१४ मे वाराणसी आये। तथा अपनी लगन, श्रम और क्षयोपशमके कारण गुरुओं के स्नेहभाजन तथा साथियों के आदरणीय हुए। राष्ट्रपिता महात्मागांधी के विद्यालय में निवास तथा राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य संग्राम की छावनी 'काशी विद्यापीठ' की पड़ोस के कारण विषय कंठस्थ होने पर भी १९२१ में अंग्रेज शासकीय शिक्षा (परीक्षा) का बहिष्कार करके मुरेना चले गये। क्योंकि उस समय स्याद्वाद महाविद्यालय में मुरेनादि के उच्च कक्षा के छात्र, व्याकरण, न्याय तथा साहित्य की उन्नत शिक्षा के लिए आते थे। और यहां के छात्र गुरु गोपालदासजी से सिद्धान्त शास्त्र पढ़ने वहां जाते थे। इस प्रकार इन्हें आधुनिक पाण्डित्य के आदि गुरुवरों (गणेशवर्णी और गा० दा०) का शिष्यत्व प्राप्त हुआ था।

अध्यापकत्व—

शिक्षा समाप्त होते ही १९२३ में इनकी नियुक्ति अपने गुरुकुल (स्या० म० वि०) के धर्माध्यापक पद पर हो गयी थी किन्तु अस्वास्थ्यके कारण ये अधिक समय तक सेवा न कर सके। १९२७ में धर्माध्यापक का पद रिक्त होनेपर आप को पुनः बुलाया गया। तो अल्पवेतन होने पर भी अपने गुरुकुल-सेवा को धन्य माना। और कुछ वर्ष के बाद आजीवन यहीं रहने का व्रत कर लिया। क्योंकि यहां के पठन-पाठन-प्रवचनने उनकी सहज क्षमताओं (सूक्ष्म विषय ज्ञान, मोहक वक्तता और सरल भाषा) को जग जाहिर कर दिया था। यह वही दशक था जिसमें इनके अग्रज सहाध्यायी पं० राजेन्द्र कुमार जी आर्यसमाज के निग्रहार्थ मोर्चा सम्हाल कर शास्त्रार्थ संघ की स्थापना कर चुके थी। और शोधक-लेखक-सभाचतुरों के सहयोग की तलाश में थे।

मणिकांचन योग—

अपनी उदात्त प्रकृति के अनुसार शार्दूल पंडित (रा० कु०) जी ने गुरुओं के आशिष के साथ सहाध्यायियों को शा० संघकी कार्यकारिणी में लिया और पुस्तिका (ट्रैक) लिखने-सम्पादन का दायित्व सिद्धान्ताचार्य पर छोड़ा। जिसे अपनी समयज्ञता और समयबद्धता के बलपर इन्होंने ऐसा सम्हाला की कुछ समय में ही ये मूर्धन्य लेखक-सम्पादक माने जाने लगे थे। तथा जैनदर्शन और जैनसन्देश के द्वारा इन्होंने प्रवाहपतित अन्य जैन पत्रों को भी साप्ताहिकादि के स्तर पर आने की मिशाल पेश की थी। आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार तथा पं० सुखलाल जी के आदर्श से प्रेरित होकर प्राचीन ग्रन्थ सम्पादन के गंभीर कार्य को अपने युवक सहयोगी न्यायाध्यापक स्व० पं० महेन्द्रकुमार को साथ लेकर प्रारम्भ किया तो उसमें भी ऐसी सफलता प्राप्त की थी कि धवलादि के प्रकाशक भी इनसे परामर्श करके प्रेस कापी को अंतिम रूप देते थे।

जैन पाण्डित्य की पराकाष्ठा—

सिद्धान्तशास्त्री जी की उक्त परिपक्वता का कारण उनकी 'आत्तं पाल्यं प्रयत्नतः' प्रकृति थी। दुबारा प्राचार्य (स्या० म० वि०) होने पर वे पाठकत्व में इतने सफल रहे कि इन्हें आधुनिक परमगुरुवर गणेशवर्णी जी 'विद्यालय का प्राण' कहते थे। तथा वास्तव में इनका प्राचार्यत्व स्या० म० वि० का स्वर्णयुग था। भा० दि० जैन संघ यदि आर्य समाजी शास्त्रार्थ युग का समापक तथा प्राच्य पंडिताऊ-शोधपरिहारक, आधुनिक प्राचरक विद्वानों का जनक तथा दि० समाज का आदर्श संघटन दायक; शार्दूल पंडित (रा० कु०) के कारण था तो सिद्धान्ताचार्यजी की भी लेखिनी, वक्तृता, एवं शोधके बलपर पत्रकारिता का आदर्श, शोधकी सर्वांगता एवं जिनवाणी के हार्द की सरल सुबोध एवं सुवाच्य व्याख्या एवं लेखन का मार्गदर्शक हो सका था। सिद्धान्त शास्त्री जी की इस लोकप्रियता का कारण उनकी तटस्थ एवं जागरूक दर्शकता थी। वे कहा करते थे कि मैं धार्मिक, सामाजिक प्रवृत्तियों में 'धर्म' तथा 'अधर्म द्रव्यके समान हूँ। मुझे सहयोगी बनने में आनन्द है (जैसा कि उन्होंने संघ, विद्यालय, न्यायकुमुद चन्द्र—जयधवल प्रकाशनादि में अपने को पीछे अर्थात् भूमिका लेखकादि करके किया था) और कोई शुभ-प्रवृत्ति रुक जाने पर मैं उसे प्रतिष्ठा का केन्द्र भी नहीं बनाता हूँ। वे ख्याति से परे स्पष्ट-ज्ञानपुंज, स्वल्पसंतुष्ट, निर्भीक एवं विश्वसनीय सहयोगी थे। उनकी जैनधर्म, आदि दशकों ससार मूल कृतियों, सम्पादनों आदि में 'जैन साहित्य के इतिहास की पूर्वपीठिका' एकाकी ही उनको अमर करने मे समर्थ है।

ताराचन्द्र प्रेमी
प्रधानमंत्री
भा० दि० जैन संघ

आत्मनिवेदन

मुझे अत्यधिक आनन्दका अनुभव हो रहा है कि अध्यात्मपथकी प्रतिष्ठा करनेवाले करणानुयोगमें कषायप्राभृत और जयधवलाका प्रारम्भसे लेकर अन्त तक के परमागम अनुयोग का अनुवाद सहित सम्पादन करने का अवसर मिला।

सन् १९४१ में श्रीषट्खण्डागम से हटने के बाद मुझे वाराणसी श्री दि० जैन संघ मथुराकी ओर से बुलाया गया था। उस समय मान्य स्व० पं० राजेन्द्र कुमारजी शास्त्री मथुरा संघ की बागडोर सम्हाले हुए थे। बुलाने का प्रयोजन कसायप्राभृत-जयधवला के सम्पादन-अनुवाद का था।

प्रारम्भमें यह व्यवस्था की गई कि मैं पूरे समय तक इसका अनुवाद व सम्पादन करूँ। मेरी सहायता के लिये स्व० मान्य पं० कैलाशचन्दजी शास्त्री और स्व० मान्य पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य आधे समय तक रहें।

स्व० मान्य पं० कैलाशचन्दजी जो मैं अनुवाद करता था उसे देखते थे तथा स्व० मान्य पं० महेन्द्र कुमारजी टिप्पण का भार सम्हालते थे। प्रथम भाग के मुद्रित होने तक यह क्रम चलता रहा। उसके मुद्रित होनेके बाद न्यायाचार्यजी संस्थासे हट गये। किन्तु स्व० मान्य पं० कैलाशचन्दजी उससे जुड़े रहे। द्वितीय भागके सम्पादित होकर मुद्रित होने पर कुछ समय बाद वे भी सम्पादन-अनुवाद करने के उत्तरदायित्वसे अलग हो गये। इस विभागके मन्त्री पदको वे सम्हाले रहे। उसके बाद मैं ही इस कामके सम्पादन-अनुवादमें लगा रहा। कुछ समय के बाद मैंने किसी प्रकारकी अड़चन आनेके कारण संस्था छोड़ दी। फिर भी अनुरोध को ख्याल में रखकर इस काममें लगा रहा। अब कषायप्राभृत-जयधवलाके उत्तरदायित्व से मुझे निवृत्त होनेका समय आगया है। क्योंकि इस महान् ग्रन्थ के सम्पादन-अनुवाद का काम पूरा हो गया है।

मान्य पं० कैलाशचन्दजी अन्त तक संस्थामें साहित्य विभागका उत्तरदायित्व सम्हाले रहे। इसलिये प्रत्यक्ष में उनसे बातचीत होती रही। उनकी इच्छा थी कि इसके १६ भागों का संक्षिप्त विवरण लिखकर मुद्रित करा दिया जाय और कषायप्राभृत-जयधवलाके प्रत्येक भाग का शुद्धिपत्र मुद्रित करा दिया जाय।

मुझे प्रसन्नता है कि प्रत्येक भागका शुद्धिपत्र मुद्रित होनेके लिये वाराणसी भेज दिया गया है और वह छप भी गया है। इसमें स्व० पं० रतनचन्दजी मुख्तार सहारनपुर और श्री पं० जवाहरलालजी सि० शा० भिण्डर का सहयोग मिला है। उन दोनों के सहयोगसे यह काम मैं पूरा कर सका हूँ।

स्व० पं० रतनचन्दजी मुख्तार जिस समय प्रत्येक भाग मुद्रित होता था वे बुलाकर उसका स्वाध्याय करते थे और मुद्रणके समय प्रूफरीडिंग और प्रेसकी असावधानीके कारण जो अनुवाद या मूलमें छूट रह जाती थी उसे वे जैनगजटमें मुद्रित कराते जाते थे। वे उस प्रकार की छूट या अशुद्धिको मेरे पास नहीं भेजते थे। वे अपने जीवन में बहुत बदल गये थे। मुझे उनके और वकील सा० नेमिचन्दजी के साथ रहनेवाले पुराने सम्बन्धोंकी इस समय भी याद बनी हुई है। तेरापन्थ शुद्धाम्नायको माननेवाला यह व्यक्ति इतना कैसे बदल गया है? इसको मुझे रह-रहकर खबर आती है। आज भी मान्य वकील सा० जीवित हैं। पर उनसे सम्बन्ध छूट गया है। वे बहुत गम्भीर

मालूम पड़ते हैं, भले ही उनके विचार पहले जैसे न रहे हों। वे अपनेको प्रसिद्धि से दूर रखते हैं, उनके इस गुणका जितना आदर किया जाय वह थोड़ा है। वे इस समय भी स्वाध्यायमें लगे रहते हैं। इसके लिये उन्होंने वकील के पेशे से बहुत पहले मुक्ति ले ली थी। जिस प्रकार स्व० मुख्तार सा० षट्खण्डागम और कषायप्राभृत के स्वाध्यायी विद्वान् थे। उसी प्रकार वे भी इन दोनों महान् ग्रन्थों के स्वाध्यायी विद्वान हैं। वे इस कारण धन्यवादके पात्र तो हैं ही, मैं उनका अभिनन्दन करता हूँ। कषायप्राभृतके १५ अनुयोगद्वार हैं। पर वह १६ भागोंमें पूरा हुआ है। इस समय संघके महामन्त्री श्री मान्य पं० ताराचन्द जी प्रेमी हैं। वे सहृदय व्यक्ति हैं। देश-कालके जानकार हैं। उन्हींके संरक्षणमें कषायप्राभृत-जयधवला सम्पादित और अनुवादित होकर पूरा हो रहा है। इसलिए मैं उनको धन्यवाद देता हूँ। संस्थाके सभापति मान्य सेठ रतनलालजी गंगवाल कलकत्ता हैं। वे शुद्धाम्नाय तेरापन्थ के अनन्य नेता हैं। वे इस आम्नायके पुरस्कर्ता हैं। इसलिये वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

मान्य पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री इस संस्थाके कर्ता-धर्ता हैं। उनकी राय सर्वोपरि मानी जाती है। वे स्व० मान्य पं० कैलाशचन्दजी के अन्यतम मित्र हैं। ऐसा लगता है कि उनके रहने से ही संस्थाका वर्तमान रूप बना हुआ है इसके लिये वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

डा० सुदर्शनलालजी जैन रीडर, संस्कृत विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने इस भागके प्रूफरीडिंगमें बहुत श्रम किया है। जहाँ कहीं मूल और अनुवादकी प्रेसकापीमें उन्हें अड़चनें आईं तो उन्होंने उन्हें स्वयं संशोधित करके सम्हाल लिया है। हर काम छोड़कर वे इस कार्य में लगे जिससे यह भाग शीघ्र छप सका। इसके लिये वे भी धन्यवादके पात्र हैं।

लगभग दो वर्ष से हम यहाँ दि० जैन पुराना मन्दिर में रह रहे हैं। इसके मन्त्री मान्य बाबू सुकमालचन्दजी जैन मेरे हैं। मान्य बाबू हंसाजी मेरठ उनके साथी हैं। वे यहाँ रहकर संस्था को उन्नत करनेमें लगे हुए हैं। दोनों व्यक्ति सम्पन्न घरानेके हैं। उनके कारण यह संस्था निरन्तर प्रगति कर रही है। मान्य हंसा बाबूके परिवारके लोग मेरठ में रहते हैं। वे इस संस्थाको सब प्रकार से उन्नत बनानेके लिए यहाँ रह रहे हैं। वे स्वयंका उत्तरदायित्व स्वयं सम्हाले हुए हैं, फिर भी संस्थाके हितमें लगे हुए हैं। पुराने मन्दिरजी को छोड़कर यहाँ उसके परिसरमें जो नन्दीश्वर द्वीपके जिनालयों की रचना हुई है, समोसरण मन्दिरका निर्माण हुआ है वह सब उनके सक्रिय सहयोग से हुआ है। वे इसे ऐसा बना देना चाहते हैं कि हस्तिनापुर क्षेत्र एक आदर्श संस्था बन जाय। वे होमियोपैथिके अभ्यस्त डाक्टर हैं। आजू-बाजूके देहाती भाई और संस्थामें रहने वाले भाई-बहिन सदा उनसे लाभान्वित होते रहते हैं। दवा मुफ्त वितरित करनेमें वे स्वयंको गौरवान्वित मानते हैं।

यहाँ कार्यालयका पूरा उत्तरदायित्व स्वतन्त्रता सेनानी बाबू शिखरचन्दजी सम्हाले हुए हैं। वे सहृदय व्यक्ति हैं। कभी भी आप उनके पास पहुँचिये वे सेवाकेलिये सदा तैयार मिलेंगे। कार्यालयके लिये जैसा प्रभावक व्यक्ति होना चाहिए, वे हैं।

उनके साथी श्री बाबू सुरेन्द्रकुमारजी बाहर का काम सम्हालते हैं। संस्थाका एक बाग है। उसकी देखरेख उनके जिम्मे है। वे संस्थाके हितमें सावधान हैं।

भाई दत्ताजी कार्यालयकी लिखा-पढ़ीमें लगे रहते हैं। वे मिलनसार व्यक्ति हैं। प्रधान मेनेजर के काममें हाथ बटाते रहते हैं। इससे हमें यहाँ रहनेमें कोई अड़चन नहीं जाती। हम यहाँ रहें यह क्षेत्र समितिकी इच्छा है। वे सब धन्यवाद के पात्र हैं।

मान्य पं० बाबूलालजी जैन फागुल्ल महावीर प्रेस के मालिक हैं। मेरे अनुरोधको ख्यालमें रखकर इस भाग को मुद्रित करनेमें उनका वांछनीय सहयोग मिला हुआ है। इसके लिए वे भी धन्यवादके पात्र हैं।

विशेष क्या निवेदन करूँ। इस कामके पूरा करनेमें मुझे ४८ वर्ष लगे हैं। फिर भी मेरे द्वारा यह पूरा हो रहा है इसकी मुझे प्रसन्नता है। यह जीवन इसी प्रकार भगवान् महावीर की वाणीके लेखनमें व्यतीत हो यही मेरी अन्तिम इच्छा है।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

—फूलचन्द्र शास्त्री

प्रस्तावना

लोभ संज्वलनकी दूसरी कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके जो प्रथम स्थिति एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण शेष रहती है उस समय संज्वलन लोभकी तीसरी कृष्टि पूरीकी पूरी सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रमित हो जाती है। तात्पर्य यह है कि दूसरी कृष्टिके एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध और उदयावलि में प्रविष्ट हुए प्रदेशपुंजको छोड़कर शेष सब द्रव्य सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रान्त हो जाता है। तब यह क्षपक अन्तिम समयवर्ती बादर-साम्परायिक और मोहनीय कर्मका अन्तिम समयवर्ती बन्धक होता है। उसके बाद यह क्षपक सूक्ष्मसाम्परायिक होकर सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंके असंख्यात बहुभागकी उदीरणा करता है। इसके जो अनुदीर्ण और उदीर्ण कृष्टियोंका अल्पबहुत्व होता है उसका संक्षिप्त कथन १५वीं पुस्तकमें कर आये हैं। इसके आगे बतलाया है कि जितना सूक्ष्मसाम्परायिकका काल शेष रहता है उतना ही मोहनीय कर्मका स्थितिसत्कर्म शेष रहता है। ऐसी अवस्थामें इस गुणस्थानसम्बन्धी जिन गाथाओंका विशेष खुलासा कर आये हैं उन गाथाओंका उच्चारणापूर्वक प्रत्येक पदका खुलासा करेंगे।

उनमें दसवीं मूलगाथामें बतलाया है कि मोहनीय कर्मके कृष्टिरूपमें परिणमा देनेपर किन-किन कर्मोंको कितने प्रमाणमें बाँधता है, किन-किन कर्मोंको कितने प्रमाणमें वेदता है, किन-किन कर्मोंका संक्रमण करता है और किन-किन कर्मोंका असंक्रामक होता है। इन बातोंका खुलासा आगे पाँच भाष्यगाथाओंद्वारा करते हुए पहली भाष्यगाथामें बतलाया है कि संज्वलन क्रोधकी प्रथम कृष्टिका वेदन करने वाला अन्तिम समयवर्ती जीव मोहनीय कर्मसहित यहाँ बँधने वाले तीन-घाति कर्मोंका अन्तर्मुहूर्त कम दस वर्ष प्रमाण स्थितिबन्ध करता है। इसमें इतनी विशेषता है कि जिन कर्मोंकी अपवर्तना होती है उनको देशघातिरूपसे ही बाँधता है तथा जिन कर्मोंकी अपवर्तना सम्भव नहीं है उन कर्मोंको सर्वघातिरूपसे बाँधता है। वे कर्म केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण हैं। शेष कर्मोंका क्षयोपशम होता है, इसलिए उनकी अपवर्तना होती है। अतः उनका देशघातिकरण होने से उनका देशघातिरूप ही बन्ध होता है। यह प्रथम भाष्यगाथाकी प्ररूपणाका सार है।

दूसरी भाष्यगाथामें बतलाया है कि अन्तिम समयवर्ती बादरसाम्परायिक जीव नामकर्म, गोत्रकर्म और वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध कुछ कम एक वर्षप्रमाण होता है, तीन घातिकर्मोंका मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण होता है और मोहनीय कर्मका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है।

तीसरी भाष्यगाथामें बतलाया है कि अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक जीव नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मको एक दिनके भीतर बाँधता है अर्थात् आठ मुहूर्तप्रमाण बन्ध करता है तथा वेदनीय कर्मको बारह मुहूर्तप्रमाण बाँधता है।

चौथी भाष्यगाथामें बतलाया है कि तीन मूलप्रकृतियोंकी प्ररूपणा करनेके बाद जो मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण हैं उनके अनुभागको देशघातिरूपसे वेदन करता है। यहाँ गाथामें जो 'च' शब्द आया है उससे अवधिज्ञानावरण और मनःपर्ययज्ञानावरण तथा चक्षु, अचक्षु और अवधिदर्शनवरणको ग्रहण करना चाहिये। इनकी क्षयोपशमलब्धि सम्भव है इसलिए इनका देशघातिरूपसे वेदन करता है। इसी प्रकार पाँच अन्तराय प्रकृतियोंके सम्बन्धमें जो भी जानना चाहिये। इनके सिवाय जो अलब्धिरूप कर्म होते हैं, अर्थात् जिन कर्मोंका किसी-किसीके क्षयोपशम सम्भव नहीं है उन अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और अवधिदर्शनावरणको सर्वघातिरूपसे वेदन करता है,

क्योंकि सब जीवोंमें इन तीन कर्मोका क्षयोपशम सम्भव नहीं है। इसीप्रकार मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरणको देशघातीरूपसे और सर्वघातिरूपसे वेदन करता है।

यहाँ शंकाकार कहता है कि अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और अवधिदर्शनावरण कर्मोंका अनुभाग-उदय किन्हीं जीवोंमें देशघाति स्वरूप होता है और अन्य जीवोंमें सर्वघाति स्वरूप होता है क्योंकि सब जीवोंमें इन तीन प्रकृतियोंकी क्षयोपशमलब्धि होती है, ऐसा नियम नहीं है। किन्तु मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरणका किसीके देशघातिस्वरूप और किसीके सर्वघातिस्वरूप अनुभाग-उदय होना सम्भव है, इसलिये सब क्षपक जीवोंमें उक्त कर्मों की क्षयोपशम लब्धि नियमसे होती है, यह सम्भव नहीं है।

यहाँ इस शंकाका समाधान यह है कि यद्यपि सब जीवोंके क्षयोपशम-लब्धिसामान्य सम्भव है किन्तु क्षयोपशमविशेषकी अपेक्षा प्रकृत अर्थ बन जाता है। यथा--मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण इन दोनों प्रकृतियोंके असंख्यात लोकप्रमाण उत्तरोत्तर प्रकृतियाँ हैं, क्योंकि पर्याय श्रुतज्ञानसे लेकर सर्वोत्कृष्ट श्रुतज्ञानपर्यन्त श्रुतज्ञानके भेदोंके उतने ही आवरण कर्म हैं। मतिज्ञानके इतने ही आवरण-विकल्प बन जाते हैं, क्योंकि मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान होता है, इसलिये जितने भेद श्रुतज्ञानके हैं उतने ही भेद मतिज्ञानके बन जाते हैं। इस प्रकार श्रुतज्ञानावरणके जितने भेद हैं उतने ही मति-ज्ञानावरणके भी बन जाते हैं। इस कथनमें कोई बाधा नहीं आती। ऐसा होने पर सर्वोत्कृष्ट क्षयो-पशमपरिणत चौदह पूर्वधर और सर्वोत्कृष्ट कोष्ठबुद्धि आदि मतिज्ञानविशेषसे सम्पन्न क्षपक-श्रेणिपर आरूढ़ जीव होता है उसके दोनों कर्मोंका देशघातिस्वरूप ही अनुभागोदय होता है।

किन्तु विकल श्रुतधर और विकल मतिज्ञानी क्षपकश्रेणिपर आरोहण करता है उस क्षपकके सर्वघातिस्वरूप अनुभागोदय जानना चाहिये क्योंकि उसके अधस्तन आवरणोंका देशघातिस्वरूप अनुभागोदय होने पर भी उपरिम आवरणोंका सर्वघातिस्वरूप अनुभागोदय सम्भव है।

विकलश्रुतधारी क्षपकश्रेणिपर आरोहण नहीं कर सकता ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि दस और नौ पूर्वधारि जीव भी क्षपक श्रेणिपर आरोहण करते हैं ऐसा आचार्योंका उपदेश पाया जाता है।

इसी प्रकार अवधिज्ञानावरण आदि शेष प्रकृतियोंके विषयमें भी समझ लेना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और अवधिदर्शनावरणकी उत्तरोत्तर प्रकृतियोंकी विवक्षाके बिना भी देशघाति और सर्वघाति अनुभागका उदय सम्भव है ऐसा यहाँ जानना चाहिये, क्योंकि सब जीवोंमें इन प्रकृतियोंके क्षयोपशमका नियम नहीं देखा जाता।

पाँचवीं भाष्यगाथामें बतलाया है कि यशःकीर्ति और उच्चगोत्रका यह क्षपक प्रतिसमय अनन्त गुणवृद्धिरूपसे वेदन करता है अन्तराय कर्मको यह क्षपक प्रतिसमय अनन्तगुणहानिरूपसे वेदन करता है तथा शेष कर्मोंको छह वृद्धि और छह हानिमें से कोई एक वृद्धि और कोई एक हानिरूपसे तथा अवस्थितरूपसे वेदन करता है।

ग्यारहवीं मूल गाथामें बतलाया है कि मोहनीय कर्मके स्थितिघात आदि कितने-कितने क्रियाभेद होते हैं? यह कथन अकृष्टिस्वरूप संज्वलनकर्मोंके कृष्टिस्वरूप किये जाने पर विवक्षित है। तथा शेष कर्मोंके स्थितिघात आदि रूप कितने-कितने क्रियाभेद होते हैं।

यहाँ प्रसंगवश इस प्ररूपणाको १ स्थितिघात, २ स्थितिसत्कर्म, ३ उदय, ४ उदीरणा, ५ स्थितिकाण्डक, ६ अनुभागघात, ७ स्थितिसत्कर्म, ८ अनुभागसत्कर्म, ९ बन्ध और १० बन्धपरिहानि इन दस क्रियाभेदोंद्वारा किया गया है।

१. स्थितिघात—यह पहला क्रियाभेद है। इसमें स्थितिकाण्डक घातका काल अन्तर्मुहूर्त विवक्षित है!

२. स्थितिसत्कर्म—यह दूसरा क्रियाभेद है। इसके द्वारा स्थितिसत्कर्मके प्रमाणका अवधारण किया गया है।

३. उदय—यह तीसरा क्रियाभेद है! इसके द्वारा कृष्टियोंका उदय प्रत्येक समयमें अनन्तगुणा-हीन होकर प्रवृत्त होता है यह बतलाया गया है।

४. उदीरणा—यह चौथा क्रियाभेद है। इसद्वारा प्रयोगसे अपकर्षित होनेवाले स्थिति और अनुभागकी प्ररूपणा की गई है।

५. स्थितिकाण्डक—यह पाँचवां वीचारस्थान है। इसके द्वारा स्थितिकाण्डकके प्रमाणका अवधाररण किया गया है।

६. अनुभागघात—यह छठा क्रियाभेद है। इसके द्वारा स्थितिघातका जो काल है वही इसका विवक्षित है यह बतलाया गया है।

७. स्थितिसत्कर्म—यह सातवाँ क्रियाभेद है। इसके द्वारा कृष्टिवेदकके सब सन्धियोंमें घात करनेसे शेष रहे स्थितिसत्कर्मके प्रमाणका निर्देश किया गया है।

८. अनुभागसत्कर्म—यह आठवाँ क्रियाभेद है। इसके द्वारा चार संज्वलनोंके अनुभाग सत्कर्मका विचार किया गया है।

९. बन्ध—यह नौवाँ क्रियाभेद है। इसके द्वारा कृष्टिवेदकके सब सन्धियोंमें स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धके प्रमाणका निश्चय किया गया है।

१०. बन्धपरिहानि—यह दसवाँ क्रियाभेद है। इसके द्वारा स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धकी परिहानिका विचार किया गया है।

इस प्रकार इन दस क्रियाभेदोंद्वारा मोहनीय कर्मकी विवक्षित प्ररूपणा प्रतिबद्ध है। शेष कर्मोंकी प्ररूपणा इसी विधिसे जान लेनी चाहिये।

आगे क्षपणासम्बन्धी चार मूल गाथाओं और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली भाष्यगाथाओंकी प्ररूपणा की गई है। यह क्षपक कृष्टियोंका क्या वेदन करता हुआ या क्या संक्रमण करता हुआ या क्या दोनों करता हुआ क्षय करता है? अथवा क्या आनुपूर्वीसे क्षय करता है या आनुपूर्वीके बिना क्षय करता है?

इस मूल गाथाकी एक भाष्यगाथा है। उसमें बतलाया गया है कि क्रोध संज्वलनकी प्रथम, द्वितीय और तीसरी संग्रहकृष्टिको क्रोध संज्वलनकी प्रथम संग्रहकृष्टिको वेदन करता हुआ और पर प्रकृतिरूपसे संक्रमण करता हुआ क्षय करता है। यह तो सामान्य नियम है। विशेष बात यह है कि संज्वलन क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिको वेदन नहीं करता हुआ भी पर-प्रकृतिरूपसे संक्रमण करता हुआ भी कितने ही काल तक क्षय करता है। खुलासा इस प्रकार है कि वेदक कालके समाप्त हो जानेपर जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध निषेक हैं उनका वेदन न करते हुए संक्रमण-द्वारा ही क्षय करता है। यह प्रथम संग्रहकृष्टिकी क्षपणाकी विधि है। इसी प्रकार ग्यारह संग्रह-कृष्टियों तक इस विधिको जान लेना चाहिये।

लोभसंज्वलनकी जो बारहवीं संग्रहकृष्टि है उसका अपने रूपसे विनाश नहीं होता। अब उसका क्षय किस प्रकार होता है यह बतलाते हुए लिखा है कि 'चरिमं वेदेमाणो' ऐसा कहने

पर उससे अन्तिम बादर साम्परायिक कृष्टिको ग्रहण न कर जो सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि है उसका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि वह अन्तिम है। इसलिये वेदन करते हुआ ही उसका क्षय करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। वेदन करते हुए ही उसका क्षय क्यों होता है? इसके दो कारण हैं— प्रथम तो दसवें गुणस्थानमें संज्वलनका बन्ध नहीं होता। दूसरा उसका प्रतिग्रहान्तरका अभाव कारण है।

क्षपणासम्बन्धी दूसरी मूल गाथामें बतलाया है कि जिस संग्रह कृष्टिका संक्रमण करते हुए क्षय करता है उसका नियमसे अबन्धक रहता है। इसी बातको उसकी भाष्यगाथाद्वारा और विशेषरूपसे बतलाया गया है। साथ ही सूक्ष्म साम्परायिक संग्रह कृष्टिका नियमसे अबन्धक होता है यह भी बतलाया गया है।

क्षपणासम्बन्धी तीसरी मूल गाथा आशंकापरक गाथा है। इसमें जिन आशंकाओंको व्यक्त किया गया है उनका दस भाष्यगाथाओंद्वारा समाधान किया गया है। उनमें पहली आशंका यह है कि जिस-जिस संग्रह कृष्टिका क्षय करता है उस उस संग्रहकृष्टिको किस-किस प्रकारके स्थिति और अनुभागोंमें उदीरित करता है? दूसरी आशंका यह है कि विवक्षित कृष्टिको अन्य कृष्टिमें संक्रमण करता हुआ किस-किस प्रकारके स्थिति और अनुभागोंसे युक्त कृष्टिमें संक्रमण करता है? तीसरा प्रश्न है कि विवक्षित समयमें जिस स्थिति और अनुभागोंसे युक्त कृष्टियोंमे उदीरणा और संक्रमण आदि किये हैं, अनन्तर समयमें क्या उन्हीं कृष्टियोंमे उदीरणा और सक्रमण आदि करता है अथवा अन्य कृष्टियोंमें करता है? ये तीन प्रश्न हैं। इनका उक्त भाष्यगाथाओंद्वारा समाधान किया गया है।

जैसा कि हम पहले निर्देश कर आये हैं कि इन प्रश्नोंका समाधान दस भाष्यगाथाओंके माध्यमसे किया गया है। उनमें से पहली भाष्यगाथा का पूर्वार्ध भी पृच्छासूत्र है, निर्देशसूत्र नहीं। उत्तरार्धमें बतलाया है कि विवक्षित संग्रह कृष्टिके अनुभागसम्बन्धी सभी भेदोंमें संक्रम होता है। परन्तु उदय और उदीरणा मध्यम कृष्टिरूपसे ही होती है। पूर्वार्धका खुलासा चूर्णिसूत्रोंमें किया गया है। उनमें बतलाया है कि इस क्षपकके स्थितिबन्ध चार मास प्रमाण ही होता है, क्योंकि प्रथम समयवर्ती जो कृष्टिवेदक है उसके स्थितिसत्कर्म आठ वर्ष प्रमाण होता है, परन्तु उस समय इतना स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है, क्योंकि वह उस समय संज्वलनका चार मास प्रमाण ही होता है। स्थिति संक्रम उदयावलिको छोड़कर शेष सब स्थितियों में होता है। उदीरणा भी उदयावलिको छोड़कर सब स्थितियों में प्रवृत्त होती है।

दूसरी भाष्यगाथामें बतलाया है कि यह गाथा भी पृच्छासूत्र है; इसलिये इसद्वारा पहली भाष्यगाथामें कहे गये अर्थका ही विशेष खुलासा किया गया है।

तीसरी भाष्यगाथामें बतलाया है कि स्थिति और अनुभागसम्बन्धी जिन कर्मप्रदेशों का पहले समय में अपकर्षण करता है उनका दूसरे समयमें सदृश और असदृशरूपसे उदीरणाद्वारा प्रवेशक होता है। सदृशका अर्थ है कि जो एक कृष्टिरूपसे परिणमन कर उदयमें आते हैं वे सदृशसंज्ञावाले कहलाते हैं और असदृश का अर्थ है कि जो स्थिति और अनुभागसम्बन्धी कर्मप्रदेश अनन्त कृष्टिरूपसे परिणमन कर उदयमें आते हैं तो उनकी असदृश संज्ञा है। किन्तु यहाँ पर अनन्तकृष्टिरूपसे परिणमन कर उदयमें आते हैं ऐसा अर्थ यहाँ किया गया जानना चाहिए।

चौथी भाष्यगाथा भी पृच्छासूत्र है। उसमें उत्कर्षणविषयक पृच्छा की गई है। किन्तु इसका यहाँ प्रयोग नहीं है; क्योंकि कृष्टिकारक जीवके संज्वलन कषायका उत्कर्षण नहीं होता, ऐसा नियम है।

पाँचवीं भाष्यगाथामें बन्ध, संक्रम और उदयविषयक अल्पबहुत्वको बतलाते हुए कहा गया है कि संक्रामण प्रस्थापकके इन विषयोंका जैसा अल्पबहुत्व वहाँ कह आये हैं वैसा यहाँ जानना चाहिये।

छठी भाष्यगाथामें बतलाया है कि जो कर्मपुंज प्रयोगवश उदीरणाद्वारा उदयमें प्रविष्ट होता है उससे स्थितिका क्षय होकर उदयमें प्रविष्ट होनेवाला कर्मपुंज नियमसे असंख्यातगुणा होता है।

सातवीं भाष्यगाथामें बतलाया है कि प्रयोगवश जो प्रदेशपुंज उदयावलिमें प्रविष्ट होता है वह प्रदेशपुंज उदयसमयसे लेकर उदयावलिके अन्तिम समय तक नियमसे असंख्यातगुणा होता है।

आठवीं भाष्यगाथामें बतलाया है कि यह क्षपक जिन अनन्त कृष्टियोंकी उदीरणा करता है उनमें अनुदीर्यमान एक-एक संक्रमण करती है। तथा पहले जो कृष्टियाँ स्थितिक्षयसे उदयावलिमें प्रविष्ट होकर उदयको नहीं प्राप्त हुई हैं वे अनन्त कृष्टियाँ एक-एक करके स्थितिक्षयसे वेद्यमान मध्यम कृष्टिरूप होकर परिणमन करती हैं।

नौवीं भाष्यगाथामें बतलाया है कि जितनी भी अनुभाग कृष्टियाँ नियमसे प्रयोगवश उदीरित होती हैं उनरूप होकर पहले उदयावलिमें प्रविष्ट हुई अनुभाग कृष्टियाँ परिणमती हैं।

दसवीं भाष्यगाथामें बतलाया है कि एक समय कम अन्तिम आवलिकी उत्कृष्ट और जघन्य असंख्यातवें भागप्रमाण जो अनुभाग कृष्टियाँ हैं वे सब असंख्यात बहुभागप्रमाण मध्यम कृष्टियोंके रूपसे नियमसे परिणम जाती हैं।

आगे क्षपणासम्बन्धी चौथी मूल गाथामें बतलाया है कि विवक्षित संग्रह कृष्टि का वेदन करनेके बाद अन्य संग्रहकृष्टिका अपकर्षण करके वेदन करता हुआ यह क्षपक उस पूर्वमें वेदित संग्रहकृष्टिके शेष रहे भागको वेदन करता हुआ क्षय करता है या अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण करके क्षय करता है; क्या है ?

आगे उसका खुलासा करनेके लिये दो भाष्यगाथाएँ आई हैं। उनमेंसे पहली भाष्यगाथामें बतलाया है कि पिछली संग्रह कृष्टिके वेदन करनेके बाद जो भाग शेष बचता है उसे अन्य संग्रह कृष्टिमें नियमसे प्रयोगद्वारा संक्रमण करता है। परन्तु पिछली संग्रहकृष्टिका कितना भाग शेष बचता है इसकी प्ररूपणा करते हुए बतलाया है कि पिछली संग्रह कृष्टिका दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्धरूप द्रव्य शेष बचता है और उच्छिष्टावलिप्रमाण द्रव्य शेष बचता है। इस सब द्रव्यका अन्य संग्रहकृष्टि में नियमसे प्रयोगद्वारा संक्रमण करके क्षय करता है। यहाँ इतना और विशेष जानना चाहिये कि नवकबन्धरूप सत्कर्मको अधःप्रवृत्त संक्रमके द्वारा संक्रमित करके क्षय करता है और उच्छिष्टावलिप्रमाणद्रव्यको स्तिबुक संक्रमकेद्वारा उदयमें प्रवेशित करके क्षय करता है।

आगे दूसरी भाष्यगाथामें बतलाया है कि पूर्वमें वेदी गई संग्रहकृष्टिके और इस समय वेदी जानेवाली संग्रहकृष्टिके सन्धिस्थानमें प्रथम संग्रहकृष्टि को एक समय कम एक आवलि उदयावलिमें प्रविष्ट होती है तथा जिस संग्रहकृष्टिका अपकर्षण करके इस समय वेदन करता है उसकी पूरी आवलि उदयावलिमें प्रविष्ट होती है। इस प्रकार दो आवलियाँ संक्रममें पाई जाती हैं। यह सन्धिस्थानकी बात है। इसे छोड़कर शेष कालमें देखा जाय तो एक उदयावलि होती है क्योंकि उच्छिष्टावलिके गला देनेपर वहाँ और दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है।

यह प्ररूपणा क्रोध संज्वलनके साथ पुरुष वेदसे जो जीव क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है उसको ध्यानमें रखकर की है। आगे मान संज्वलनके साथ पुरुषवेद से क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीवकी अपेक्षा कथन करने पर जब तक अन्तरकरण नहीं किया तब तक तो कोई विशेषता नहीं है। उक्त दोनों जीवों की अपेक्षा कथन एक समान है।

अन्तरकरण करनेके बाद क्रोध की प्रथम स्थिति न करके मान संज्वलन की प्रथम स्थिति करता है। वह क्रोध की प्रथम स्थिति क्रोधके क्षपणाकालके बराबर होती है। क्रोधसे चढ़ा हुआ जीव जहाँ अश्वकर्णकरण करता है, उस स्थानमें जाकर मानसे चढ़ा हुआ जीव क्रोधकी क्षपणा करता है। क्रोधसे क्षपक श्रेणिपर चढ़े हुए जीव का जो कृष्टिकरणका काल है, मानसे क्षपक श्रेणिपर चढ़ा हुआ जीव उस कालमें अश्वकर्णकरण करता है। क्रोधसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ाहुआ जीव जिस कालमें क्रोधकी क्षपणा करता है उस कालमें मानसे चढ़ा हुआ जीव कृष्टिकरण करता है। क्रोधसे चढ़ा हुआ जीव जिस कालमें मानकी क्षपणा करता है उस कालमें मानसे चढ़ा हुआ जीव मानकी क्षपणा करता है। इसके आगे क्रोध और मानसे श्रेणिपर चढ़े हुए दोनों जीवोंकी विधि समान है।

मान संज्वलनकी प्रथम स्थिति का हम पूर्वमें उल्लेख कर आए हैं। माया संज्वलनसे क्षपक श्रेणिपर चढ़े हुए जीवकी प्रथम स्थितिमें, क्रोधसंज्वलनसे चढ़ा हुआ जीव जिस कालमें अश्वकर्ण-करण करता है वह काल भी सम्मिलित हो जाता है। इसी प्रकार लोभ संज्वलनकी अपेक्षा विचार कर लेना चाहिये, क्योंकि लोभसंज्वलनकी प्रथम स्थिति लोभ संज्वलनकी प्रथम स्थिति माया संज्वलनसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुये जीवकी अपेक्षा बड़ी होती है।

स्त्रीवेदसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए जीवकी अपेक्षा जो भेद है उसका विवेचन मूलमें किया ही है, इसलिए वहाँ से जान लेना चाहिए। इतना अवश्य है कि जो स्त्रीवेदसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ता है उसके नपुंसकवेदका क्षय होकर स्त्रीवेदका क्षय होता है। साथ ही इतनी और विशेषता है कि पुरुषवेदके क्षय करनेमें जितना काल लगता है उतना ही काल स्त्रीवेदसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए जीव को स्त्रीवेदके क्षय करनेमें लगता है। यह जीव अपगतवेदी होनेके बाद ही सात नोकषायोंका क्षय करता है। यहाँ इस विशेषताको ध्यानमें रखकर शेष कथनको जान लेना चाहिये।

नपुंसकवेद से क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए जीव की अपेक्षा विचार करने पर स्त्रीवेदसे चढ़े हुए जीवकी जितनी प्रथम स्थिति होती है उतनी बड़ी नपुंसकवेदसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए जीवकी प्रथम स्थिति होती है। यह अन्तर करनेके दूसरे समयमें नपुंसकवेदका क्षय करनेके लिये आरम्भ करता है। उसके बाद स्त्रीवेदके क्षय करनेकेलिये आरम्भ करते हुए नपुंसकवेदका क्षय करता है। इसके बाद दोनों ही कर्म स्त्रीवेद और नपुंसकवेद एक साथ क्षयको प्राप्त होते हैं। उसके बाद सात नोकषायोंका क्षय करता है।

यहाँ यह शंका की गई है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा तीनों ही कालोंमे जो परिणाम जिस जीवके जिस कालमें होते हैं वही परिणाम दूसरे जीवोंके भी उस कालमें होते हैं फिर यह फरक क्यों होता है ? इसका समाधान यह है कि वेदों और कषायोंकी अपेक्षा करण परिणामोंमें भेद न होने पर भी यह भेद बन जाता है क्योंकि कारणभेदसे कार्यमें भेद देखा जाता है।

जब यह जीव सूक्ष्म साम्परायको प्राप्त होकर उसके अन्तिम समयमें स्थित होता है उस समय नाम और गोत्रकर्मका बन्ध आठ मुहूर्त प्रमाण होता है, वेदनीय कर्मका बन्ध बारह मुहूर्त प्रमाण होता है, तीन घाति कर्मोंका बन्ध अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है तथा मोहनीय कर्मका बन्ध नौवें गुणस्थानमें समाप्त होकर यहाँ चारों प्रकारके सत्कर्मका भी अभाव हो जाता है।

उसके बाद यह जीव अनन्तर समयमें क्षीणकषाय होकर क्षीणकषायके एक समय अधिक एक आवलिकाल शेष रहने तक तीन घातिकर्मोंकी उदीरणा करता है। उसके बाद उदय होकर क्षीणकषायके अन्तिम समय तक इन कर्मोंका उदय रहता है। तेरहवें गुणस्थानके प्रथम समयमें इन कर्मोंका अभाव होनेसे यह जीव 'सर्वज्ञ' पदको प्राप्त कर लेता है। बारहवें गुणस्थानमें यह जीव वीतराग तो हो ही गया था। इस प्रकार वीतराग सर्वज्ञ होकर जिस विधिसे अपने कर्मोंका क्षय किया उस विधिका उपदेश देता हुआ विहार करता है। यहाँ पूरे विषयको स्पष्ट करनेके लिये दो मूल गाथाएँ आईं हैं।

एक उद्धृत गाथामें बतलाया है कि तीर्थंकरका विहार लोकको सुखका निमित्त तो है, पर उनका वह कार्य पुण्य फलवाला नहीं है और न ही उनका दान-पूजाका आरम्भ करनेवाला वचन भी कर्मोंसे लिप्त करनेवाला है।

उनके जो सातावेदनीयका बन्ध होता है वह योगके कारण ही होता है। वीतराग होनेके कारण वह स्थिति-अनुभागका बन्ध करनेवाला नहीं होता। फिर भी उस कर्मको जो सातावेदनीय कहा गया है वह बाह्य अनुकूलतामें निमित्त होनेके कारण ही कहा गया है।

वे १८ दोषोंसे रहित होते हैं और सदा ही एक समयकी स्थितिवाले सातावेदनीयका उदय बना रहनेसे असातावेदनीयका उदय भी सातारूप परिणम जाता है, इसलिये उनके क्षुधा, पिपासा आदि १८ दोष नहीं होते। दूसरे असातावेदनीयका ८वें आदि गुणस्थानोंमें उत्तरोत्तर हजारों स्थिति काण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात हो जानेसे उनके असातावेदनीयका अव्यक्त उदयही होता है जो प्रतिसमय सातारूप परिणम जाता है। यहाँ क्रमसे किस कर्मकी कैसे क्षपणा होती है यह क्षपणाधिकार में बतलाया गया है। इस प्रकार कथन करनेके बाद कषायप्राभृतकी प्ररूपणा समाप्त की गई है, क्योंकि चारित्रमोहनीयकी क्षपणा यहाँ समाप्त होती है।

उसके बाद पश्चिमस्कन्ध नामक अर्थाधिकारको प्रारम्भ करते हुए बतलाया है कि समस्त श्रुतस्कन्धके चूलिकारूपसे यह अर्थाधिकार अवस्थित है। उसका विचार करते हुए बतलाया है कि सबके अन्तमें होनेवाले स्कन्धको पश्चिमस्कन्ध कहते हैं, क्योंकि घातिकर्मोंको क्षय करके इस अर्थाधिकारका वर्णन किया जाता है, इसलिये इसे पश्चिमस्कन्ध कहा गया है। इसमें अघातिकर्मोंको क्षय करने की कैसी विधि होती है इसका विवेचन किया है।

अथवा चार घातिकर्मोंके क्षय करनेके बाद केवलीके तैजस और कार्मणनोकर्मके साथ जो अन्तिम औदारिकशरीर नोकर्मस्कन्ध पाया जाता है उसे पश्चिमस्कन्ध कहते हैं, क्योंकि यह नोकर्मशरीर सबसे अन्तिम है।

अथवा अयोगकेवलीके अन्तिम कर्मस्कन्धके साथ अन्तिम औदारिक शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाला जो जीव प्रदेशस्कन्ध है वह भी पश्चिमस्कन्ध है, क्योंकि उसके होनेपर केवलिसमुद्घात की प्ररूपणा यहाँ पाई जाती है।

यहाँ यह पृच्छा की जाती है कि इस पश्चिमस्कन्ध अधिकारको महाकर्मप्रकृतिप्राभृतमें किया गया है उसकी कषायप्राभृतमें प्ररूपणा क्यों की जा रही है?

यह एक पृच्छा है उसका समाधान करते हुए बतलाया है कि दोनों स्थानों पर उसकी प्ररूपणा करनेमें कोई बाधा नहीं आती इसलिये आचार्य महाराज कहते हैं कि हमने जो यह कहा है कि पश्चिमस्कन्ध अर्थाधिकार पूरे श्रुतस्कन्धसे सम्बन्ध रखता है वह ठीक हो कहा है। इसलिये प्रकृत विषयसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयकी यहाँ प्ररूपणाकी जाती है—

आयुके अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर आर्वाजतकरण करता है। केवलिसमुद्घातके सन्मुख होनेका नाम ही आर्वाजतकरण है। इसका फल अघातिकर्मोंकी स्थितिको एकसमान करना है।

इसी समय नामकर्म, गोत्रकर्म और वेदनीयकर्मके प्रदेशपिण्डका क्रमसे अपकर्षण कर यह जीव सयोगकेवलीके शेष बचे काल और अयोगीकेवलीके कालसे कुछ अधिक कालके बराबर गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक जाता है। परन्तु वह गुणश्रेणिशीर्ष स्वस्थान सयोगकेवलीकेद्वारा अनन्तर अधस्तन समयमें विद्यमान रहते हुए निक्षिप्त किये गए गुणश्रेणिआयामसे संख्यातगुणहीन स्थान जाकर अवस्थित है, ऐसा यहाँ समझना चाहिए। इतना अवश्य है कि प्रदेशपुंजकी अपेक्षा उससे यह असंख्यातगुणे प्रदेशविन्याससे अवस्थित रहता है। इसका ज्ञान ग्यारह गुणश्रेणिके निरूपण करनेवाले गाथासूत्रसे जाना जाता है। उस गुणश्रेणिशीर्षसे उपरिम अनन्तर स्थितिमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको निक्षिप्त करता है। उसके बाद ऊपर सर्वत्र विशेषहीन प्रदेशपुंजको ही निक्षिप्त करता है। इस प्रकार आर्वाजतकरणके कालके भीतर सर्वत्र गुणश्रेणिनिक्षेप जानना चाहिये। इतना अवश्य है कि यह अवस्थित आयामवाला होता है। स्वस्थान केवलीके यह आर्वाजतकरणके अभिमुख हुए केवलीके वे अन्तरंग परिणामविशेष अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुकर्मकी अपेक्षासहित होते हैं, इसलिये यहाँ पर गुणश्रेणिनिक्षेपके विसदृश होनेमें कोई बाधा नहीं आती।

इस प्रकार आर्वाजित करणके कालके समाप्त होनेपर अनन्तर समयमें केवलिसमुद्घात करता है। उसमें जीवके प्रदेश फैलते हैं। उसका फल अघाति कर्मोंकी स्थितिको समान करना है।

इस समुद्घातमें लोकपूरण करनेमें चार समय लगते हैं और चार समय जीवप्रदेशोंके शरीरप्रमाण होनेमें लगते हैं। प्रथम चार समय तक इस जीवके अप्रशस्त कर्मप्रदेशोंके अनुभागकी अनुसमय अपवर्तना और एक समयवाला स्थितिकाण्डकघात होता है। यहाँ जो कार्यविशेष होता है वह आगमसे जान लेना चाहिये।

इतना विशेष है कि लोकपूरण समुद्घातके बाद स्थितिकाण्डकका और अनुभागकाण्डकका उत्कीरणकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है। इसके बाद योगनिरोध करता है। पहले बादर काययोगद्वारा बादर मनोयोग, वचनयोग, उच्छ्वास-निश्वास और काययोगका निरोध करके इसी विधिसे सूक्ष्म काययोगद्वारा सूक्ष्म मनोयोग, वचनयोग, उच्छ्वास-निश्वास और काययोगका निरोध करता हुआ इन करणोंको करता है। प्रथम समयमें पूर्व स्पर्धकोंके नीचे अपूर्व स्पर्धकोंको करता है। उस कालमें जीवप्रदेशोंका भी अपकर्षण करता है। इसके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक कृष्टियोंको करता है। उनको करनेका काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। उस कालमें जीवप्रदेशोंका भी अपकर्षण करता जाता है। उसके बाद पूर्वस्पर्धकों और अपूर्वस्पर्धकोंका नाशकर अन्तर्मुहूर्तकाल तक कृष्टिगत योगवाला होता है। उस कालमें सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाती ध्यानका अधिकारी होता है। उसके बाद योगका निरोध करके अन्तर्मुहूर्तकाल तक शैलेश पदको प्राप्त करता है। तेरहवें गुणस्थान तक शुक्ल लेश्याका व्यवहार होता है। चौदहवें गुणस्थानमें लेश्याका व्यवहार समाप्त हो जाता है। इसके समुच्छिन्नक्रिया अनिवृत्तिरूप चौथा शुक्लध्यान होता है। यहाँ ध्यानके व्यवहार करनेका कारण कर्मोंका क्षय करना है। इस पदके पूरे होने पर यह जीव सब कर्मोंसे मुक्त होकर एक समयमें सिद्ध पदका अधिकारी होता है। इस प्रकार कर्मोंके क्षय करनेकी विधि समाप्त होती है।

●

विषयसूची

क्षपणाधिकार चूलिका

पच्छिमखंध-अत्थाहियार

परिशिष्ट

सिरि-जयवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

कसायपाहुडं

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

तत्थ

चारित्तक्खवणा णाम सोडसमो अत्थाहियारो

§ १ सुगमं।

*** एस कमो ताव जाव सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयअणिल्लेविदं त्ति**

*** १ यह सूत्र सुगम है।**

विशेषार्थ—सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके प्रथम समयमें जो प्रदेशपुंज दिखाई देता है उसकी श्रेणि प्ररूपणा करनेके प्रसंगसे उदयमें जितना प्रदेशपुंज दिखाई देता है दूसरे समयमें उससे असंख्यातगुणा प्रदेशपुंज दिखाई देता है, तीसरे समयमें उससे असंख्यातगुणा प्रदेशपुंज दिखाई देता है। इस प्रकार यह क्रम गुणश्रेणिशीर्ष तक प्राप्त होकर उससे ऊपर एक स्थितिके प्राप्त होने तक जानना चाहिये। उसके बाद अन्तिम अन्तरस्थिति के प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर विशेष हीन होता हुआ प्रदेशपुंज दिखाई देता है। उससे आगे एक स्थितिमें असंख्यातगुणा प्रदेशपुंज दिखाई देकर उससे आगे उत्तरोत्तर विशेष हीन प्रदेशपुंज दिखाई देता है। अन्तमें इसी अर्थ को स्पष्ट करनेवाले सूत्र का उल्लेख करके 'यह चूर्णिसूत्र सुगम है' यह लिखा है। इस प्रकार यह उक्त कथन का भाव है। ऐसा यहाँ समझना चाहिये।

*** इस प्रकार यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम स्थितिकाण्डकके निर्लेपित (समाप्त) होनेका अन्तिम समय नहीं प्राप्त होता है।**

§ २ किं कारणं ? एदम्मि अवत्थंतरे वट्टमाणस्स पयदसेढिपरूवणाए भेदाणुवलंभादो। संपहि पढमट्ठिदिखंडयचरिमफालीए णिवदिदाए दिस्समाणपदेसग्गस्स जो परूवणाभेदो तण्णिण्णयकरणट्ठमुवरो सुत्तपबंधो—

* पढमे ट्ठिदिखंडए णिल्लेविदे उदये पदेसग्गं दिस्सदि तं थोवं। बिदियाए ठिदीए असंखेज्जगुणं। एवं ताव जाव गुणसेढिसीसयं। गुणसेढिसीसयादो अण्णा च एक्का ठिदि त्ति असंखेज्जगुणं दिस्सदि।

§ ३ सुगमं।

* तत्तो विसेसहीणं जाव उक्कस्सिया मोहणीयस्स ठिदि त्ति।

§ ४ किं कारण ? पढमट्ठिदिखंडयचरिमफालीए णिवदिदाए गुणसेढिं मोत्तूण उवरिमासेसट्ठिदिविसेसेसु एगगोवुच्छायारेण दिस्समाणपदेसग्गस्सावट्ठाणदंसणादो। संपहि एदस्सेवत्थस्स विसेसस्स किंचि फुडीकरणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तर माढवेइ

* सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडए पढमसमयणिल्लेविदे गुण-

---

§ २ इसका कारण क्या है ? कारण कि इस अवस्था विशेषमें विद्यमान जीवके प्रकृत श्रेणिप्ररूपणामें भेद नहीं पाया जाता। अब प्रथम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका पतन होने पर दिखाई देनेवाले प्रदेशपुंज का जो प्ररूपणाभेद होता है उसका निर्णय करनेके लिये आगे के सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* प्रथम स्थितिकाण्डकके निर्लेपित होने पर उदयमें जो प्रदेशपुंज दिखाई देता है वह सबसे अल्प है। दूसरी स्थितिमें उससे असंख्यातगुणा प्रदेशपुंज दिखाई देता है। इस प्रकार यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि गुणश्रेणिशीर्ष प्राप्त होता है। गुणश्रेणिशीर्षसे ऊपर जो अन्य एक स्थिति प्राप्त होती है उसमें असंख्यातगुणा प्रदेशपुंज दिखाई देता है।

§ ३ यह सूत्र सुगम है।

* उससे आगे मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थितिके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर विशेषहीन प्रदेशपुंज दिखाई देता है।

§ ४ इसका क्या कारण है ? कारण कि प्रथम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका पतन होने पर गुणश्रेणिको छोड़कर आगेको समस्त स्थितिविशेषोंमें एक गोपुच्छाके आकारसे दिखाई देनेवाले प्रदेशपुंजका अवस्थान देखा जाता है। अब इसी अर्थ विशेषका थोड़ा सा स्पष्टीकरण करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको आरम्भ करते है—

* सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम स्थितिकाण्डकके निर्लेपित होनेके प्रथम समयमें

सेढिं मोत्तूण केण कारणेण सेसिगासु ट्ठिदीसु एयगोपुच्छासेढी जादा त्ति एदस्स साहणट्ठमिमाणि अप्पाबहुअपदाणि ।

§ ५ सुगमं ।

* तं जहा ।

§ ६ सुगमं ।

* सव्वत्थोवा सुहुमसांपराइयद्धा ।

§ ७ सुगमं ।

* पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स मोहणीयस्स गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ ।

§ ८ केत्तियमेत्तो विसेसो ? सुहुमसांपराइयद्धाए संखेज्जदिभागमेत्तो ।

* अंतरट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ ।

§ ९ सुगमं ।

* सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडयं मोहणीये संखेज्जगुणं ।

गुणश्रेणिको छोड़कर किस कारणसे शेष स्थितियोंमें एक गोपुच्छाश्रेणि हो गई, इस प्रकार इस अर्थका साधन करनेके लिये अल्पबहुत्वपद जानने योग्य हैं ।

§ ५ यह सूत्र सुगम है ।

* वह अल्पबहुत्व इस प्रकार है ।

§ ६ यह सुगम है ।

* सूक्ष्मसाम्परायिकका काल सबसे अल्प है ।

§ ७ यह सूत्र सुगम है ।

* सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम समयमें मोहनीय कर्मका गुणश्रेणिनिक्षेप विशेष अधिक है ।

§ ८ विशेषका प्रमाण कितना है ? सूक्ष्मसाम्परायिकके कालके संख्यातवें भागप्रमाण है ।

* अन्तर स्थितियाँ संख्यातगुणी हैं ।

§ ९ यह सूत्र सुगम है ।

* सूक्ष्मसाम्परायिकके मोहनीय कर्मका प्रथम स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा है ।

§ १० सुगमं ।

*** पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं संखेज्ज-गुणं ।**

§ ११ को गुणगारो ? तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाणि । संपहि कधमेदमप्पाबहुअं पयदत्थसाहणमिदि चे ? वुच्चदे—जेणेत्थ अंतरायामादो पढमट्ठिदिखंडयं संखेज्ज-गुणं जादं तेण पढमट्ठिदिखंडयचरिमफालिदव्वादो अंतरट्ठिदिमेत्तगोपुच्छाओ घेत्तूण अंतरट्ठिदीसु विदियट्ठिदीए सह एयगोवुच्छायारेण णिसिंचिदुं दव्वमत्थि त्ति जाणावणमुहेण पयदत्थसाहणमेदमप्पाबहुअं जादं । अण्णहा अंतरट्ठिदीसु पढम-ट्ठिदिखंडयायामादो बहुगीसु संतीसु तत्थेव गोपुच्छायागणुववत्तीदो त्ति ।

§ १२ एत्तो प्पहुडि विदियट्ठिदिखंडयेसु वि एसो चेव दिस्समाणपदेसग्गस्स सेढिपरूवणा णिव्वामोहमणुगतव्वा, विसेसाभावादो । णवरि गुणसेढिसीसए दिस्स-माणदव्वमेत्तो पाए असंखेज्जगुणं ण होदि, विसेसाहियं चेव होदि । तत्थ कारण-परूवणा जहा दंसणमोहक्खवणाए सम्मत्तस्स अट्ठवस्सट्ठिदिसंतकम्मादो उवरि मग्गिदा तहा चेव मग्गिदूण गेण्हियव्वा । एवमेत्तिएण सुत्तपबंधेण सुहुमसांपराइय-

---

§ १० यह सूत्र सुगम है ।

*** प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकके मोहनीय कर्मका स्थितिसत्कर्म संख्यात-गुणा है ।**

§ ११ गुणकार क्या है ? तत्प्रायोग्य संख्यातरूप गुणकार है ।

शंका—इस समय यह अल्पबहुत्व प्रकृत अर्थका साधन कैसे करता है ?

समाधान—कहते हैं—अतः यहाँ अन्तरायामसे प्रथम स्थितिकाण्डक संख्यातगुणा हो गया है, इसलिये प्रथम स्थितिकाण्डकके अन्तिम फालिद्रव्यसे अन्तर स्थितिप्रमाण गोपुच्छाओंको ग्रहण करके अन्तर स्थितियोंमें द्वितीय स्थितिके साथ एक गोपुच्छाकाररूपसे सिंचित करनेके लिये द्रव्य है इस प्रकारके ज्ञान कराने के द्वारा प्रकृत अर्थका साधन करनेवाला यह अल्पबहुत्व हो जाता है । अन्यथा अन्तरस्थितियोंके प्रथम स्थितिकाण्डकके आयामसे बहुत होनेपर उन्हींमें गोपुच्छाकारकी उत्पत्ति नहीं हो सकती ।

§ १२ इससे आगे द्वितीय स्थितिकाण्डकमें भी यही दिखनेवाले प्रदेशपुंजको श्रेणि प्ररूपणा व्यामोहको छोड़कर जान लेनी चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । इतना विशेषता है कि गुणश्रेणिशीर्षमें दिखनेवाला द्रव्य इससे प्रायः असंख्यातगुणा नहीं होता है, किन्तु विशेष अधिक ही होता है । इस विषयमें कारणका कथन जिस प्रकार दर्शनमोहनीयकी क्षपणामें सम्यक्त्वकी आठ वर्ष प्रमाण स्थितिसत्कर्मसे ऊपर अनुसन्धान करके कह आये हैं उसी प्रकार अनुसन्धान करके यहाँ ग्रहण कर लेना चाहिये । इस प्रकार इतने सूत्रप्रबन्धके द्वारा सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम समयसे

पढमसमयप्पहुडि दिज्जमाणदिस्समाणपदेसग्गस्स सेढिपरूवणं कादूण संपहि एत्तो उवरि पुणो वि सुहुमसांपराइयविसयमेव परूवणाविसेसमादीदोप्पहुडि पबंधेण परूवेमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

*** लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए जाव तिण्णि आवलियाओ सेसाओ ताव लोभस्स विदियकिट्टीदो लोभस्स तदियकिट्टीए संछुब्भदि पदेसग्गं, तेण परं ण संछुब्भदि, सव्वं सुहुमसांपराइयकिट्टीसु, संछुब्भदि।**

§ १३ सुहुमसांपराइयगुणट्ठाणविसयाए परूवणाए कीरमाणाए अणियट्टिबादरसांपराइयविसयो एसो अत्थपरामरसो कधमसंबद्धो ण होज्ज त्ति ण आसंकणिज्जं, अणियट्टिकरणचरिमसंधीए पुव्वमपरूविदत्थविसेसस्स संभालणं कादूण पच्छा सुहुमसांपराइयविसयपरूवणाए कीरमाणाए मंदबुद्धीणं पि सुहावगमो होदि त्ति एदेणाभिप्पाएण तहा परूवणादो।

§ १४ संपहि एदस्स सुत्तस्सत्थे भण्णमाणे किं पुण कारणं लोभविदियसंगहकिट्टीवेदगपढमट्ठिदीए तिसु आवलियासु सेसासु तत्तो पदेसग्गं तदियकिट्टीए सका-

---

लेकर दिये जानेवाले और दिखनेवाले प्रदेशपुंजकी श्रेणिप्ररूपणा करके अब इससे आगे फिर भी सूक्ष्मसाम्परायिकसम्बन्धी ही प्ररूपणाविशेषका प्रारम्भसे लेकर प्रबन्ध द्वारा प्ररूपणा करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं।

*** लोभसंज्वलनकी दूसरी कृष्टिका वेदन करनेवाले जीवके जो प्रथम स्थिति होती है उस प्रथम स्थितिकी जब तक तीन आवलियाँ शेष रहती हैं तब तक लोभकी दूसरी कृष्टिसे लोभकी तीसरी कृष्टिमें प्रदेशपुंजको संक्रमित करता है। उसके पश्चात् प्रदेशपुंजको तीसरी कृष्टिमें संक्रमित नहीं करता है। किन्तु समस्त प्रदेशपुंजको सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रमित करता है।**

§ १३ **शंका**—सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानविषयक प्ररूपणाके करनेपर अनिवृत्तिबादर साम्परायिकविषयक यह अर्थ परामर्श असम्बद्ध कैसे नहीं हो जायेगा ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि अनिवृत्तिकरणकी अन्तिम सन्धिमें पहले नहीं प्ररूपित किये गये अर्थविशेषकी सम्हाल करके पीछे सूक्ष्मसाम्परायिकविषयक प्ररूपणाके करने पर मन्दबुद्धि जीवोंको भी सुखपूर्वक ज्ञान हो जाता है, इसप्रकार इस अभिप्रायसे उस प्रकारसे प्ररूपणा की है।

§ १४ अब इस सूत्रके अर्थका कथन करनेपर क्या कारण है कि लोभसंज्वलनकी दूसरी संग्रह कृष्टि वेदकके प्रथम स्थितिमें तीन आवलियोंके शेष रहनेपर उनमेंसे प्रदेशपुंज तीसरी कृष्टिमें संक्रमित होता है, उसके पश्चात् नहीं, इस प्रकार इसके कारणका कथन करते हैं। यथा—लोभका

मिज्जदि, ण तत्तो परमिदि एदस्स कारणं वुच्चदे। तं जहा—लोभस्स विदियसंगह-किट्टीदो तदियबादरसांपराइयकिट्टीए उवरि जं पदेसग्गं संकामिज्जदि तं तम्हि चेव संकमणावलियमेत्तकालमविचलसरूवं होदूण चिट्ठदि। पुणो संकमणाजोग्गं होदूण एगावलियमेत्तकालेण तं सव्वं चिराणसंतकम्मेण सह सुहुमसांपराइयकिट्टीसु संका-मिज्जदे। एवं संकामिदे पुणो उच्छिट्ठावलियमेत्ता पढमट्ठिदी परिसेसा होदूण चिट्ठदि। तेण कारणेण अप्पणो पढमट्ठिदीए जाव तिण्णि आवलियाओ सेसाओ अत्थि ताव लोभस्स विदियकिट्टीपदेसग्गं तदियबादरसांपराइयकिट्टीए उवरि संकामिज्जदि। तत्तो परं तत्थ ण संछुहदि, सव्वं सुहुमसांपराइयकिट्टीसु चेव संछुब्भदि। तद-वत्थाए तदियबादरसांपराइयकिट्टीए संकंतदव्वस्स सुहुमकिट्टीसरूवेण णिरवसेसं परि-णामेदुं संभवाभावादो।

दूसरी संग्रह कृष्टिमेंसे तीसरी बादर साम्परायिक कृष्टिमें जो प्रदेशपुंज संक्रमित होता है वह उसीमें ही संक्रमणावलिप्रमाण काल तक चलायमान न होकर अवस्थित रहता है। पुन. संक्रमणके योग्य होकर एक आवलिप्रमाण कालके द्वारा वह सब प्राचीन सत्कर्मके साथ सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रमित होता है। इस प्रकार संक्रमित होने पर पुनः उच्छिष्टावलिप्रमाण प्रथम स्थिति शेष रहती है। इस कारणसे अपनी प्रथम स्थितिकी जब तक तीन आवलिप्रमाण स्थिति शेष रहती है तब तक लोभसंज्वलनकी दूसरी कृष्टिका प्रदेशपुंज तीसरी बादरसाम्परायिक कृष्टिमें संक्रमित होता है। उसके पश्चात् उसमें संक्रमित नहीं होता, पूरा द्रव्य सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमे संक्रमित होता है, क्योंकि उस अवस्थामें तीसरी बादरसाम्परायिक कृष्टिके संक्रमित हुए द्रव्यका सूक्ष्मकृष्टिरूपसे पूरी तरहसे परिणमाना सम्भव नहीं है।

विशेषार्थ—प्रकृतमें सूक्ष्मसाम्परायिकविषयक कथन किया जा रहा है। ऐसी अवस्थामें यहाँ अनिवृत्तिकरण बादरसाम्परायिकसम्बन्धी उक्त कथन किसलिये किया गया है यह एक प्रश्न है, इसका समाधान करते हुए बतलाया गया है, कि लोभ संज्वलनकी दूसरी संग्रहकृष्टिका वेदन करने-वाले जीवके जब तक उसकी प्रथम स्थितिमें तीन आवलीप्रमाण स्थिति शेष रहती है तब तक तो लोभसंज्वलनकी दूसरी संग्रह कृष्टिका प्रदेशपुंज तीसरी संग्रह कृष्टिमें संक्रमित होता रहता है। परन्तु दूसरी संग्रह कृष्टिकी प्रथम स्थितिमें तीन आवलीप्रमाण स्थिति शेष रहनेके बाद उसका प्रदेशपुंज लोभ संज्वलनकी तीसरी संग्रह कृष्टिमें संक्रमित न होकर सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक-मित होने लगता है। इस प्रकार इस अर्थविशेषको सूचित करनेके लिये प्रकृतमें यह अनिवृत्तिकरणकी अन्तिम सन्धि विषयक प्ररूपणा की है। यहाँ प्रकृत अर्थकी पुष्टिमें कारणका निर्देश करते हुए यह बतलाया गया है कि लोभसंज्वलनकी दूसरी संग्रह कृष्टिका जो प्रदेशपुंज तीसरी बादरसांपरायिक कृष्टिमें संक्रमित होता है वह संक्रमणावलि काल तक तदवस्थ ही रहता है। उसके बाद एक आवलि-प्रमाण कालके द्वारा वह पूरा द्रव्य पुराने सत्कर्मके साथ सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रमित हो जाता है। इस प्रकार संक्रमित होनेके बाद प्रथम स्थितिमें जो तीसरी आवलि बचती है वह उच्छिष्टावलि है। यही कारण है कि यहाँ प्रसंगसे अनिवृत्तिकरण बादरसाम्परायिककी चर्चा आ गई है। शेष कथन सुगम है।

§ १५ एवमेसो एाए सुहुमसांपराइयकिट्टीसु चेव णिरुद्धविदियसंगहकिट्टीए पदेसग्गमोकड्डणासंकमेण संछुहमाणो ताव गच्छदि जाव अप्पणो पढमट्ठिदी आवलियपडिआवलियमेत्ता सेसा त्ति। पुणो तत्थागालपडिआगालवोच्छेदं कादूण पुणो वि समयूणावलियमेत्तपढमट्ठिदिमधट्ठिदीए गालिय समयाहियमेत्तपढमट्ठिदीए सह वट्टमाणो चरिमसमयबादरसांपराइयो जादो। संपहि तदत्थाए वट्टमाणस्स जो परूवणाविसेसो तण्णिद्देसकरणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

* लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए आवलियाए समयाहियाए सेसाए ताधे जा लोभस्स तदियकिट्टी सा सव्वा णिरवयवा सुहुमसांपराइयकिट्टीसु संकंता। जा विदियकिट्टी तिस्से दो आवलिया मोत्तूण समयूणे उदयावलिपविट्ठं च सेसं सव्वं सुहुमसांपराइयकिट्टीसु संकंतं। ताधे चरिमसमयबादरसांपराइओ मोहणीयस्स चरिमसमयबंधगो।

§ १६ एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि। एवमणियट्टिकरणद्धं समाणिय से काले पढमसमयसुहुमसांपराइयभावेण परिणदस्स जो परूवणाविसेसो तण्णिण्णयकरणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो—

---

§ १५ इस प्रकार यहाँसे लेकर सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें ही विवक्षित दूसरी संग्रह कृष्टिका प्रदेशपुंज अपकर्षण संक्रमणके द्वारा संक्रमित होता हुआ तब तक जाता है जब तक अपनी प्रथम स्थिति आवलि प्रत्यावलि प्रमाण शेष रहती है। पुनः वहाँ आगाल प्रत्यागालकी व्युच्छित्ति करके फिर भी एक समय कम आवलिमात्र प्रथम स्थिति अधःस्थितिके द्वारा गलाकर एक समय अधिक प्रथम स्थितिके साथ विद्यमान वह जीव अन्तिम समयवर्ती बादरसाम्परायिक होता है, अब उस अवस्थामें विद्यमान जीवके जो प्ररूपणाविशेष है उसका निर्देश करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

* संज्वलन लोभकी दूसरी कृष्टिका वेदन करनेवालेके जो प्रथम स्थिति है उस प्रथम स्थितिमें एक समय अधिक आवलिप्रमाण कालके शेष रहने पर उस समय संज्वलन लोभकी जो तीसरी कृष्टि है वह सब पूरीकी पूरी सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रमित हो जाती है। जो दूसरी कृष्टि है उसके एक समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध और उदयावलि प्रविष्ट प्रदेशपुंजके छोड़कर शेष सब द्रव्य सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंमें संक्रान्त होता है। उस समय यह क्षपक जीव अन्तिम समयवर्ती बादरसाम्परायिक और मोहनीय कर्मका अन्तिम समयवर्ती बन्धक होता है।

§ १६ ये सूत्र सुगम हैं। इस प्रकार अनिवृत्तिकरणके कालको समाप्त करके तदनन्तर समयमें प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिकभावसे परिणत हुए इस क्षपकके जो प्ररूपणाविशेष है उसका निर्णय करनेके लिये आगे का सूत्रप्रबन्ध आया है—

* से काले पढमसमयसुहुमसांपराइओ ।

§ १७ सुगमं ।

* ताधे सुहुमसांपराइयकिट्टीणमसंखेज्जा भागा उदिण्णा ।

§ १८ कुदो ? हेट्ठिमोवरिमासंखेज्जदिभागं मोत्तूण मज्झिमबहुभागसरूवेणेव तासिमुदयणियमदंसणादो । तम्हा हेट्ठिमोवरिमासंखेज्जभागविसयाओ किट्टीओ मोत्तूण सेसमज्झिमबहुभागसरूवेण सुहुमकिट्टीओ पुव्वुत्तेण पदेसविण्णासविसेसेण उदीरेमाणो एसो पढमसमयसुहुमसांपराइओ जादो त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसब्भावो । संपहि एत्थ हेट्ठिमोवरिमाणमणुदिण्णकिट्टीणमुदिण्णमज्झिमकिट्टीणं च थोवबहुत्तमेत्थमणुगंतव्व मिदि परूवेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* हेट्ठा अणुदिण्णाओ थोवाओ ।

§ १९ सुगमं ।

* उवरि अणुदिण्णाओ विसेसाहियाओ ।

§ २० सुगमं ।

---

* तदनन्तर समयमें वह क्षपक प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक हो जाता है ।

§ १७ यह सूत्र सुगम है ।

* उस समय उसके सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंका असंख्यात बहुभाग उदीर्ण होता है ।

§ १८ क्योंकि अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियोंको छोड़कर मध्यम बहुभाग स्वरूपसे ही उसके उदय होनेका नियम देखा जाता है । इसलिये अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागको विषय करनेवाली कृष्टियोंको छोड़कर शेष मध्यम बहुभागरूपसे सूक्ष्म-कृष्टियोंकी पूर्वोक्त प्रदेशविन्यासवश उदीरणा करता हुआ यह प्रथम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक हो जाता है । यह यहाँ इस सूत्रका मथितार्थ है । अब यहाँ अधस्तन और उपरिम अनुदीर्ण कृष्टियोंका और उदीर्ण हुई मध्यम कृष्टियोंका अल्पबहुत्व जानने योग्य है, इसलिये उसकी प्ररूपणा करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* अधस्तन भागमें स्थित अनुदीर्ण कृष्टियां सबसे अल्प हैं ।

§ १९ यह सूत्र सुगम है ।

* उपरिम भागमें स्थित अनुदीर्ण कृष्टियां विशेष अधिक हैं ।

§ २० यह सूत्र सुगम है ।

* मज्झे उदिण्णाओ सुहुमसांपराइयकिट्टीओ असंखेज्जगुणाओ ।

§ २१ सुगममेदं पि सुत्तमिदि ण एत्थ वक्खाणायरो। एवमेसा सुहुमसांपराइयस्स पढमसमये उदीरिज्जमाणकिट्टीणं सरूवपरूवणा कदा, एसा चेव विदियादिसमयेसु वि णिरवसेसमणुगंतव्वा। णवरि विदियसमये पुव्वोदिण्णाणं किट्टीणमग्गग्गादो असंखेज्जदिभागं मुंचदि, हेट्ठदो अपुव्वमसंखेज्जदिभागमाढवदे। एवं जाव चरिमसमयसुहुमसांपराइयो त्ति। किट्टीणमणुसमयमोवट्टणाविहाणं च पुव्वं व परूवेयव्वं। ठिदिखंडयादिसेसासेसविसेसपरूवणा च सुगमा त्ति ण पुणो पवंचिज्जदे। एवमेदीए परूवणाए सुहुमसांपराइयद्धमणुपालेमाणस्स जाधे ठिदिखंडयसहस्साणि णाणावरणादिकम्माणमणुभागखंडयसहस्साविणाभावीणि गदाणि ताधे मोहणीयस्स अपच्छिमठिदिखंडयमागाएमाणो एदेण विहाणेणागाएदि त्ति पदुप्पायणट्ठं सुत्तमुत्तरं भणइ—

* सुहुमसांपराइयस्स संखेज्जेसु ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु जमपच्छिमं ठिदिखंडयं मोहणीयस्स तम्हि ट्ठिदिखंडये उक्कीरमाणे जो

---

* मध्य भागमें स्थित उदीर्ण होनेवाली सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियां असंख्यातगुणी हैं।

§ २१ यह सूत्र भी सुगम है, इसलिये इस विषयमें व्याख्यान-विषयक आदर नहीं है। इस प्रकार यह सूक्ष्मसाम्परायिकके प्रथम समयमें उदीरणाको प्राप्त होने वाली कृष्टियोंके स्वरूपकी प्ररूपणा की। तथा यही प्ररूपणा द्वितीयादि समयमें भी पूरी तरहसे जान लेनी चाहिये। इतनी विशेषता है कि पहले उदीर्ण हुई कृष्टियोंके अग्राग्रभागसे असंख्यातवें भागको छोड़ देता है तथा अधस्तन अपूर्व असंख्यातवें भागको भली प्रकार घटित करता है। इस प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंके अन्तिम समय तक जानना चाहिये। कृष्टियोंकी प्रतिसमय अपवर्तना-विधिको पहलेके समान कथन करना चाहिये। स्थितिकाण्डक आदिकी शेष सम्पूर्ण विशेषप्ररूपणा सुगम है, इसलिये उसका पुनः विस्तार नही करते हैं। इस प्रकार इस प्ररूपणाके अनुसार सूक्ष्मसाम्परायिकके कालका पालन करनेवाले क्षपक जीवके ज्ञानावरणादि कर्मोंके हजारों अनुभागकाण्डकोंके अविनाभावी हजारों स्थिति-काण्डक जब व्यतीत हो जाते हैं तब मोहनीयकर्मके अन्तिम स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता हुआ 'इस विधिसे ग्रहण करता है' इस बातका कथन करने के लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

* सूक्ष्मसाम्परायिकके संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंके व्यतीत हो जाने पर जो मोहनीय कर्मका अन्तिम स्थितिकाण्डक है उस स्थितिकाण्डकके उत्कीण

मोहणीयस्स गुणसेढिणिक्खेवो तस्स गुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागो आगाइदो ।

§ २२ एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे । तं जहा—संखेज्जेसु ट्ठिदिखंडयसहस्सेसु जहावुत्तेण कमेण गदेसु तदो मोहणीयस्स चरिमट्ठिदिखंडयमेसो गेण्हमाणो पढमसमयसुहुमसांपराइएण जो गुणसेढिणिक्खेवे सगद्धादो विसेसाहियभावेण णिक्खित्तो तस्स गुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागमागाएदि । सुहुमसांपराइयद्धामेत्तं सेसं परिसेसिय जेत्तिओ सो विसेसुत्तरो णिक्खेवो तं सव्वमेव कंडयसरूवेणागाएदि त्ति वुत्तं होइ । ण केवलमेत्तियं चेव गेण्हइ, किंतु तत्तो उवरिमाओ वि ठिदीओ गुणसेढिसीसयादो संखेज्जगुणमेत्तीओ चरिमट्ठिदिखंडयसरूवेण गेण्हइ, ताहिं विणा गुणसेढिसीसयस्स गहणासंभवादो । सो च सुत्ते तहा णिद्देसो णत्थि त्ति ण चासंकणीयं, तस्साणुत्तसिद्धत्तादो । तम्हा गुणसेढिसीसएण सह उवरिमाओ अंतोमुहुत्तमेत्तीओ तत्तो संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ घेत्तूण मोहणीयस्स चरिमट्ठिदिखंडयमेत्तो णिव्वत्तेदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसमुच्चओ ।

§ २३ संपहि चरिमट्ठिदिखंडयस्स पढमसमये उक्कीरमाणपदेसग्गस्स सेढिपरूवणं सुत्तसूचिदं वत्तइस्सामो । तं कधं ? ताधे चेव पढमफालीदव्वमाकड्डियूण उदये

किये जाने पर जो मोहनीय कर्मका गुणश्रेणी-निक्षेप है उस गुणश्रेणि-निक्षेपके अग्राग्रभागसे संख्यातवें भागको घात करनेके लिये ग्रहण करता है ।

§ २२ अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । यथा—संख्यात हजार स्थिति-काण्डकोंके यथोक्त क्रमसे बीत जाने पर पश्चात् मोहनीय कर्मके अन्तिम स्थितिकाण्डकको यह क्षपक ग्रहण करता हुआ प्रथम समयमें सूक्ष्मसाम्परायिकके द्वारा गुणश्रेणी-निक्षेपमें अपने कालसे विशेष अधिकरूपसे जिस द्रव्यको निक्षिप्त किया है उस गुणश्रेणि निक्षेपके अग्राग्रभागसे संख्यातवें भागको ग्रहण करता है । सूक्ष्म-साम्परायिकके कालप्रमाण शेषको अवशिष्ट रखकर जितना विशेष अधिक द्रव्य निक्षिप्त किया है उस सबको काण्डकरूपसे ग्रहण करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । वह केवल इतनेको ही नहीं ग्रहण करता है किन्तु उससे उपरिम जो गुणश्रेणिशीर्षसे संख्यातगुणी स्थितियाँ हैं उन्हें भी अन्तिम स्थिति-काण्डकरूपसे ग्रहण करता है, क्योंकि उसके बिना गुणश्रेणि-शीर्षका ग्रहण करना असम्भव है । यद्यपि सूत्रमें उस बातका उस प्रकारसे निर्देश नहीं किया है सो ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उक्त कथन अनुक्तसिद्ध है । इसलिये गुणश्रेणिशीर्षके साथ उससे संख्यातगुणी उपरिम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंको ग्रहण करके मोहनीय कर्मके अन्तिम स्थितिकाण्डकको यह क्षपक रचित करता है । यह यहाँ पर इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है ।

§ २३ अब प्रथम समयमें अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीर्ण होने वाले प्रदेशपुंजकी सूत्रसे सूचित होनेवाली श्रेणी-प्ररूपणा को बतलावेंगे ।

शंका—वह कैसे ?

पदेसग्गं थोवं देदि । से काले असंखेज्जगुणं देदि । एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए णिक्खिवमाणो गच्छदि जाव सुहुमसांपराइयचरिमसमयो त्ति । एवं चेव एण्हिं मोहणीयस्स गुणसेढिसीसयमिदि घेत्तव्वं । तत्तो उवरिमाणंतरट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं देदि । तत्तो विसेसहीणं णिक्खिवमाणो गच्छदि जाव चिराणगुणसेढिसीसयं पत्तो त्ति । तदो उवरिमाणंतराए एक्किस्से ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं णिक्खिवदि । तत्तो परं सव्वत्थ विसेसहीणं चेव णिक्खिवदि जाव अप्पणो चरिमट्ठिदिमइच्छावणावलियमेत्तेण अपत्तो त्ति । एवं विदियादिफालीसु वि णिवदिमाणियासु एरिसी चेव दिज्जमाणपदेसग्गस्स सेढिपरूवणा णिव्वामोहमणुगंतव्वा जाव चरिमट्ठिदिखंडयस्स दुचरिमफालि त्ति ।

§ २४ पुणो चरिमफालिदव्वं घेत्तूण उदये पदेसग्गं थोवं देदि, से काले असंखेज्जगुणं । एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए णिक्खिवमाणो गच्छदि जाव सुहुमसांपराइयचरिमट्ठिदि त्ति । गुणगारो वि दुचरिमट्ठिदीए णिक्खित्तपदेसग्गादो चरिमट्ठिदीए णिसित्तपदेसग्गस्स असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि । एदस्स कारणं जहा दंसणमोहक्खवगस्स चरिमफालीए णिवदिदाए सम्मत्तस्स परूविदं तहा चेव परूवेदव्वं, विसेसाभादो एवमेदम्मि ठिदिखंडए णिल्लेविदे तदो प्पहुडि मोहणीयस्स ठिदिघादादि-किरियाओ ण संभवंति, केवलमधट्ठिदीए चेव अंतोमुहुत्तमेत्तीओ चेव ठिदीओ णिज्ज-रेदि त्ति इदमत्थविसेसं पदुप्पाएमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

समाधान—क्योंकि उसी समय प्रथम फालिके द्रव्यका अपकर्षण करके उदयमें उसके स्तोक प्रदेशपुंजको देता है। तदनन्तर समयमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको देता है। इस प्रकार असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता हुआ सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समय तक जाता है। इसी प्रकार इस समय मोहनीय कर्मके गुण-श्रेणिशीर्षको ग्रहण करना चाहिये। उसके बाद उपरिम अनन्तरस्थितिमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको देता है। उसके आगे पुरानी गुणश्रेणिके शीर्षके प्राप्त होने तक विशेषहीन निक्षेप करता हुआ जाता है। उसके आगे उपरिम अनन्तर एक स्थितिमें असंख्यात गुणे हीन प्रदेशपुंजका निक्षेप करता है। उसके आगे अतिस्थापनावलिको प्राप्त किये बिना उसके पूर्व अपनी अन्तिम स्थिति तक सर्वत्र विशेषहीन ही प्रदेशपुंजका निक्षेप करता है। इसी प्रकार दूसरी आदि फालियोंके भी पतित होनेपर दीयमान प्रदेशपुंजकी श्रेणिप्ररूपणाके व्यामोहके बिना इसी प्रकारकी अन्तिम स्थितिकाण्डकके द्विचरम-फालिके प्राप्त होने तक जाननी चाहिये।

§ २४ पुनः अन्तिम फालिके द्रव्यको ग्रहण करके उदयमें स्तोक प्रदेशपुंजको देता है। तदनन्तर समयमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको निक्षिप्त करता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर असंख्यात-गुणित श्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता हुआ सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानको अन्तिम स्थितिके प्राप्त होने तक निक्षिप्त करता है। गुणकार भी द्विचरम स्थितिमें निक्षिप्त होने वाले प्रदेशपुंजसे अन्तिम स्थितिमें निक्षिप्त होनेवाला प्रदेशपुंज पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूल-प्रमाण है। इस कारण दर्शनमोहनीय की क्षपणा करने वाले जीवके अन्तिम फालिके पतनके समय सम्यक्त्व प्रकृतिके विषयमें जिस प्रकार प्ररूपित कर आये हैं उसी प्रकार प्ररूपित करना चाहिये, क्योंकि उसके कथनसे

* तम्हि ट्ठिदिखंडये उक्किण्णे तदोप्पहुडि मोहणीयस्स णत्थि ट्ठिदिघादो।

§ २५ सुगममेदं सुत्तं। णाणावरणादिकम्माणं पुण ट्ठिदि-अणुभागघादा एत्तो उवरि वि पयट्टंति चेव, तत्थ पडिबंधाभावादो।

* जत्तियं सुहुमसांपराइयद्धाए सेसं तत्तियं मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्म सेसं।

§ २६ चरिमट्ठिदिखंडए णिल्लेविदे सुहुमसांपराइद्धसेसमेत्तं चेव मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममवसिट्ठं। तं च जहाकममधट्ठिदीए णिज्जरेदि त्ति एवमेत्तिए अत्थविसेसे परूविय समत्ते तदो सुहुमसांपराइयस्स परूवणा समप्पइ त्ति वुत्तं होइ।

इसके कथनमें कोई विशेषता नहीं है। इस प्रकार इस स्थितिकाण्डकके निर्लेपित हो जाने पर वहांसे लेकर मोहनीय कर्मको स्थितिघात आदि क्रियाएँ सम्भव नहीं हैं। केवल प्रथम स्थितिकी ही अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंको निजरा होती है। इस प्रकार इस अर्थविशेषका प्ररूपण करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं-

* उस स्थितिकाण्डकके उत्कीर्ण होने पर वहाँसे आगे मोहनीय कर्मका स्थितिघात नहीं होता।

§ २५ यह सूत्र सुगम है, परन्तु ज्ञानावरणादि कर्मोंके स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात इससे आगे भी प्रवृत्त रहते ही है, क्योंकि उनके वैसा होनेमें प्रतिबन्धका अभाव है।

* इस अवस्थामें सूक्ष्मसाम्परायिकका जितना काल शेष रहता है उतने ही मोहनीय कर्मका स्थिति-सत्कर्म शेष रहता है।

§ २६ अन्तिम स्थितिकाण्डकके निर्लेपित हो जाने पर सूक्ष्मसाम्परायिकका जितना काल शेष रहता है उतना ही मोहनीय कर्मका स्थिति सत्कर्म-अवशिष्ट रहता है और वह क्रमसे अधःस्थितिक द्वारा निर्जरित होता है। इस प्रकार इतने अर्थ विशेषको प्ररूपणा करके समाप्त होने पर उसके बाद सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानको प्ररूपणा समाप्त होती है। यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

विशेषार्थ—सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक अपने अन्तिम समयमे चारित्रमोहनीय कर्मका समूल अभाव करके अगले समयमें क्षीणमोह गुणस्थानमे प्रवेश करता है, इसलिये वह चारित्रमोहनीय कर्मके अन्तिम स्थिति-काण्डकमे जिन द्रव्योंको सम्मिलित कर उस स्थिति-काण्डकका फालिक्रमसे पतन करता है उनका विवरण इस प्रकार है-(१) दसवें गुणस्थानके प्रारम्भमें जिस गुणश्रेणीकी रचनाका प्रारम्भ किया था उसका आयाम दसवें गुणस्थानके कालसे कुछ अधिक होता है, इसलिये

---

१. ता० प्रतौ उवरीव इति पाठः।

§ २७ एवमेत्तिएण पबंधेण सुहुमसांपराइय-गुणट्ठाणपज्जंतं किट्टीवेदगस्स परूवणं समाणिय संपहि एदम्हि चेव किट्टीवेदगद्धाए पडिबद्धाणं सुत्तगाहाणं पुव्वमविहासिदाणमेण्हिमवयारं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* इदाणिं सेसाणं गाहाणं सुत्तफासो कायव्वो ।

§ २८ को सुत्तफासो णाम ? सूत्रस्य स्पर्शः सूत्रस्पर्शः । पुव्वमत्थमुहेण विहासिदाणं गाहासुत्ताणमेण्हिमुच्चारणपुरस्सरमवयवत्थपरामरसो सुत्तफासो त्ति भणिदं होदि । सो इदाणिं कायव्वो त्ति सुत्तत्थो । एत्थ सेसग्गहणेण किट्टीसु पडिबद्धाणमेक्कारसण्हं मूलगाहाणं मज्झे जाओ पुव्वं थवणिज्जभावेण ठविदाओ दो मूलगाहाओ तासिं गहणं कायव्वं, उपर्युक्तादन्यच्छेषः इति वचनात् ।

* तत्थ ताव दसमी मूलगाहा ।

वह क्षपक उस गुणश्रेणि-नि-क्षेपके सबसे आगेके भागसे संख्यातवें भागके द्रव्यको उस अन्तिम स्थिति-काण्डकमें सम्मिलित करता है, (२) वह क्षपक इसके साथ ही उस गुणश्रेणिशीर्षसे मोहनीय कर्मकी जो स्थितियाँ संख्यातगुणी रहती हैं उन्हें भी उस स्थितिकाण्डक रूपसे ग्रहण करता है। इस प्रकार यह क्षपक इस गुणस्थानमें जिस अन्तिम स्थिति-काण्डककी रचना करता है। उसका फालिक्रमसे पतन करके क्रमसे प्रथमस्थितिमें स्थित अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितियोंकी अधःस्थितिके द्वारा निर्जरा करके यह क्षीणमोह गुणस्थानको प्राप्त होता है।

§ २७ इस प्रकार इतने प्रबन्धके द्वारा सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान तक कृष्टिवेदककी प्ररूपणा समाप्त करके अब इसी कृष्टिवेदकके कालसे सम्बन्ध रखने वाली तथा पहले विभाषित नहीं की गईं सूत्रगाथाओंका इस समय अवतार करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* इस समय शेष गाथाओंका सूत्ररूपसे स्पर्श करना चाहिये ।

§ २८ शंका—सूत्रस्पर्श किसे कहते हैं ?

समाधान—सूत्रका स्पर्श सूत्रस्पर्श है। पहले अर्थ-मुखसे विशेषरूपसे व्याख्यात गाथासूत्रोंके इस समय उच्चारणपूर्वक गाथासूत्रके प्रत्येक पदका परामर्श (स्पष्टीकरण) करना सूत्रस्पर्श कहलाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उसे इस समय करना चाहिये। यह उक्त सूत्रका अर्थ है। यहाँ पर उक्त सूत्रमें 'शेष' पदके ग्रहण करनेसे कृष्टियोंके विषयमें सम्बन्ध रखनेवाली ग्यारह मूलगाथाओंके मध्य स्थगित करनेके अभिप्रायसे जो दो मूल गाथाएं स्थगित की गई थी उनका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि पूर्वोक्तसे अन्य शेष कहलाता है। ऐसा नीतिका वचन है।

* उनमें सर्वप्रथम यह दसवीं मूल-गाथा है ।

§ २९ तत्थ ताव दसमी मूलगाहा समुक्कित्तियव्वा त्ति वुत्तं होइ ।

* (१५४) किट्टीकदम्मि कम्मे के बंधदि के व वेदयदि अंसे ।
संकामेदि च के के केसु असंकामगो होदि ॥२०७॥

§ ३० एसा दसमी मूलगाहा पुव्वद्धेण किट्टीवेदगस्स पडिणियदुद्देसे वट्टमाणस्स ट्ठिदिअणुभागबंधपमाणावहारणट्ठं, तस्सेव तदवत्थाए अणुभागोदयविसेसगवेसणट्ठं च समोइण्णा । पुणो पच्छद्धेण वि तदवत्थाए तस्स पयडि-ट्ठिदिअणुभाग-पदेससंकमो केरिसो होदूण पयट्टदि, किमविसेसेण, आहो अत्थि को वि विसेसो त्ति इममत्थविसेसं पदुप्पाएदुमोइण्णा ।

§ ३१ तं जहा 'किट्टीकदम्मि कम्मे' पुव्वमकिट्टीसरूवे मोहणीयकम्मे णिरवसेसं किट्टीसरूवेण परिणमिदे[1], तदो किट्टीवेदगभावे पयट्टमाणो 'के बंधदि के व वेदयदि अंसे' केसिं कम्माणं, किं पमाणाओ ट्ठिदीओ अणुभागे वा बंधदि वेदेदि त्ति वा पुच्छिदं होदि । एवं विहाणं पुच्छाणं विसेसणिण्णयमुवरि भासगाहासंबंधेण वत्तइस्सामो गाहापच्छद्धे 'के के' कम्मंसे पयडिआदिभेयभिण्णे संकामेदि । 'केसु वा अंसेसु

---

§ २९ उन दो गाथाओंमें सर्वप्रथम दसवीं मूलगाथाकी समुत्कीर्तना करनी चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* (१५४) मोहनीय कर्मके कृष्टिरूपसे परिणमा देनेपर किन-किन कर्मोंको कितने प्रमाणमें बाँधता है, किन-किन कर्मोंको कितने प्रमाणमें वेदता है, किन-किन कर्मोंका संक्रमण करता है और किन-किन कर्मोंके विषयमें असंक्रामक होता है ॥२०७॥

§ ३० यह दसवीं मूलगाथा है जो अपने पूर्वार्धद्वारा प्रतिनियत स्थानमें विद्यमान कृष्टिवेदकके स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये तथा उसीके उस अवस्थामें अनुभागके उदय-विशेषका अनुसंधान करनेके लिये अवतरित हुई है। पुनः पश्चिमार्धद्वारा भी उस अवस्थामें उसके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका संक्रम किस प्रकारका होकर प्रवृत्त होता है ? क्या विशेषताके बिना प्रवृत्त होता है या किसी प्रकारकी विशेषता भी है, इस प्रकार इस अर्थविशेषका प्रतिपादन करनेके लिये अवतरित हुई है ।

§ ३१ यथा—'किट्टीकदम्मि कम्मे' पहले आकृष्टिस्वरूप मोहनीय कर्मके कुछ शेष छोड़े बिना पूरेके पूरे कृष्टिस्वरूपसे परिणमित होने पर, तदनन्तर कृष्टियोंके वेदकपनेसे प्रवर्तमान यह क्षपक जीव 'के बन्धदि के व वेदयदि अंसे' किन कर्मोंके कितने प्रमाणवाली स्थितियों और अनुभागोंको बाँधता है और वेदता है, यह पृच्छा की गई है । इस प्रकारकी पृच्छाओंका विशेष निर्णय आगे भाष्यगाथाओंके सम्बन्धसे बतलावेंगे तथा गाथाके उत्तरार्धमें 'के के' किन किन कर्मोंके प्रकृति आदिके भेदसे

---

1. परिणामिदे प्रे० का० ।

असंकामगो¹ होदि त्ति सुत्तत्थसंबंधो। एसो च पुच्छाणिद्देसो आणुपुव्वीसंकमादिविसेस-मुवेक्खदे। एदस्स च विसेसणिण्णयं पुरदो कस्सामो। एवमेदीए मूलगाहाए पुच्छा-मेत्तेण णिद्दिट्ठाणमत्थविसेसाणं विहासणे कीरमाणे तत्थ इमाओ पंच भासगाहाओ होंति त्ति पदुप्पाएमाणो सुत्तमुत्तरमाह—

* एदिस्से पंच भासगाहाओ।

§ ३२ सुगमं।

* तासिं समुक्कित्तणा।

§ ३३ सुगमं। संपहि तासिं पंचण्ह भासगाहाणं जहाकममेव समुक्कित्तणं विहासणं च कुणमाणो तत्थ ताव पढमभासगाहाए समुक्कित्तणं कुणइ, 'यथोद्देशस्तथा निर्देशः' इति न्यायात्।

* (१५५) दससु च वस्सस्संतो बंधदि णियमा दु सेसगे अंसे।
देसावरणीयाइं जेसिं ओवट्टणा अत्थि ॥२०८॥

भेदको प्राप्त हुए कर्म-प्रदेशोंको संक्रमाता है। साथ ही 'केसु वा' किन कर्मोंके कितने भागका असंक्रामक होता है? इस प्रकार यह इस मूल सूत्र गाथाका अर्थके साथ सम्बन्ध है और यह मूल सूत्र गाथामें की गई पृच्छाका निर्देश आनुपूर्वी संक्रम आदि विशेषकी अपेक्षा करता है और इसका विशेष निर्णय आगे करेंगे। इस प्रकार इस मूलगाथाके द्वारा पृच्छामात्रसे निर्दिष्ट किये गये अर्थ-विशेषोंकी विभाषा करने पर उस विषयमें ये पाँच भाष्यगाथायें हैं, इस बातका कथन करते हुए आगेके सूत्र को कहते हैं—

* इस मूलगाथा सूत्रकी पाँच भाष्य-गाथायें हैं।

§ ३२ यह सूत्र सुगम है।

* उनकी समुत्कीर्तना करते हैं।

§ ३३ यह सूत्र सुगम है।

अब उन पाँच भाष्य-गाथाओंकी यथाक्रम ही समुत्कीर्तना और विभाषा करते हुए वहाँ सर्वप्रथम प्रथम भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं, क्योंकि उद्देशके अनुसार निर्देश किया जाता है ऐसा न्याय है।

* क्रोधसंज्वलनकी प्रथम कृष्टिके वेदकके अन्तिम समयमें मोहनीय कर्मके बिना शेष तीन कर्मोंकी अर्थात् तीन घातिकर्मोंकी नियमसे दस वर्षके भीतर अर्थात् अन्तर्मुहूर्त कम दस वर्ष प्रमाण स्थितिका बन्ध करता है तथा इन कर्मोंमें जिनकी अपवर्तना सम्भव है उनका देशघातिरूपसे बन्ध करता है [तथा जिन कर्मोंकी अपवर्तना सम्भव नहीं है उनका सर्वघातिरूपसे बन्ध करता है।] ॥२०८॥

---

१. 'च संकामगो प्रे० का०।

§ ३४ एसा पढमभासगाहा। एदीए किट्टीवेदगस्स पडिणियदुद्देसे वट्टमाणस्स तिण्हं घाइकम्माणं ट्ठिदि-अणुभागबंधपमाणणिद्देसो कओ दट्ठव्वो। संपहि एदिस्से अवयवत्थो वुच्चदे। तं जहा—'दससु च वस्सस्संतो'। एवं भणिदे कोहपढमकिट्टीवेदगचरिमसमये दसण्हं वस्साणमंतो ट्ठिदिं बंधदि—अंतोमुहुत्तूणदसवस्सपमाणेण ट्ठिदिं बंधदि त्ति वुत्तं होइ। 'णियमा दु' णिच्छयेणेव 'सेसगे अंसे' मोहणीयवज्जाणं तिण्हं घाइकम्माणमिदि वुत्तं होइ। मोहणीयस्स वि ट्ठिदिबंधपमाणणिद्देसो एदेणेव सूचिदो दट्ठव्वो। तिण्हं घाइकम्माणं पि ट्ठिदिबंधपमाण-णिद्देसो एत्थेव सूचिदो त्ति घेत्तव्वो, सुत्तस्सेदस्स देसामासयत्तादो।

§ ३५ संपहि गाहापच्छद्धस्सत्थो वुच्चदे। तं जहा—'देसावरणीयाइं' देसघादीणि चेव बंधदि। 'जेसिमोवट्टणा अत्थि' एवं भणिदे घादिकम्मेसु जेसिं कम्माणमोवट्टणा संभवइ तेसिं देसघादीणं चेव बंधगो होदि त्ति वुत्तं होइ। जेसिं पुण ओवट्टणाए[1] णत्थि संभवो ताणि सव्वघादीणि चेव बंधदि त्ति एसो वि अत्थो एत्थेव णिलीणो त्ति वक्खाणेयव्वो। ओवट्टणासण्णा च पुव्वमेव परूविदा त्ति ण पुणो परूविज्जदे। संपहि एदस्सेव गाहासुत्तत्थस्स फुडीकरणट्ठमुवरिमं विहासागंथमाढवेइ—

* एदिस्से गाहाए विहासा।

---

§ ३४ यह प्रथम भाष्यगाथा है। इसके द्वारा प्रतिनियत स्थानमें विद्यमान कृष्टिवेदक क्षपकके तीन घातिकर्मोंके स्थिति-बन्ध और अनुभाग-बन्धके प्रमाणका निर्देश किया गया जानना चाहिये। अब इस भाष्यगाथाके प्रत्येक पदका अर्थ कहते हैं। यथा—'दससु च वस्सस्संतो' इस प्रकार कहने पर संज्वलन क्रोधकी प्रथम कृष्टिका वेदक अन्तिम समयमें दस वर्षोंके भीतर स्थितिको बाँधता है अर्थात् अन्तर्मुहूर्त कम दसवर्षप्रमाण स्थितिको बाँधता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। 'णियमा दु' निश्चयसे ही 'सेसगे अंसे' मोहनीयकर्मको छोड़कर तीन घातिकर्मोंकी [दस वर्षोंके भीतर स्थितिको बाँधता है] यह उक्त कथनका तात्पर्य है। मोहनीयकर्मके भी स्थितिबन्धके प्रमाणका निर्देश इसी वचनसे सूचित किया गया जानना चाहिये। तीन घातिकर्मोंके भी स्थितिबन्धके प्रमाणका निर्देश इसी वचनसे ही सूचित हो गया, ऐसा ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यह भाष्य-गाथासूत्र देशामर्षक है।

§ ३५ अब इस भाष्यगाथाके उत्तरार्धका कथन करते हैं। यथा-'देसावरणीयाइं' देशघातियोंको ही बाँधता है। 'जेसिमोवट्ठणा अत्थि' ऐसा कहनेपर घातिकर्मोंमें जिन कर्मोंकी अपवर्तना सम्भव है उन घातिकर्मोंमें देशघातियोंका ही बन्धक होता है। यह उक्त कथनका-तात्पर्य है। परन्तु जिन घातिकर्मोंकी अपवर्तनाका होना सम्भव नहीं है उन्हें सर्वघाति रूपसे ही बाँधता है। इस प्रकार यह अर्थ भी इसी भाष्यगाथामें ही गर्भित है ऐसा व्याख्यान करना चाहिये। अपवर्तना संज्ञाका पहले ही कथन कर आये हैं, इसलिये यहाँ उसका पुनः कथन नहीं किया जाता है। अब इसी भाष्यगाथा सूत्रका स्पष्टीकरण करनेके लिये आगेके विभाषाग्रन्थको आरम्भ करते हैं—

* अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा करते हैं।

---

१. ओवट्टणा प्रे० का०।

§ ३६ सुगमं ।

*** एदीए गाहाए तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो च अणुभागबंधो च णिद्दिट्ठो ।**

§ ३७ सुगममेदं पि सुत्तं; परिप्फुडमेवेत्थ तदुभयणिद्देसदंसणादो ।

*** तं जहा ।**

§ ३८ सुगमं ।

*** कोहस्स पढमकिट्टिचरिमसमयवेदगस्स तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो संखेज्जेहिं वस्ससहस्सेहिं परिहाइदूण दसण्हं वस्साणमंतो जादो ।**

§ ३९ सुगममेदं पि गाहापुव्वद्धपडिबद्धं विहासासुत्तमिदि ण एत्थ किंचि वक्खाणेयव्वमत्थि ।

*** अथाणुभागबंधो तिण्हं घादिकम्माणं किं सव्वघादी देसघादि त्ति ?**

§ ४० सुगममेदं पुच्छावक्क ।

---

§ ३६ यह सूत्र सुगम है ।

*** इस भाष्यगाथा द्वारा तीन घातिकर्मोंके स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धका निर्देश किया गया है ।**

§ ३७ यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि स्पष्टरूपसे ही इस भाष्यगाथामें उन दोनों विषयोंका निर्देश देखा जाता है ।

*** वह जैसे ।**

§ ३८ यह सूत्र सुगम है ।

*** क्रोध संज्वलनकी प्रथम कृष्टिके अन्तिम समयवर्ती वेदकके शेष तीन घातिकर्मोंका स्थितिबन्ध संख्यात हजार वर्षोंसे घटकर दस वर्षके भीतर हो जाता है ।**

§ ३९ गाथाके पूर्वार्धसे सम्बन्ध रखने वाला यह विभाषासूत्र भी सुगम है, इसलिये यहाँ इस सम्बन्धमें कुछ भी व्याख्यान करने योग्य नहीं है ।

*** तीन घातिकर्मोंका अनुभागबन्ध क्या सर्वघाति होता है या देशघाति होता है ।**

§ ४० यह पृच्छा वाक्य-सुगम है ।

* एदेसिं घादिकम्माणं जेसिमोवट्टणा अत्थि ताणि देसघादीणि बंधदि, जेसिमोवट्टणा णत्थि ताणि सव्वघादीणि बंधदि ।

§ ४१ सुगमं ।

* ओवट्टणासण्णा पुव्वं परूविदा[1] ।

§ ४२ गयत्थमेदं पि सुत्तं, ओवट्टणा-सण्णाए पुव्वमेव सुविचारिदत्तादो । तदो केवलणाणदंसणावरणीयाणमोवट्टणाविरहिदाणं सव्वघादिओ चेवाणुभागबंधो, सेसाणमोवट्टणपयडीणं खओवसमसत्तिसंजुत्ताणं देसघादिओ चेवाणुभागबंधो एदम्मि विसये पयट्टदि; देसघादिकरणादो पाये तत्थ पयारंतरासंभवादो त्ति एसो एदस्स विहासागंथस्स गाहापच्छद्धपडिबद्धस्स समुदायत्थो । एवमेत्तिएण विहासागंथेण पढमभासगाहाए अत्थविहासणं समाणिय संपहि विदियभासगाहाए समुक्कित्तणं विहासणं च कुणमाणो उवरिमं पबंधमाढवेइ ।

* एत्तो विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

§ ४३ सुगमं ।

---

* इन घातिकर्मोंमें जिनकी अपवर्तना होती है उन्हें देशघाति रूपसे बाँधता है तथा जिनकी अपवर्तना नहीं होती है उन्हें सर्वघातिरूपसे बांधता है ।

§ ४१ यह सूत्र सुगम है ।

* अपवर्तना संज्ञाका पहले कथन कर आये हैं ।

§ ४२ यह सूत्र भी गतार्थ है, क्योंकि अपवर्तना संज्ञाका पहले ही अच्छी तरह विचार कर आये हैं । इसलिये अपवर्तनासे रहित केवलज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय सर्वघाति ही अनुभागबन्ध होता है, तथा क्षयोपशमशक्तिसे संयुक्त शेष अपवर्तना प्रकृतियोंका देशघाति ही अनुभागबन्ध इस स्थानमें प्रवृत्त होता है, क्योंकि देशघातिकरणसे लेकर इस स्थानमें उन प्रकृतियोंका अन्य प्रकार सम्भव नहीं है । जिन कर्मोंके देशघातिस्पर्धक होते हैं उन कर्मोंकी अपवर्तना संज्ञा है । इस प्रकार उक्त भाष्यगाथाके उत्तरार्धसे सम्बन्ध रखनेवाले इस विभाषाग्रन्थका यह समुच्चयरूप अर्थ है । इस प्रकार इतने विभाषाग्रन्थके द्वारा प्रथम भाष्यगाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त करके अब दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना और विभाषा करते हुए आगेके प्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

* यह दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना है ।

§ ४३ यह सूत्र सुगम है ।

---

1. पुव्वपरूविदा ता०

* तं जहा ।

§ ४४ सुगमं ।

* (१५९) चरिमो बादररागो णामागोदाणि वेदणीयं च ।
वस्सस्संतो बंधदि दिवसस्संतो य जं सेसं ॥२०९॥

§ ४५ एसा विदियगाहा अणियट्टिकरणचरिमसमये मोहणीयवज्जाणं सव्वेसिं कम्माणं ट्ठिदिबंधपमाणावहारणट्ठमोइण्णा, परिप्फुडमेवेत्थ तहाविहत्थणिद्देसदंसणादो। एदस्स च गाहासुत्तस्स अवयवत्थपरूवणा सुगमा। संपहि एदस्सेव गाहासुत्तत्थस्स फुडीकरणट्ठमुवरिमं विहासागंथमाह।

* विहासा ।

§ ४६ सुगमं ।

* जहा ।

§ ४७ सुगमं ।

---

* वह जैसे ।

§ ४४ यह सूत्र सुगम है ।

* नौवें गुणस्थानमें अन्तिम समयवर्ती बादर साम्परायिक क्षपक नामकर्म, गोत्रकर्म और वेदनीयकर्मको एक वर्षके अन्तर्गत बाँधता है और जो शेष तीन घातियाकर्म (ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म) हैं उनको एक दिवसके अन्तर्गत बाँधता है ॥२०९॥

§ ४५ यह दूसरी भाष्यगाथा अनिवृत्तिकरण क्षपकके अन्तिम समयमें मोहनीयकर्मको छोड़कर शेष सभी कर्मोंके स्थितिबन्धके प्रमाणका अवधारण करनेके लिये अवतरित हुई है, क्योंकि स्पष्टरूपसे ही इस भाष्यगाथामें उस प्रकारके अर्थका निर्देश देखा जाता है। किन्तु इस गाथासूत्रके अवयवोंकी अर्थप्ररूपणा सुगम है। अब इसी गाथासूत्रको स्पष्ट करनेके लिये आगेके विभाषा ग्रन्थको कहते हैं—

* अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा करते हैं ।

§ ४६ यह सूत्र सुगम है ।

* वह जैसे ।

§ ४७ यह सूत्र सुगम है ।

*** चरिमसमयबादरसांपराइयस्स णामागोदवेदणीयाणं ट्ठिदिबंधो वस्सं देसूणं। तिण्हं घादिकम्माणं मुहुत्तपुधत्तो ट्ठिदिबंधो।**

§ ४८ एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि। णवरि मोहणीयस्स चरिमो ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तमेत्तो सुपसिद्धो त्ति ण एदम्मि गाहासुत्ते परूविदो। एवं विदियभासगाहाए अत्थविहासणं समाणिय संपहि तदियभासगाहाए विहासणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाह।

*** एत्तो तदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा।**

§ ४९ सुगमं।

*** तं जहा।**

§ ५० सुगमं।

*** चरिमो य सुहुमरागो णामागोदाणि वेदणीयं च।**
दिवसस्संतो बंधदि भिण्णमुहुत्तं तु जं सेसं ॥२१०॥

§ ५१ एसा तदियभासगाहा चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स छण्हं कम्माणं ट्ठिदिबंधपमाणमेत्तियं होदि त्ति पदुप्पायणट्ठमोइण्णा। तं जहा—'चरिमो य सुहुम-

---

*** अन्तिम समयवर्ती बादरसाम्परायिक क्षपकके नामकर्म, गोत्रकर्म और वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध एक वर्षसे कुछ कम होता है।**

तथा तीन घातिकर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्मका स्थितिबन्ध मुहूर्तपृथक्त्वप्रमाण होता है।

§ ४८ ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं। इतनी विशेषता है कि मोहनीय कर्मका अन्तिम स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त प्रमाण सुप्रसिद्ध है, इसलिये इसका कथन इस भाष्यगाथामें नहीं किया है। इस प्रकार इस दूसरी भाष्यगाथाके अर्थकी विभाषा समाप्त करके अब तीसरी भाष्यगाथाकी विभाषा करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** अब इससे आगे तीसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं।**

§ ४९ यह सूत्र सुगम है।

*** वह जैसे।**

§ ५० यह सूत्र सुगम है।

*** अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक जीव नामकर्म, गोत्रकर्म और वेदनीयकर्मको एक दिवसके भीतर बाँधता है तथा शेष जो तीन घातिकर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायकर्म हैं उन्हें भिन्नमुहूर्तप्रमाण बाँधता है ॥२१०॥**

§ ५१ यह तीसरी भाष्यगाथा अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके छह कर्मोंके स्थितिबन्धका प्रमाण इतना होता है, इस बातका कथन करनेके लिये अवतरित हुई है। यथा—'चरिमो य सुहुमरागो' अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसांपरायिक जीव 'णामा-गोदाणि वेदणीयं च' नाम, गोत्र और वेदनीय इन तीन अघाति कर्मोंको 'दिवसस्संतो बन्धदि' संख्यात मुहूर्तप्रमाण बाँधता है यह उक्त

रागो' चरिमसमयसुहुमसांपराइओ 'णामागोदाणि वेदणीयं च' एदाणि तिण्णि अघादिकम्माणि दिवसस्संतो बंधदि, संखेज्जमुहुत्तपमाणेण बंधदि त्ति वुत्तं होइ, णामागोदाणमट्ठमुहुत्तमेत्तट्ठिदिबंधदंसणादो, वेदणीयस्स बारसमुहुत्तमेत्तट्ठिदिबंधदंसणादो त्ति। 'भिण्णमुहुत्तं तु जं सेसं, एदेण सुत्तावयवेण वुत्तसेसाणं तिण्हं घादिकम्माण-मंतोमुहुत्तमेत्तो सुहुमसांपराइयचरिमसमयविसओ ट्ठिदिबंधो होदि त्ति एसो अत्थविसेसो जाणाविदो। संपहि एदस्सेव गाहासुत्तत्थस्स फुडीकरणट्ठमुवरिमो विहासागंथो।

*** विहासा।**

§ ५२ सुगम।

*** चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स णामागोदाणं ट्ठिदिबंधो अट्ठ-मुहुत्ता[1]।**

वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो बारसमुहुत्ता।

तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तो।

§ ५३ एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि। एवमेदाहिं तीहिं भासगाहाहिं 'के बंधदि' त्ति एदस्स मूलगाहावयवस्स अत्थो भणिदो। संपहि 'के व वेदयदि अंसे। इच्चेदं मूल-गाहासुत्तावयवमस्सियूण किट्टीवेदगस्स घादिकम्माणमणुभागोदयविसेसगवेसणट्ठ चउत्थीए भासगाहाए समुक्कित्तणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

कथनका तात्पर्य है, क्योंकि नामकर्म और गोत्रकर्मका आठ मुहूर्तप्रमाण स्थितिबन्ध देखा जाता है तथा वेदनीय कर्मका बारह मुहूर्तप्रमाण स्थितिबन्ध देखा जाता है। 'भिण्णमुहुत्तं च जं सेसं' इस भाष्यगाथा सूत्रके अन्तिम चरणसे पहले कहे गये तीन अघाति कर्मोंसे शेष रहे जो तीन घातिकर्म उनका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थितिबन्ध सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके अन्तिम समयमें होता है। इस प्रकार इस अर्थविशेषका ज्ञान कराया गया है। अब गाथा सूत्रके इसी अर्थको स्पष्ट करनेके लिये आगेका विभाषा ग्रन्थ आया है—

*** अब इस भाष्यगाथासूत्रकी विभाषा करते हैं।**

§ ५२ यह सूत्र सुगम है।

*** अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध आठ मुहूर्तप्रमाण होता है।**

वेदनीय कर्मका स्थितिबन्ध बारह मुहूर्तप्रमाण होता है।

तथा तीन घातिकर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है।

§ ५३ ये तीनों सूत्र सुगम हैं। इस प्रकार इन तीन भाष्यगाथाओं द्वारा 'के बन्धदि' इस मूल-सूत्र गाथासम्बन्धी अवयवका अर्थ कहा। अब 'के व वेदयदि अंसे' इस प्रकार इस मूल गाथासूत्र-सम्बन्धी अवयवका आश्रय करके कृष्टिवेदकके घातिकर्मोंके अनुभागके उदयविशेषका अनुसन्धान करनेके लिये चौथी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—

---

1. अंतोमुहुत्त' प्रे० का०।

* एत्तो चउत्थीए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

§ ५४ सुगमं ।

* (१५८) अध मदि-सुद-आवरणे[1] च अंतराइए च देसमावरणं ।
लद्धी य[2] वेदयदे सव्वावरणं अलद्धी य ॥२११॥

§ ५५ एसा चउत्थी भासगाहा णाणावरणदंसणावरण-अंतराइयाणं तिण्हं मूलपयडीणं जाओ उत्तरपयडीओ खओवसमसत्तिसहगदाओ तासिमणुभागोदयो एदस्स किट्टीवेदगक्खवगस्स देसघादीओ सव्वघादीओ वा होदूण पयट्टदि त्ति एदस्स अत्थविसेसस्सपदुप्पायणट्ठमोइण्णा । संकामणपट्ठवगस्स बिदियभासगाहासंबंधेण पुव्वमेवंविहो अत्थविसेसो सवित्थरं विहासिदो चेव, पुणो किमट्ठमेण्हिमाढविज्जदि त्ति णासंका कायव्वा, किट्टीवेदगसंबंधेण विसेसियूण पुणो वि तप्परूवणाए दोसाणुवलभादो । एदिस्से चउत्थभासगाहाए किंचि अवयवत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहा—अथेत्यय

---

* इससे आगे चौथे भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ।

§ ५४ यह सूत्र सुगम है ।

* जो लब्धिसंज्ञावाले (क्षयोपशमसंज्ञक) मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण और पाँच अन्तराय कर्म हैं तथा (भाष्यगाथासूत्रमें आये हुए 'च' पदसे गृहीत अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण, चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण कर्म हैं) उन सबका देशावरणरूपसे वेदन करता है; तथा अलब्धि संज्ञावाले जिन कर्मोंका क्षयोपशम नहीं हुआ है उन कर्मोंका सर्वघातिरूपसे वेदन करता है ॥२११॥

§ ५५ यह चौथी भाष्यगाथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन मूल प्रकृतियोंकी क्षयोपशमशक्तिसे युक्त जो उत्तरप्रकृतियाँ हैं उनके अनुभागका उदय इस कृष्टिवेदक क्षपकके देशघातिरूप होकर प्रवृत्त होता है या सर्वघातिरूप होकर प्रवृत्त होता है इस प्रकार इस अर्थविशेषका प्रतिपादन करनेके लिये अवतीर्ण हुई है ।

शंका—संक्रामण प्रस्थापकके दूसरी भाष्यगाथाके सम्बन्धसे पहले ही इस प्रकारके अर्थविशेषकी विस्तारके साथ विभाषा कर आये हैं, इसलिये इस समय इसको पुनः किसलिये आरम्भ किया जाता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि कृष्टिवेदकके सम्बन्धवश विशेषरूपसे फिर भी उसके प्ररूपण करनेमें कोई दोष नहीं पाया जाता ?

---

१. अध सुद-मदिआवरणे वि० ।
२. लद्धी यं प्रे० का० ।

निपातः पादपूरणेऽथवाणुवसमीकरणे[1] वा द्रष्टव्यः। 'सुद-मदि आवरणे च' एवं भणिदे सुदणाणावरणीये मदिणाणावरणीये च अणुभागमेसो वेदंतो देसमावरणं देसघादि, सरूवमेदेसिमणुभागं वेदेदि त्ति वुत्तं होइ।

§ ५६ एत्थ च सद्दणिद्देसेण 'ओहि-मणपज्जवणाणावरणीयाणं चक्खु-अचक्खु-ओहिदंसणावरणीयाणं च गहणं कायव्वं, तेसिं पि खओवसमलद्धिसंभववसेण देसघादि-अणुभागोदयसंभवं पडि विसेसाभावादो। ण केवलमेदेसिं चेव कम्माणमणुभागमेसो देसघादिसरूवं वेदेदि, किंतु 'अंतराइए[2] च' पंचंतराइयपयडीणं पि देसावरणसरूवमणु-भागमेसो वेदयदे, लद्धिकम्मसत्त पडि विसेसाभावादो त्ति वुत्तं होइ। कुदो एवमेदेसिं कम्माणमणुभागोदयस्स देसघादित्तसंभवो जादो त्ति आसंकाए इदमाह—'लद्धी यं' जं जम्हा खओवसमलद्धी एदेसिं कम्माणमेत्थ संभवइ, तम्हा देसघादिसरूवमेदेसिमणु-भागं वेदेदि त्ति भणिदं होदि।

§ ५७ एवमेदेण एदेसिं कम्माणमणुभागोदयस्स देसघादित्तसंभवं पदुप्पाइय संपहि तदेयंतावहारणणिरायरणमुहेण सव्वघादिसरूवो वि एदेसिं वुत्तासेसकम्माणमणु-

---

अब इस चौथी भाष्यगाथाके अवयवोंके किंचित् अर्थकी प्ररूपणा करेंगे। यथा—इस भाष्य-गाथा सूत्रमें 'अथ' यह निपात पादपूरण अर्थमें जानना चाहिये या अनुपशमीकरण के अर्थमें जानना चाहिये। 'सुद-मदि आवरणे च' ऐसा कहने पर श्रुतज्ञानावरणीय और मतिज्ञानावरणीयके अनुभागको यह क्षपक वेदन करता हुआ देशावरणरूपसे ही वेदन करता है अर्थात् इन कर्मोंका देशघाति स्वरूप अनुभागका वेदन करता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

§ ५६ इस भाष्यगाथा सूत्रमें आये हुए 'च' शब्दके निर्देशसे अवधिज्ञानावरण, मन पर्ययज्ञाना-वरण कर्मोंका तथा चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण कर्मोंका ग्रहण करना चाहिये क्योंकि इन कर्मोंका भी क्षयोपशमलब्धिके सम्भव होनेसे देशघाति अनुभागके उदयके सम्भव होनेके प्रति विशेषताका अभाव है। केवल इन्हीं कर्मोंके अनुभागको यह क्षपक देशघाति-स्वरूपसे वेदन नहीं करता है, किन्तु 'अंतराइए च' अन्तराय कर्मकी पाँचों प्रकृतियोंका भी देशावरण-स्वरूप अनुभागको यह क्षपक वेदन करता है, क्योंकि उनके उक्तकर्मोंके क्षयोपशमलब्धि कर्मांशरूप होनेके प्रति विशेषताका अभाव है। यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार इन कर्मोंके अनुभागका उदय देशघातिपनेको कैसे प्राप्त हो गया ऐसी आशंका होने पर उक्त भाष्यगाथासूत्र में यह वचन कहा है—'लद्धी य' यतः इन कर्मों की क्षयोपशमलब्धि यहाँ पर सम्भव है, इसलिये इन कर्मों के देशघातिस्वरूप अनुभाग को यह जीव वेदता है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

§ ५७. इस प्रकार इस कथन द्वारा इन कर्मों के अनुभाग के उदय के देशघातिपने के संभव होने का कथन करके अब उन कर्मों के एकान्त के निश्चय के निराकरणद्वारा इन उक्त समस्त

---

१. पादपूरणार्थेवाणुवशमीकरणे प्रे० का०। पादपूरणाथ वाणुवसमीकरणे ता०।

२. अंतराये आ०।

भागोदयसंभवो अत्थि त्ति पदुप्पाएमाणो इदमाह—'सव्वावरणं अलद्धी य । ण केवल-मेदेसिं[1] कम्माणमणुभागोदयं देसघादिसरूवं चेव वेदयदि, किंतु सव्वावरणं च' सव्व-घादिसरूवं च एदेसिमणुभागं वेदेदि । किं कारणं ? अलद्धी य, खओवसमलद्धीविरहो अलद्धी णाम । जदो एदेसिं कम्माणं खओवसमविसेसो केसु वि जीवेसु णत्थि, तदो सव्वघादिसरूवो वि एदेसिं कम्माणमणुभागोदओ कत्थइ ण विरुज्झदि त्ति वुत्तं होइ ।

§ ५८ एत्थ चोदओ भणइहोउ णाम ओहि–मणपज्जवणाणावरणीयाणमोहिदं-सणावरणीयस्स च अणु, भागोदयो केसु वि जीवेसु देसघादिसरूवो अण्णेसु च सव्वघा-दिसरूवो होदूण पयट्टदि त्ति, सव्वेसु जीवेसु एदासिं तिण्हं पयडीणं खओवसमलद्धीए णियमाणुवलंभादो । किंतु सुद–मदिआवरणदिपयडीणं देस–सव्वघादिसरूवो अणुभागो-दओ भयणिज्जसरू, वेणेदस्स खवगस्स होदि त्ति णेदं घडदे, तासिं खओवसमलद्धीए सव्वजीवेसु अवस्सं, भाविणियमदंसणादो त्ति ?

कर्मों के अनुभाग का उदय सर्वघातिस्वरूप भी सम्भव है इस बात का प्रतिपादन करते हुए उक्त भाष्यगाथा का यह वचन कहा है—'सव्वावरणं अलद्धी य' इन कर्मों के अनुभाग के उदय को केवल देशघातिस्वरूप ही वेदन नहीं करता, किन्तु 'सव्वावरणं च' इन कर्मों को सर्वघातिस्वरूप भी वेदन करता है ।

शंका—इसका कारण क्या है ?

समाधान—क्योंकि 'अलद्धी य' ये कर्म क्षयोपशमलब्धि से रहित हैं ।

अलब्धिका अर्थ है कि यतः इन कर्मों का क्षयोपशमविशेष किन्हीं जीवों में नहीं पाया जाता इसलिये किन्हीं जीवों में इन कर्मों के अनुभाग का उदय सर्वघातिस्वरूप भी विरोध को प्राप्त नहीं होता ।

§ ५८ **शंका**—यहां पर शंकाकार कहता है कि अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और अवधिदर्शनावरण के अनुभाग का उदय किन्हीं जीवों में देशघातिस्वरूप होकर प्रवृत होवे तथा अन्य जीवों मे उक्त तीन कर्मों का उदय सर्वघातिस्वरूप होकर प्रवृत होवे, क्योंकि सब जीवों मे इन तीन प्रकृतियों की क्षयोपशमलब्धि होने का नियम नहीं पाया जाता । किन्तु मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण आदि प्रकृतियों के देशघाति और सर्वघातिस्वरूप अनुभाग का उदय भजनीय-रूप से इस क्षपकके प्रवृत्त होता है यह बात घटित नहीं होती, क्योंकि उन प्रकृतियों के क्षयोपशम-लब्धि के सब जीवों में अवश्य होनेका नियम देखा जाता है ।

---

१. सव्वावरणो आ० ।

§ ५९ एत्थ परिहारो वुच्चदे—सच्चमेदमेदेसिं कम्माणं खओवसमलद्धिसामण्णं सव्वजीवेसु णियमा संभवदि त्ति, किंतु खओवसमविसेसमस्सियूण पयदत्थसमत्थणा इत्थमणुगंतव्वा। तं जहा—मदि-सुदणाणावरणीयाणं ताव उच्चदे। दोण्हमेदासिं पयडीणमसंखेज्जलोगमेत्तीओ उत्तरोत्तरपयडीओ अत्थि पज्जायसुदणाणप्पहुडि जाव सव्वुक्कस्ससुदणाणे त्ति समवट्ठिदणाणवियप्पेसु पडिबद्धाणमसंखेज्जलोगमेत्ताणमावरणवियप्पाणमुवलंभादो। ण च मदिणाणस्स आवरणवियप्पा एत्तियमेत्ता सुत्तणिबद्धा णत्थि त्ति आसंका कायव्वा; मदिपुव्वसुदणाणभेदेण भिण्णस्स मदिणाणस्स वि तेत्तियमेत्ताणमावरणवियप्पाणं संभवे विरोहाभावादो। एवं च संते तत्थ जो सव्वुक्कस्सखओवसमपरिणदो चोद्दसपुव्वहरो सव्वुक्कस्सकोट्ठबुद्धिआदिमदिणाणविसेससंपण्णो खवगसेढिमारूढो तस्स देसघादिसरूवो चेव दोण्हमेदासिं पयडीणमणुभागोदओ होदि, तदुत्तरपयडीणं सव्वासिमेव तत्थ देसघादिसरूवेण परिणमिय उदयट्ठिदीए समवट्ठाणदंसणादो।

§ ६० जो पुण विगलसुदधारओ विगलमदिणाणी च सेढिमारुहदि तत्थ सव्वघादिसरूवो एदासिमणुभागोदओ दट्ठव्वो; हेट्ठिमावरणाणं तत्थ देसघादिपरिणामसंभवे वि उवरिमावरणवियप्पाणं सव्वघादिसरूवाणमेव तम्मि पवुत्तिदंसणादो। हंदि जइ वि एगक्खरेणूणसयलसुदधारओ खवगसेढिमारुहदि, तो वि तत्थ सव्वघादिसरूवो

§ ५९ **समाधान**—अब यहाँपर इसका परिहार कहते हैं—यह बात सच है कि इन कर्मोंकी क्षयोपशमलब्धि-सामान्य सब जीवोंमें नियमसे सम्भव है, किन्तु क्षयोपशम-विशेषका आश्रय करके प्रकृत अर्थका समर्थन इस प्रकार जानना चाहिये; यथा—सर्वप्रथम मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरणकी अपेक्षा कथन करते हैं—इन दोनों प्रकृतियों की असंख्यातलोकप्रमाण उत्तरोत्तर प्रकृतियाँ हैं, क्योंकि पर्याय श्रुतज्ञानसे लेकर सबसे उत्कृष्ट श्रुतज्ञान तक समवस्थित ज्ञानके भेदोंमें प्रतिबद्ध असंख्यात लोकप्रमाण आवरणके भेद उपलब्ध होते हैं। यहाँ पर मतिज्ञानके इतने आवरणके भेद सूत्रमें नहीं कहे गये हैं, ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञानके भेदसे भेदको प्राप्त हुए मतिज्ञानके भी उतने आवरणके भेदोंके सम्भव होनेमें विरोधका अभाव है। और ऐसा होनेपर उस विषयमें जो सबसे उत्कृष्ट क्षयोपशमसे परिणत चौदह पूर्वधर तथा जो सबसे उत्कृष्ट कोष्ठबुद्धि आदि मतिज्ञान विशेषसे सम्पन्न ऐसा जो क्षपकश्रेणिपर आरूढ़ जीव है उसके इन दोनों प्रकृतियोंका देशघातिस्वरूप ही अनुभागका उदय होता है, क्योंकि उन दोनों प्रकृतियोंके सभी उत्तर भेदोंकी वहाँ देशघातिस्वरूपसे परिणमन करके उदयस्थितिका समवस्थान देखा जाता है।

§ ६० किन्तु जो विकल श्रुतधारक और विकल मतिज्ञानी जीव क्षपकश्रेणिपर आरोहण करता है उसके इन दोनों प्रकृतियोंके उत्तर भेदोंके अनुभागका सर्वघातिस्वरूप उदय जानना चाहिये। यद्यपि उक्त दोनों प्रकृतियोंके अधस्तन आवरणोंका देशघातिरूपसे परिणमन सम्भव होने

१. लद्धि प्रे० का०।

सुद-मदिणाणावरणीयाणमणुभागोदओ ण विरुद्धो; चरिमावरणवियप्पस्स तत्थ सव्व-घादित्तदंसणादो त्ति । ण च विगलसुदधारयाणं खवगसेढिसमारोहोणासंभवो, दस-णव-पुव्वहराणं पि सेढिसमारोहणे संभवोवएसादो । तम्हा सव्वुक्कस्सखओवसमलद्धिपरिणदसयलसुदणाणम्मि उक्कस्सकोट्ठबुद्धिआदिचदुरमलबुद्धिविसिट्ठे जीवे देसावरणीयसरूवो एदेसिमणुभागोदओ, तदण्णत्थ सव्वघादिसरूवो त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसब्भावो; एवमोहिणाणावरणादिसेसपयडीणं पि पयदत्थजोजणा जाणिय कायव्वा । णवरि ओहिमणपज्जवणाणावरणीयाणमोहिदंसणावरणीयस्स च उत्तरोत्तरपयडि-विवक्खाए विणा वि देस-सव्वघादित्तमणुभागोदयस्स संभवदि त्ति दट्ठव्वं, सव्वेसु जीवेसु तेसिं खओवसमणियमाणुवलंभादो । संपहि एदस्सेव गाहासुत्तत्थस्स फुडी-करणट्ठमुवरिमं विहासागंथमाढवेइ—

* लद्धीए विहासा ।

§ ६१ सुगमं ।

* जदि सव्वेसिमक्खराणं खओवसमो गदो, तदो सुदावरणं मदि-

पर भी उपरिमआवरणोंके भेदोंका सर्वघातिस्वरूपसे ही वहाँ प्रवृत्ति देखी जाती है । खेद है कि यदि एक अक्षरसे कम वह सम्पूर्ण श्रुतका धारक होकर क्षपकश्रेणिपर आरोहण करता है तो भी उसके श्रुतज्ञानावरणीय और मतिज्ञानावरणीयके अनुभागका सर्वघातिस्वरूप उदय विरोधको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि अन्तिम आवरणके भेदका उसके सर्वघातिपना देखा जाता है । और विकल श्रुतधरों-का क्षपकश्रेणिपर आरोहण करना असम्भव नहीं है, क्योंकि दस पूर्वधर और नौ पूर्वधरोंका भी क्षपकश्रेणिपर आरोहण करना सम्भव है, ऐसा आगमका उपदेश है । इसलिये सबसे उत्कृष्ट क्षयोप-शमलब्धिसे परिणत सकल श्रुतज्ञानी जीवके तथा उत्कृष्ट कोष्ठबुद्धि आदि चार निर्मल बुद्धिसे युक्त जीवके इन दोनों प्रकृतियोंके अनुभागका देशघातिस्वरूप उदय होता है तथा उनसे अन्य क्षपक जीवोंके सर्वघातिस्वरूप ही उदय होता है इस प्रकार यह प्रकृत में सूत्रका अर्थके साथ सद्भाव है । इसी प्रकार अवधिज्ञानावरण आदि शेष प्रकृतियोंकी भी प्रकृत अर्थके साथ जानकर योजना कर लेनी चाहिये । इतनी विशेषता है कि अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और अवधिदर्शनावरण की उत्तरोत्तर प्रकृतियोंकी विवक्षाके विना भी देशघाति और सर्वघातिरूपसे अनुभागका उदय सम्भव है ऐसा जानना चाहिये, क्योंकि सभी जीवोंमें उन प्रकृतियोंके क्षयोपशमका नियम उपलब्ध नहीं होता है । अब उक्त गाथासूत्रके इसी अर्थको स्पष्ट करनेके लिये आगेके विभाषा ग्रन्थको आरम्भ करते हैं—

* 'लद्धीए' इस पद की विभाषा इस प्रकार है ।

§ ६१ यह सूत्र सुगम है ।

* यदि सभी अक्षरोंका क्षयोपशम हो गया है तब यह जीव श्रुतज्ञानावरण और मतिज्ञानावरणका देशघातिरूप वेदन करता है ।

आवरणं च देसघादिं वेदयदि । अध एकस्स वि अक्खरस्स ण गदो खओवसमो तदो सुद-मदि-आवरणाणि सव्वघादीणि वेदयदि ।

§ ६२ एत्थ 'जइ वि सव्वेसिमक्खराणं खओवसमो गदो' त्ति भणिदे सयलसुदणाणदव्व-भावक्खराणं चदुसट्ठिअक्खरसंजोगजणिदसरूवेणेगट्ठिवग्गपमाणाणं सव्वेसिमेव जइ खओवसमो जादो तो सयलसुदधारओ खवगो चदुरमलबुद्धिविसेससंपण्णो सुदणाणावरणीयं मदिणाणावरणीयं च देसघादिसरूवं वेदेदि, तत्थ तदुत्तरपयडीणं णिरवसेसमेव देसघादिसरूवेण परिणदत्तादो त्ति वुत्तं होइ ।

§ ६३ 'अध एक्कस्स वि अक्खरस्स०' एवं भणिदे जइ सव्वेसिमेव सुदणाणक्खराणमेगक्खरेणूणाणं खओवसमो संजादो तो वि दोण्हमेदासिं पयडीणमणुभागं सव्वघादिं चेव वेदेदि त्ति भणिदं होदि, तत्थ चरिमक्खरावरणस्स खओवसमाभावेण सव्वघादित्तदंसणादो ।

§ ६४ एवमंतराइयस्स वि जइ अधिओ खओवसमो जादो तो उक्कस्समणबलादिलद्धिपरिणदो तदणुभागं देसघादिसरूवं वेदेदि चेव । जइ बहुगो खओवसमो ण संपत्तो तो तं सव्वघादिं चेव वेदेदि त्ति वत्तव्वं । संपहि इममेवत्थमुवसंहारमुहेण परूवेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ ।

---

* अब यदि एक भी अक्षरका क्षयोपशम नहीं हुआ है तब यह क्षपक मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण को सर्वघातिरूप वेदन करता है ।

§६२ यहाँ पर यद्यपि सब अक्षरोंका क्षयोपशम हो गया है ऐसा कहने पर चौसठ अक्षरों के संयोग से उत्पन्नस्वरूप होने से एक ही वर्गप्रमाण सम्पूर्ण श्रुतज्ञानके समस्त द्रव्यभावरूप अक्षरोंका यदि क्षयोपशम हो गया है तो वह सकल श्रुतधारक क्षपक तथा चार अमल बुद्धिविशेषसे सम्पन्न वह क्षपक श्रुतज्ञानावरणीय और मतिज्ञानावरणीय प्रकृतियोंको देशघातीरूप वेदता है, क्योंकि वहाँ उस जीवके उन दोनों कर्मोंकी उत्तरप्रकृतियोंका पूरी तरह से देशघातीरूप से परिणमन हो गया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

§ ६३ 'अध एक्कस्स वि अक्खरस्स०' ऐसा कहने पर यदि एक भी अक्षर से कम सभी श्रुतज्ञानसम्बन्धी अक्षरोंका क्षयोपशम हो गया है तो भी इन दोनों प्रकृतियों के अनुभाग को सर्वघातिरूपसे ही वेदता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि उस जीवके अन्तिम अक्षरावरणके क्षयोपशमका अभाव होने से उसके सर्वघातिपना उदयमें देखा जाता है ।

§ ६४ इसी प्रकार अन्तराय कर्म का भी यदि सबसे अधिक क्षयोपशम हो गया है तो उत्कृष्ट मनोबल आदि लब्धिसे परिणत वह क्षपक जीव उसके अनुभागको देशघातिरूप ही वेदता है । यदि बहुत क्षयोपशम नहीं प्राप्त हुआ है तो वह उस अन्तराय कर्मको सर्वघातिरूप से ही वेदता है ऐसा यहाँ कहना चाहिये । अब इसी अर्थका उपसंहार द्वारा प्ररूपण करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* एवमेदेसिं तिण्हं घादिकम्माणं जासिं पयडीणं खओवसमो गदो तासिं पयडीणं देसघादिउदयो। जासिं पयडीणं खओवसमो ण गदो तासिं पयडीणं सव्वघादिउदओ।

§ ६५ गयत्थमेदं सुत्तं।

एवमेत्तिएण पबंधेण चउत्थभासगाहाए अत्थविहासणं समाणिय संपहि जहावसर-पत्ताए पंचमभासगाहाए अत्थविहासणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाह—

---

* इस प्रकार इन तीन घातिकर्मसम्बन्धी जिन प्रकृतियोंका क्षयोपशम हो गया है उन प्रकृतियोंका देशघातिरूपसे उदय होता है तथा जिन प्रकृतियोंका क्षयोपशम नहीं हुआ है उन प्रकृतियोंका सर्वघातिरूपसे उदय होता है।

§ ६५ यह सूत्र गतार्थ है।

विशेषार्थ—यह सामान्य वचन है कि क्षपकश्रेणिपर आरोहण करनेवाला श्रुतकेवली होता है, पर इस वचनका अपवाद भी पाया जाता है। इसका उल्लेख चूर्णिसूत्रके आधारपर वीरसेन स्वामीने किया है। चूर्णिसूत्रमें यह वचन उपलब्ध होता है कि श्रुतज्ञानके एक भी अक्षरका आवरण-कर्म यदि शेष है और आवरणका यदि क्षयोपशम नहीं हुआ है तो उतने अंशमें वह श्रुतज्ञानावरणके सर्वघातिपनेका वेदन करता है। यही बात मतिज्ञानावरणके सम्बन्धमें भी समझ लेनी चाहिए। जिस जीवके श्रुतज्ञानावरणका पूरा क्षयोपशम होता है उसके मतिज्ञानावरणका भी पूरा क्षयोपशम होता है। श्रुतज्ञानावरणके पूरे क्षयोपशमके पाये जाने से जहाँ यह क्षपकजीव श्रुतकेवली होता है वहीं मतिज्ञानावरणके पूरे क्षयोपशमके पाये जाने से उसके कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि, संभिन्नसंश्रोत्रबुद्धि और पदानुसारित्वबुद्धि ये चार बुद्धियाँ अवश्य पाई जाती हैं। ऐसे जीव मतिज्ञान और श्रुतज्ञानकी अपेक्षा पूरे लब्धिसम्पन्न होते हैं, क्योंकि उनके मात्र देशघाति अनुभाग का उदय पाया जाता है। किन्तु जिनके श्रुतज्ञानमें एक अक्षरकी भी कमी पायी जाति है उनके मतिज्ञान भी उतने अंशमें कम होता है, क्योंकि उनके उतने अंश में सर्वघाति अनुभाग कर्म का उदय नियम से पाया जाता है। यह मति-ज्ञान और श्रुतज्ञानके सम्बन्धकी व्यवस्था है। उक्त भाष्य गाथामें आगे हुए 'च' पदसे यह भी ज्ञात होता है कि जो व्यवस्था मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके सम्बन्धमें है वही व्यवस्था चक्षुदर्शन और अचक्षु-दर्शनके सम्बन्धमें भी जान लेना चाहिये। अर्थात् जिन जीवोंके चक्षुदर्शनावरण और अचक्षुदर्शना-वरणका पूरा क्षयोपशम हुआ है, वे लब्धिसम्पन्न होते हैं तथा जिन जीवोंके इन दोनों कर्मोंका पूरा क्षयोपशम नहीं हुआ है वह जितने अंशमें कम होता है वे उतने अंशमें लब्धिसम्पन्न नहीं होते हैं। यहाँ मात्र देशघाति कर्मके उदयकी अर्थात् क्षयोपशमकी लब्धि संज्ञा है और जिस कर्मका जितने अंशमे क्षयोपशम न होकर सर्वघाति अनुभागका उदय शेष है उसकी अलब्धि संज्ञा है।

इसी प्रकार क्षपकश्रेणिसे जिन जीवोंको अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और अवधिदर्शन पूरा पाया जाता है उनके मात्र देशघाति कर्मका उदय होने से वे लब्धिसम्पन्न होते हैं और जिनके उक्त कर्मोंका अंशतः या समग्ररूपसे सर्वघाति अनुभागका उदय पाया जाता है वे अंशतः या पूरी तरहसे अलब्धिसम्पन्न होते हैं।

इस प्रकार इतने प्रबन्ध द्वारा चौथी भाष्य गाथा के अर्थ की विभाषा समाप्त करके अब यथावसर प्राप्त पाँचवीं भाष्य गाथा के अर्थ की विभाषा करने के लिए आगे के सूत्रप्रबन्ध को कहते हैं—

* एत्तो पंचमीए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

§ ६६ सुगमं ।

* (१५९) जसणाममुच्चगोदं वेदयदि णियमसा अणंतगुणं ।
गुणहीणमंतरायं से काले सेसगा भज्जा ॥२१२॥

§ ६७ एसा वि पंचमी भासागाहा 'के व वेदयदि अंसे' इच्चेवं मूलगाहासुत्तावयवमस्सियूण अणुभागोदयविसयमेव विसेसंतरं पदुप्पाएदुमोइण्णा । तं कधं ? 'जसणाममुच्चगोदं' एवं भणिदे जसगित्तिणाममुच्चागोदं च 'वेदयदे' अणुहवइ, 'णियमसा' णिच्छयेणेव 'अणंतगुणं समए समए अणंतगुणवड्ढीए दोण्हमेदेसिं कम्माणमणुभागं वेदेदि त्ति वुत्तं होइ । कुदो एवमिदि चे ? सुहाणं पयडीणं विसोहिवड्ढीए अणुभागोदयस्स अणंतगुणवड्ढिं मोत्तूण पयारंतरासंभवादो । एदं च जसगित्तिउच्चागोदवयणं देसामासयं तेण जत्तियाओ सुहपयडीओ परिणामपच्चइयाओ तासिं सव्वासिमेवाणुभागोदयो पडिसमयमणंतगुणवड्ढीए एदस्स खवगस्स पयट्टदि त्ति णिच्छओ कायव्वो ।

---

* इससे आगे पाँचवीं भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ।

§ ६६ यह सूत्र सुगम है ।

* (१५९) यशःकीर्ति नामकर्म और उच्चगोत्रकर्मका यह क्षपक प्रतिसमय नियमसे अनन्तगुणवृद्धिरूपसे वेदन करता है, अन्तरायकर्मको यह क्षपक प्रतिसमय अनन्तगुणहानिरूपसे वेदन करता है तथा उक्त कर्मोंसे जो कर्म शेष बचे हैं उनको यह क्षपक प्रतिसमय भजनीयरूप से अर्थात् छह वृद्धि, छह हानि में से कोई एक वृद्धि और कोई एक हानिरूपसे तथा अवस्थितरूपसे वेदन करता है ॥२१२॥

§ ६७ यह पाँचवीं गाथा भी 'के व वेदयदि अंसे' इस प्रकार मूल गाथासूत्र के अन्तिम चरण का आश्रय करके अनुभागसम्बन्धी उदयविषयक विशेषताका ही प्रतिपादन करनेके लिये अवतीर्ण हुई है ।

शंका—वह किस प्रकार ?

समाधान—क्योंकि 'जसणाममुच्चगोदं' ऐसा कहने पर यशःकीर्ति नामकर्म और उच्चगोत्रको प्रतिसमय 'वेदयदे' अनुभवता है, 'णियमसा' निश्चयसे ही 'अणंतगुणं' अनन्तगुणवृद्धिरूपसे, उक्त दोनों कर्मोंके अनुभागका वेदन करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—ऐसा किस प्रकार है ?

समाधान—क्योंकि शुभ प्रकृतियोंकी विशुद्धिकी वृद्धिके कारण अनुभाग के उदयकी अनन्तगुणवृद्धिको छोड़कर और दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है । किन्तु यह यशःकीर्ति नामकर्म वचन और उच्चगोत्रकर्म वचन देशामर्षक है, इसलिये जितनी परिणामप्रत्ययरूप शुभप्रकृतियाँ हैं उन सबके ही अनुभागका उदय इस क्षपकके प्रतिसमय अनन्तगुणवृद्धिरूपसे प्रवृत्त होता है ऐसा यहाँ निश्चय करना चाहिये ।

§ ६८ असुहाणं पि असादाथिरादिपयडीणं परिणामपच्चइयाणमणुभागोदओ अणंतगुणहाणिसरूवेणेदम्मि विसये पयट्टदि त्ति एसो वि अत्थो एत्थ सुत्तसूचिदो दट्ठव्वो।

§ ६९ 'गुणहीणमंतरायं' एवं भणिदे पंचंतराइयपयडीणमणुभागमेसो पडिसमयमणंतगुणहाणिसरूवेण वेदेदि त्ति सुत्तत्थसंबंधो। कुदो एदस्स अणंतगुणहीणत्तणियमो चे ? ण, सुहपरिणामविरुद्धसहावस्स तदणुभागस्स एदम्मि विसये अणंतगुणहाणिं मोत्तूण पयारंतरसंभवाणुवलंभादो। केवलणाण-दंसणावरणीयाणं पि एत्थेव संगहो कायव्वो, सुत्तस्सेदस्स देसामासयत्तादो। तदो तेसिं अणुभागमेसो णियमा अणंतगुणहीणं वेदेदि त्ति घेत्तव्वं।

§ ७० 'से काले सेसगा भज्जा' एवं भणिदे वुत्तसेसाणि कम्माणि पडिसमयमणंतगुणहीणाणुभागोदयेण भजिदव्वाणि त्ति सुत्तत्थसंबंधो। कुदो एवमिदि चे ? तेसिं छवड्ढिहाणि-अवट्ठिदसरूवेणेदम्मि विसये अणुभागोदयपवुत्तिदंसणादो। तदो चदुविहस्स णाणावरणीयस्स तिविहस्स दंसणावरणीयस्स भवोपग्गहियणामपयडीणं च

---

§ ६८ जो परिणाम-प्रत्ययस्वरूप असातावेदनीय और अस्थिर आदि अशुभ प्रकृतियाँ हैं उन प्रकृतियोंके अनुभागका उदय इस स्थान में अनन्त गुणहानिरूपसे प्रवृत्त होता है, इस प्रकार यह अर्थ भी यहाँ पर उक्त भाष्यगाथा सूत्रसे सूचित हुआ जानना चाहिये।

§ ६९ 'गुणहीणमंतरायं' ऐसा कहनेपर पाँच अन्तराय प्रकृतियों के अनुभागको यह क्षपक प्रतिसमय अनन्तगुणहानिरूपसे वेदता है, यह इस भाष्यगाथा सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है।

शंका—इस जीव के अन्तराय कर्मका अनन्तगुणहीनरूपसे अनुभव करनेका नियम किस कारण है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्तरायकर्म शुभपरिणामके विरुद्धस्वभाववाला होता है, इसलिए इस क्षपकके पाँच अन्तराय कर्मके अनुभागका इस स्थानमें अनन्तगुणहानिको छोड़कर दूसरा प्रकार सम्भव नहीं उपलब्ध होता।

केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरण प्रकृतियोंका भी यहींपर पाँच अन्तराय कर्मोंके साथ संग्रह करना चाहिये, क्योंकि यह भाष्यगाथा सूत्र देशामर्षक है, इसलिये इन दो प्रकृतियोंके अनुभागको भी यह क्षपक नियमसे अनन्तगुणहीनरूपसे वेदन करता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये।

§ ७० 'से काले सेसगा भज्जा' ऐसा कहनेपर पूर्वमें कहे गये कर्मोंसे शेष रहे कर्म प्रतिसमय अनन्त-गुणहीन अनुभागके उदयकी अपेक्षा भजनीय होते हैं, यह इस भाष्यगाथा सूत्रके उक्त वचनका अर्थके साथ सम्बन्ध है।

शंका—ऐसा किस कारण है ?

जहासंभवमेत्थ वेदिज्जमाणाणं छवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदसरूवेणाणुभागोदओ एदस्स खवगस्स दट्ठव्वो त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसब्भावो। संपहि एदस्सेव गाहासुत्तस्स फुडी-करणट्ठमुवरिमं विहासागंथमाढवेइ—

*** विहासा।**

§ ७१ सुगमं।

*** जसणाममुच्चागोदं च अणंतगुणाए सेढीए वेदयदि।**

§ ७२ कुदो? परिणामपच्चइयाणं सुहपयडीणमणुभागोदयस्स खवगसेढीए अणंत-गुणवड्ढिं मोत्तूण पयारंतरासंभवादो। सादावेदणीयं पि अणंतगुणाए सेढीए वेदेदि त्ति एसो वि अत्थो एत्थेव सुत्तसूचिदत्तेण वक्खाणेयव्वो, परिणामपच्चइयसुहपयडित्तं पडि विसेसाभावादो। संपहि एत्थेव णिगूढमण्णं पि अत्थविसेसं विहासेमाणो पुच्छा सुत्तमुत्तरं भणइ—

*** सेसाओ णामाओ कधं वेदयदि।**

समाधान—क्योंकि उन कर्मोंके इस स्थानमें छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थित रूपसे अनुभागके उदयकी प्रवृत्ति देखो जाती है, इसलिये यथासम्भव यहाँ वेदी जाने वाली चार प्रकार की ज्ञानावरणीय, तीन प्रकार की दर्शनावरणीय और भवके सम्बन्धसे उपगृहीत नामकर्म प्रकृतियों का इस क्षपकके छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितस्वरूपसे अनुभागका उदय जानना चाहिए, इस प्रकार यहाँपर इस भाष्यगाथा सूत्रका अर्थके साथ यह सम्बन्ध जानना चाहिये। अब इसी भाष्यगाथा सूत्रको स्पष्ट करने के लिये आगे विभाषा ग्रन्थको आरम्भ करते है—

*** अब इस भाष्यगाथा सूत्रकी विभाषा कहते हैं—**

§ ७१ यह सूत्र सुगम है।

*** यह क्षपक यशःकीर्ति नामकर्मको तथा उच्चगोत्रकर्मको अनन्तगुणी श्रेणी-रूपसे वेदता है।**

§ ७२ क्योंकि परिणाम-प्रत्ययवाली शुभ प्रकृतियोंके अनुभागके उदयका क्षपक श्रेणिमें अनन्तगुण वृद्धिको छोड़कर अन्य प्रकारसे उदय होना सम्भव नहीं है। यह जीव सातावेदनीय प्रकृतिको भी अनन्त-गुणवृद्धिरूपसे वेदता है इस प्रकार इस अर्थका भी यहींपर उक्त भाष्यगाथा सूत्रके द्वारा सूचित हुए रूपसे व्याख्यान करना चाहिये, क्योंकि यह प्रकृति भी परिणामप्रत्यय शुभ प्रकृति है, इस अपेक्षा उक्त प्रकृतियों से इस प्रकृतिमें कोई भेद नहीं है। अब इसी भाष्यगाथा सूत्रमें लीन अन्य अर्थविशेषकी भी विशेष व्याख्या करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** नामकर्मकी शेष प्रकृतियोंको किस प्रकार वेदता है?**

§ ७३ जसगित्तिवज्जाओ सेसणामपयडीओ सुहासुहमेयमिण्णाओ कधमेसो वेद-यदे, किमणंतगुणवड्ढीए हाणीए अण्णहा वा त्ति पुच्छिदं होदि ?

*** जसणामं परिणामपच्चइयं मणुस-तिरिक्खजोणियाणं ।**

§ ७४ एदेण जसणामउदएण सूचिदं जत्तियाओ परिणामपच्चइयाओ सुभाओ णामाओ ताओ सव्वाओ अणंतगुणाए सेढीए वेदयदि त्ति जसगित्तिणामं मणुस-तिरिक्खजोणियाणं जीवाणं परिणामपच्चइयाणं सुहपरिणामेणेदस्साणुभागोदयवड्ढिदंसणादो। तदो एदेणेव जसगित्तिउदयेण सुत्तणिद्दिट्ठेण देसामासयभूदेण एसो वि अत्थविसेसो सूचिदो दट्ठव्वो। जेत्तियाओ परिणामपच्चइयाओ सुभाओ णामपयडीओ सुभगादेज्जाओ ताओ सव्वाओ अणंतगुणाए सेढीए एसो खवगो वेदेदि त्ति। किं कारणं ? सुहपयडित्ते सते परिणामपच्चइत्तं पडि भेदाभावादो। ण केवलं सुहाणं पयडीणमणुभागोदयस्साणंतगुणवड्ढीए चेव एदेण जसगित्तिउदएण सूचिदा, किंतु असुभगाणं पि परिणामपच्चइयाणं णामपयडीणमणुभागोदओ अणंतगुणहाणीए पयट्टदि त्ति एदस्स वि सूचयमेदं चेव जसगित्तिवयणमिदि जाणावणट्ठमिदमाह—

---

§ ७३ यशःकीर्तिको छोड़कर शुभ और अशुभ भेदसे भेदको प्राप्त हुई नामकर्मकी शेष प्रकृतियोंको यह क्षपक जीव कैसे वेदता है ? क्या अनन्तगुणवृद्धि रूपसे वेदता है या अनन्तगुणहानिरूपसे वेदता है या अन्य प्रकारसे वेदता है यह पूछा गया है ?

*** मनुष्य जीवोंके और तिर्यञ्च योनिवाले जीवोंके यशःकीर्ति नामकर्मकी प्रकृति परिणाम-प्रत्ययवाली होती है ।**

§ ७४ इस वचन द्वारा यशःकीर्ति नामकर्मके उदयद्वारा जितनी परिणाम-प्रत्ययवाली शुभ प्रकृतियाँ सूचित की गई हैं उन सबको प्रतिसमय अनन्तगुणीश्रेणिरूपसे वेदता है, इसलिये मनुष्य और तिर्यञ्च योनिवाले जीवोंके यशःकीर्तिसे लेकर परिणाम-प्रत्ययवाली सभी शुभप्रकृतियोंकी इस क्षपकके अनुभागके उदयकी वृद्धि देखी जाती है। इसलिए निर्दिष्ट देशामर्षकभूत भाष्यगाथा-सूत्र द्वारा निर्दिष्ट इसो यशःकीर्तिके उदयसे यह अर्थ विशेष भी सूचित किया गया जानना चाहिये। तात्पर्य यह है कि परिणामप्रत्यय जितनी सुभग और आदेय शुभ नामकर्मसम्बन्धी प्रकृतियाँ है उन सबको अनन्तगुणी श्रेणिरूपसे यह क्षपक वेदता है, क्योंकि उनमें शुभप्रकृतिपना होनेपर परिणाम प्रत्ययपनेके प्रति यशःकीर्तिसे इनमें कोई भेद नहीं पाया जाता। यहाँ इस यशः-कीर्तिके उदयद्वारा केवल शुभ प्रकृतियोंके उदयको अनन्तगुण वृद्धिरूपसे ही सूचित नहीं किया गया है, किन्तु परिणामप्रत्यय नामकर्मकी अशुभ प्रकृतियों के अनुभागका उदय इस क्षपकके अनन्त गुण-हानिरूपसे प्रवृत्त होता है यह यशःकीर्ति वचन द्वारा सूचित किया गया है, इस प्रकार इसी बातका ज्ञान करानेके लिये यह कहते हैं—

* जाओ असुभाओ परिणामपच्चइगाओ ताओ अणंतगुणहीणाए सेढीए वेदयदि त्ति ।

§ ७५ गयत्थमेदं सुत्तं । णवरि एत्थ 'असुहणामाओ' त्ति भणिदे अथिर-असुभादिपयडीणं जहासंभवं[1] संगहो कायव्वो । संपहि गाहापच्छद्धविवरणट्ठमिदमाह—

* अंतराइयं सव्वमणंतगुणहीणं वेदयदि ।

§ ७६ कुदो ? पंचण्हमंतराइयाणं पयडीणमणुभागस्स सुह-परिणामविरुद्धसहावस्स खवगविसोहीहिं अणंतगुणहाणीए उदयपरिणामस्स बाहाणुवलंभादो ।

* भवोपग्गहियाओ णामाओ छव्विहाए वड्ढीए छव्विहाए हाणीए भजिदव्वाओ ।

§ ७७ एत्थ भवोपग्गहियाओ णामाओ त्ति भणिदे भवपच्चइयाणं णामपयडीणं मणुसगइआदीणं जहासंभवं गहणं कायव्वं । एत्थ एदाओ भवपच्चइयाओ एदाओ च परिणामपच्चइयाओ त्ति एसो अत्थविसेसो संतकम्मपाहुडे वित्थारेण भणिदो । एत्थ पुण गंथगउरवभएण ण भणिदो । तेण तत्थ भणिदपरूवणं सव्वमेत्थ भणियूण गेण्हियव्वं । तासिमणुभागमेसो वेदेमाणो छवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदसरूवेण वेदेदि त्ति सुत्तत्थो ।

---

* जो अशुभ परिणामप्रत्यय प्रकृतियाँ हैं उन्हें यह क्षपक प्रतिसमय अनन्तगुणहानिश्रेणिरूपसे वेदता है ।

§ ७५ यह सूत्र गतार्थ है । इतनी विशेषता है कि इस सूत्रमें 'अशुभ नामकर्म सम्बन्धी प्रकृतियाँ' ऐसा कहने पर अस्थिर और अशुभ आदि प्रकृतियोंका यथासम्भव संग्रह करना चाहिये । अब उक्त भाष्यगाथाके उत्तरार्धका कथन करने के लिये यह सूत्र कहते हैं—

* अन्तरायसम्बन्धी सब प्रकृतियोंको अनन्तगुणहीनरूपसे वेदता है ।

§ ७६ क्योंकि पाँच अन्तरायकर्म-सम्बन्धी प्रकृतियोंका अनुभाग शुभपरिणामोंके विरुद्ध स्वभाववाला होता है, इसलिये क्षपकश्रेणिसम्बन्धी विशुद्धियोंके द्वारा उसके अनन्तगुणहानिरूपसे उदयरूप परिणामके होनेमें बाधा नहीं पाई जाती है ।

* भवके द्वारा उपगृहीत नामकर्मकी प्रकृतियाँ छह प्रकारकी वृद्धिद्वारा और छह प्रकारकी हानिद्वारा भजनीय होती है ।

§ ७७ इस सूत्र में 'भवोपग्गहियाओ णामाओ' ऐसा कहने पर भवप्रत्यय मनुष्यगति आदि नामकर्मकी प्रकृतियोंका यथासम्भव ग्रहण करना चाहिये । यहाँपर ये भवप्रत्यय प्रकृतियाँ हैं और ये परिणामप्रत्यय प्रकृतियाँ हैं यह अर्थ विशेष सत्कर्मप्राभृतमें विस्तारके साथ कहा गया है, परन्तु यहाँपर ग्रन्थके बढ़ जानेके भयसे नहीं कहा गया है, इसलिये उसमें कही गई सब प्ररूपणाको यहाँ पर कहकर ग्रहण कर लेनी चाहिये । उनके अनुभागको यह क्षपकजीव वेदन करता हुआ छह

---

१. यथावसरं ता० ।

किं पुण कारणमेदासिमणुभागस्स छवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदसरूवेण उदयसंभवो जादो त्ति चे ? ण, भवपच्चइयत्तेण विसोहि-संकिलेसणिरवेक्खाणमेदासिं विसेसपच्चयमस्सिदूण तहाभावसिद्धीए विरोहाभावादो ।

* केवलणाणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं च अणंतगुणहीणं वेदयदि ।

§ ७८ कुदो ? सुहपरिणामेणेदेसिमणुभागोदयस्स अणंतगुणहाणि-णियमदंसणादो ।

* सेसं चउव्विहं णाणावरणीयं जदि सव्वघादिं वेदयदि णियमा अणंतगुणहीणं वेदयदि ।

* अध देसघादिं वेदयदि, एत्थ छव्विहाए वड्ढीए छव्विहाए हाणीए भजिदव्वं ।

* एवं चेव दंसणावरणीयस्स जं सव्वघादिं वेदयदि तं णियमा अणंत-गुणहीणं ।

* जं देसघादिं वेदयदि तं छव्विहाए वड्ढीए छव्विहाए हाणीए भजियव्वं ।

प्रकारकी वृद्धि, छह प्रकारकी हानि और अवस्थितरूपसे वेदन करता है, यह इस सूत्रका अर्थ है ।

शंका—इन भवप्रत्यय प्रकृतियोंके अनुभागका छह प्रकारकी वृद्धि, छह प्रकारकी हानि और अवस्थितरूपसे उदय किस कारणसे सम्भव है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि भवप्रत्ययपनेके कारण विशुद्धि और संक्लेशसे निरपेक्ष इन प्रकृतियोंके विशेष प्रत्ययका आश्रय करके उस प्रकारके भावकी सिद्धिमें विरोधका अभाव है ।

* केवलज्ञानावरण और केवलदर्शनावरणको अनन्तगुणहीनरूपसे वेदता है ।

§ ७८ क्योंकि शुभपरिणाम होनेके कारण इन प्रकृतियोंके अनुभागके उदयका अनन्तगुणहानि-रूपसे नियम देखा जाता है ।

* शेष चार प्रकारके ज्ञानावरणीयको यदि सर्वघातिरूपसे वेदन करता है तो नियमसे अनन्तगुणहीनरूपसे वेदन करता है ।

* अब यदि देशघातिरूपसे वेदन करता है तो इस विषयमें छह प्रकारकी वृद्धि और छह प्रकारकी हानिकी अपेक्षा भजनीय है ।

* इसी प्रकार दर्शनावरणीयका यदि सर्वघातिरूपसे वेदन करता है तो नियम से अनन्तगुणहीनरूपसे वेदन करता है ।

* यदि देशघातिरूपसे वेदन करता है तो नियमसे छह प्रकारकी वृद्धि और छह प्रकारकी हानिकी अपेक्षा भजनीय है ।

§ ७९ एदेसिं सुत्ताणमत्थो वुच्चदे । तं जहा—लद्धिकम्मंसाणमेदेसु णियमा देस-घादि-सव्वघादिवसेण देस-सव्वघादि-उदयसंभवे तत्थ सव्वघादिमणुभागमेदेसिं वेदे-माणो णियमा अणंतगुणहीणं वेदेदि, सव्वघादिअणुभागस्स अणंतगुण-विसोहिवसेण तहापरिणामसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो । देसघादिसरूवो पुण एदेसिमणुभागोदयो अंतरंगकारणवइचित्तियेण छवड्ढि-हाणि-अवट्ठिदसरूवेण पयट्टदि, तत्थ पयारंतरा-संभवादो त्ति ।

§ ८० एवमेदाहिं पंचहिं भासगाहाहिं मूलगाहाए पुरिमद्धो विहासिदो । 'संका-मेदि य के के केसु असंकामगो होदि' त्ति एदेण गाहापच्छद्धेण किट्टीविसओ आणु-पुव्वीसंकमो णिद्दिट्ठो । सो च पुव्वमेव विहासिदो त्ति ण पुणो एत्थ विहासिज्जदे । अथवा एदेण पदेण खविदकम्माणि अक्खविदकम्माणि च भणियूण घेत्तव्वाणि । एवमेत्तिएण पबंधेण दसममूलगाहाए अत्थविहासणं समाणिय संपहि पयदमत्थमुव-संहरेमाणो इदमाह ।

* एवमेसा दसमी मूलगाहा किट्टीसु विहासिदा समत्ता ।

* एत्तो एक्कारसमी मूलगाहा ।

---

§ ७९ अब इन सूत्रोंका अर्थ कहते हैं । यथा—लब्धिरूप (क्षयोपशमरूप) कर्मोंका, उक्त ज्ञानावरण और दर्शनावरणरूप कर्मोंमें नियमसे देशघाति और सर्वघातिरूप होनेके कारण, देशघाति और सर्वघातिरूप पुंज का उदय सम्भव होनेपर वहाँ इन कर्मोंके सर्वघाति अनुभागका वेदन करता हुआ यह जीव नियमसे अनन्तगुणहीन अनुभागका वेदन करता है, क्योंकि सर्वघाति अनुभागकी अनन्तगुणी विशुद्धि के कारण उस प्रकारके परिणामकी सिद्धि निर्बाधरूपसे उपलब्ध होती है। परन्तु इन कर्मोंका देशघातिरूप अनुभागका उदय अन्तरंगकारणोंकी विचित्रतावश छह वृद्धि, छह हानि और अवस्थितरूपसे प्रवृत्त होता है, क्योंकि उन कर्मोंके विषयमें अन्य प्रकार सम्भव नहीं है ।

§ ८० इस प्रकार इन पाँच भाष्यगाथाओं द्वारा मूल सूत्रगाथाके पूर्वार्धको विशेष व्याख्या की । अब 'संकामेदि य के के केसु असंकामगो होदि' इस प्रकार इस मूलगाथा सूत्रके पश्चिमार्ध द्वारा कृष्टिविषयक आनुपूर्वी संक्रमका निर्देश किया गया है । किन्तु उसका पहले ही विशेष व्याख्यान कर आये हैं, इसलिये यहाँ उसका पुनः विशेष व्याख्यान नहीं करते हैं । अथवा इस पद द्वारा क्षपित कर्मोंको और अक्षपित कर्मोंको कहकर ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकार इतने प्रबन्ध द्वारा दसवीं मूलगाथाके अर्थकी विभाषा समाप्त करके अब प्रकृत अर्थका उपसंहार करते हुए यह सूत्र कहते हैं—

* इस प्रकार यह दसवीं मूलगाथा कृष्टियोंके विषयमें विशेष व्याख्यान होकर समाप्त हुई ।

* इससे आगे ग्यारहवीं मूलगाथा है ।

§ ८१ दसममूलगाहाविहासणाणंतरमेत्तो जहावसरपत्तो एक्कारसमी मूलगाहा विहासियव्वा त्ति वुत्तं होइ।

* १६० किट्टीकदम्मि कम्मे के वीचारो दु मोहणीयस्स ।
सेसाणं कम्माणं तहेव के के दु वीचारो ॥२१३॥

§ ८२ एसा एक्कारसमी मूलगाहा किट्टीवेदगावत्थाए वट्टमाणस्स खवयमोहणीयस्स णाणावरणादिसेसकम्माण च ट्ठिदिघादादिकिरियावियप्पा एत्तियमेत्ता होंति त्ति जाणावणट्ठमोइण्णा। संपहि एदिस्से अवयवत्थपरूवणं कस्सामो। तं जहा—'किट्टीकदम्मि कम्मे' पुव्वमकिट्टीसरूवे चदुसंजलणाणुभागसंतकम्मे णिरवसेसं किट्टीसरूवेण परिणामिदे तदवत्थाए पढमसमयकिट्टीवेदगभावेण वट्टमाणस्सेदस्स खवगस्स 'के वीचारा दु' केत्तिया खलु किरियावियप्पा ट्ठिदिघादादिलक्खणा मोहणीयस्स संभवंति, 'सेसाणं वा कम्माणं' णाणावरणादीणं तहेव तेणेव पयारेण पादेक्कं णिहालिज्जमाणा 'के के दु वीचारा केत्तिया' केत्तिया किरियाविसेसा संभवंति त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसंबंधो। एत्थ 'वीचारा' त्ति वुत्ते ट्ठिदिघादादिकिरियावियप्पा घेत्तव्वा। संपहि एदिस्से सुत्तगाहाए अत्थविहासणं कुणमाणो उवरिमपबंधमाढवेइ—

* एदिस्से भासगाहा णत्थि ।

---

§ ८१ दसवीं मूल गाथा का विशेष व्याख्यान करने के अनन्तर आगे यथावसर प्राप्त ग्यारहवी मूल गाथाकी विभाषा करनी चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* (१६०) अकृष्टिस्वरूप संज्वलन कर्मोंके कृष्टिस्वरूप किये जानेपर कितने-मोहनीयकर्मके स्थितिघात आदिरूप कितने-कितने क्रियाभेद होते हैं तथा इसी प्रकार शेषकर्मोंके स्थितिघात आदिरूप कितने-कितने क्रियाभेद होते हैं ॥२१३॥

§ ८२ यह ग्यारहवीं मूलगाथा कृष्टिवेदकरूप अवस्थामें विद्यमान क्षपक जीवके संज्वलन मोहनीयके और ज्ञानावरणादि शेषकर्मोंके स्थितिघात आदिरूप इतने क्रियाभेद आदि होते हैं इस बात का ज्ञान करानेके लिये आई है। अब इस मूलगाथाके प्रत्येक पदके अर्थकी प्ररूपणा करेंगे। यथा—पहले चार संज्वलनोंके अकृष्टिस्वरूप अनुभागसत्कर्मके पूरा कृष्टिस्वरूपसे परिणमा देने पर उस अवस्थाके प्रथम समयमें कृष्टियोंके वेदकरूपसे विद्यमान इस क्षपकके 'के वीचारा दु' मोहनीय कर्मके स्थितिघात आदि लक्षणवाले नियमसे कितने क्रियाभेद होते हैं तथा 'सेसाणं वा कम्माणं' ज्ञानावरणादि शेष कर्मोंके 'तहेव' उसी प्रकार से प्रत्येक के देखे गये 'के के दु वीचारा' कितने-कितने क्रियाभेद सम्भव हैं इस प्रकार यह यहाँ पर इस मूलगाथा सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है। इस मूल गाथामें 'वीचारा' ऐसा कहने पर स्थितिघात आदि क्रियाभेदोंको ग्रहण करना चाहिये। अब इस मूल सूत्र गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान करते हुए आगेके प्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

* इस मूलगाथासूत्रकी भाष्यगाथा नहीं है।

§ ८३ किमट्ठमेदिस्से मूलगाहाए सेसमूलगाहाणं व भासगाहा गाहासुत्तयारेण ण पठिदा त्ति णासंकणिज्जं, सुगमत्थपरूवणाए पडिबद्धत्तादो। एदिस्से मूलगाहाए भासगाहाभावे वि अत्थपडिबोहो कादुं सक्किज्जदि त्ति एदेणाहिप्पाएणेत्थ भासगाहाए अणुवइट्ठत्तादो। तदो मूलगाहाणुसारेणेव विहासणमेदिस्से कस्सामो त्ति भण्णमाणो इदमाह—

* विहासा।

§ ८४ सुगमं।

* एसा गाहा पुच्छासुत्तं।

§ ८५ सुगमं। एवं पुच्छदि, किट्टीसु[1] कदासु के वीचारा मोहणीयस्स, सेसाणं पि कम्माणं के वीचारा, एवंविहो पुच्छाणिद्देसो एदम्मि गाहासुत्तम्मि पडिबद्धो त्ति जाणाविदमेदेण सुत्तेण। संपहि एवमेदीए गाहाए पुच्छिदत्थविसये णिण्णयविहाणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

* तदो मोहणीयस्स पुव्वभणिदं।

---

§ ८३ शंका—इस मूलगाथाको शेष मूलगाथाओंके समान गाथासूत्रकारने भाष्यगाथा क्यों नहीं पठित की ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि यह मूलगाथा सुगम अर्थकी प्ररूपणासे सम्बन्ध रखती है, कारण कि इस मूलगाथाकी भाष्यगाथा नहीं होने पर भी उसके अर्थका ज्ञान करना शक्य है। इस प्रकार इस अभिप्रायसे इस मूलगाथाकी भाष्यगाथा उपदिष्ट नहीं की। इसलिये मूलगाथाके अनुसार ही इसका व्याख्यान करेंगे ऐसा कथन करते हुए इस विभाषा सूत्रको कहते हैं।

* अब इस मूलगाथाकी विभाषा करते हैं।

§ ८४ यह सूत्र सुगम है।

* यह मूलगाथा पृच्छासूत्र है।

§ ८५ यह सूत्र सुगम है। यहाँ यह पूछते हैं कि संज्वलन मोहनीय कर्मकी कृष्टियोंमें कितने क्रियाभेद होते हैं तथा शेष कर्मोंके भी कितने क्रियाभेद होते हैं इस प्रकार इस पृच्छाका निर्देश इस गाथासूत्रसे सम्बन्ध रखता है, इस प्रकार इस सूत्रद्वारा इस बातका ज्ञान कराया गया है। अब इस प्रकार इस मूल गाथाद्वारा पूछे गये अर्थके विषयमें निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* मोहनीय कर्मके स्थितिघात आदि क्रियाभेद पहले ही कह आये हैं।

---

१. पुच्छाविकिट्टीसु प्रे० का०।

§ ८६ मोहणीयसंबंधेण ट्ठिदि-अणुभागघाद-ट्ठिदिसंतकम्म-उदयोदीरणादिवियप्पा पुव्वमेव सवित्थरं परूविदा त्ति वुत्तं होइ ।

* तदो वि पुण इमिस्से गाहाए फस्सकरणकरणमणुसंवण्णेयव्वं ।

§ ८७ जइ वि पुव्वं मोहणीयविसये ट्ठिदिसंतकम्मपमाणाणुगमादओ[1] वियप्पा परूविदा, तो वि एदिस्से सुत्तगाहाए अत्थपदंसणट्ठमेत्थ किंचि संखेवपरूवणमणुसंवण्णेयव्वमिदि भणिदं होदि ।

* ठिदिघादेण १, ट्ठिदिसंतकम्मेण २, उदएण ३, उदीरणाए ४, ट्ठिदिखंडगेण ५, अणुभागघादेण ६, ठिदिसंतकम्मेण ७, अणुभागसंतकम्मेण ८, बंधेण ९, बंधपरिहाणीए १० ।

§ ८८ संपहि एदेसिं दसण्हं वीचाराण मोहणीयविसयाणं किंचिअत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहा—"ट्ठिदिघादेणे' त्ति वुत्ते एसो पढमो वीचारो अंतोमुहुत्तेण एगट्ठिदिखंडयघादकालमुवेक्खदे, ट्ठिदी घादिज्जदि जेण कालेण सो ट्ठिदिघादो त्ति गहणादो ।

---

§ ८६ संज्वलन मोहनीय कर्मके सम्बन्धसे स्थितिघात, अनुभागघात, स्थितिसत्कर्म, उदय और उदीरणा आदि भेद पहले ही विस्तार के साथ कह आये हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* इसलिये फिर भी इस मूल गाथासूत्रका 'स्पर्शकर्णकरण' अर्थात् स्पर्श करके कुछ आगमानुसार वर्णन कर लेना चाहिये ।

§ ८७ यद्यपि संज्वलन मोहनीयके विषयमें स्थितिसत्कर्मके प्रमाणका अनुगम आदि भेद पहले कह आये हैं तो भी इस मूल सूत्रगाथाके अर्थको स्पष्ट करनेके लिये यहाँपर आगमानुसार संक्षेपसे कुछ प्ररूपण करेंगे यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* यह प्ररूपणा स्थितिघात १, स्थितिसत्कर्म २, उदय ३, उदीरणा ४, स्थितिकाण्डक ५, अनुभागघात ६, स्थितिसत्कर्म ७, अनुभागसत्कर्म ८, बन्ध ९, और बन्धपरिहानि १०, इनके द्वारा करेंगे ।

§ ८८ अब मोहनीय विषयक इन दस क्रियाभेदोंके किंचित् अर्थको प्ररूपणा करेंगे । यथा—'ट्ठिदिघादेण' इस पदद्वारा ऐसा कहनेपर यह पहला क्रियाभेद अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालके द्वारा एक स्थितिकाण्डकघातके कालकी अपेक्षासे कहा गया है, क्योंकि जिस कालके द्वारा स्थिति घाती जाती है वह स्थितिघात कहलाता है। ऐसा यहाँ ग्रहण किया गया है । "ट्ठिदिसंतकम्मेण" स्थितिसत्कर्म यह दूसरा क्रियाभेद है जो स्थितिसत्कर्मके प्रमाणके अवधारण करनेसे सम्बन्ध रखता है । 'उदयेण'

---

1. पमाणाणुगमादओ ता०,—पमाणाणुगमा उदओ प्रे० का० ।

'ट्ठिदिसंतकम्मेण' त्ति विदिओ वीचारो ट्ठिदिसंतकम्मपमाणावहारणे पडिबद्धो। 'उदयेण' त्ति तदिओ वीचारो किट्टीणमणुसमयमणंतगुणहाणीए उदयपरूवणमुवेक्खदे।

§ ८९ उदीरणाए त्ति चउत्थो वीचारो पओगेणोकड्डियूणुदीरिज्जमाण-ट्ठिदि-अणुभागाणं परूवणमुवेक्खदे। 'ट्ठिदि-खंडयेण' त्ति पंचमो वीचारो ट्ठिदिखंडया-यामपमाणमुवेक्खदे। ण च ट्ठिदिघादसण्णिदेण पढमवीचारेणेदस्स पुणरुत्तभावो तस्स ट्ठिदिघादकालविसेसपडिबद्धत्तादो। 'अणुभागघादेण' त्ति एसो छट्ठो वीचारो किट्टीगदाणुभागस्स अणुसमयोवट्टणाविहाणमुवेक्खदे, मोहणीयाणुभागस्स पयदविसये कंडयघादासंभवादो।

§ ९० 'ट्ठिदिसंतकम्मेण' त्ति सत्तमो वीचारो किट्टीवेदगस्स सव्वसंधीसु घादिद-सेसट्ठिदिसंतकम्मपमाणणिद्देसमुवेक्खदे। ण च एदस्स विदियवीचारणिद्देसेण पुणरुत्त-भावो, किट्टीवेदगपढमसमये अपत्तघादविसेसट्ठिदिसंतकम्मपमाणावहारणे तस्स पडिबद्ध-त्तादो। अथवा 'ट्ठिदिसंकमेण' त्ति एसो सत्तमो वीचारो वत्तव्वो, विरोहाभावादो। अणु-भागसंतकम्मेण' त्ति अट्ठमो वीचारो चदुण्हं संजलणाणमणुभागसंतकम्मणिद्देसे पडिबद्धो। एत्थ जो पढमसमयकिट्टीवेदगस्स अणुभागसंतकम्मपरूवणाविधी चदुसंजलणाणं परूविदो सो णिरवसेसमणुगंतव्वो। 'बंधेण' एवं भणिदे किट्टीवेदगस्स सव्वसंधीसु ट्ठिदि-अणु-

---

उदय यह तीसरा क्रियाभेद है जो प्रतिसमय कृष्टियोंकी अनन्तगुणहानिद्वारा उदयकी प्ररूपणाकी अपेक्षा करता है।

§ ८९ 'उदीरणाए' उदीरणा यह चौथा क्रियाभेद है जो प्रयोगवश अपवर्तना करके उदीर्यमान स्थिति और अनुभागकी अपेक्षा करता है। 'ट्ठिदिखंडयेण' स्थितिकाण्डक यह पाँचवां क्रियाभेद है जो स्थितिकाण्डक के आयामकी अपेक्षा करता है। किन्तु स्थितिघातसंज्ञक प्रथम क्रियाभेदके साथ इसका पुनरुक्तपना नहीं प्राप्त होता, क्योंकि उसका सम्बन्ध स्थितिघातके काल विशेषको सूचित करता है। 'अणुभागेण' अनुभाग यह छठा क्रियाभेद है जो कृष्टिगत अनुभागको प्रतिसमय होने वाली अपवर्तना के विधानकी अपेक्षा करता है, क्योंकि संज्वलन मोहनीयके अनुभागका प्रकृत स्थानमें काण्डकघात सम्भव नहीं है।

§ ९० 'ट्ठिदिसंतकम्मेण' स्थितिसत्कर्म यह सातवां क्रियाभेद है जो कृष्टिवेदकके सब सन्धियों में घात करने से शेष रहे स्थितिसत्कर्मके प्रमाणके निर्देशकी अपेक्षा करता है। परन्तु इसका दूसरे क्रियाभेदके निर्देशके साथ पुनरुक्तपना नहीं होता, क्योंकि कृष्टिवेदक के प्रथम समयमें घात-विशेषको नहीं प्राप्त हुए स्थितिसत्कर्मके प्रमाणके निश्चय करनेमें वह प्रतिबद्ध है। अथवा इसके स्थानमें 'ट्ठिदिसंकमेण' पदसे गृहीत स्थितिसंक्रम यह सातवां क्रियाभेद कहना चाहिये क्योंकि इसे स्वीकार करने पर कोई विरोध नहीं आता। 'अणुभागसंतकम्मेण' पदसे गृहीत अनुभाग-सत्कर्म यह आठवाँ क्रियाभेद है जो चार संज्वलनोंके अनुभागसत्कर्मका निर्देश करने में प्रतिबद्ध है। यहाँ पर प्रथम समयवर्ती कृष्टिवेदकके चार संज्वलनों के अनुभागसत्कर्मकी जो प्ररूपणाविधि कही है वह पूरी जाननी चाहिये। 'बंधेण' इस पदद्वारा 'बंध' ऐसा कहने

भागबंधाणं पमाणावहारणे णवमो एसो वीचारो पडिबद्धो त्ति गहेयव्वो। 'बंधपरिहाणीए' एवं भणिदे ठिदि-अणुभागबंधपरिहाणि-पमाणावहारणे दसमो एसो वीचारो पडिबद्धो त्ति णिच्छओ कायव्वो।

§ ९१ एवमेदेहिं दसहिं वीचारेहिं मोहणीयस्स परूवणा एदिस्से मूलगाहाए पडिबद्धा त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसमुच्चओ। एवंविहा च सव्वा परूवणा पुव्वमेव पवंचिदा त्ति ण पुणो पवंचिज्जदे; पयासिदप्पयासणे फलाभावादो। संपहि सेसाणं पि कम्माणं णाणावरणादीणमेदेहिं वीचारेहिं जहासंभवं मग्गणा कायव्वा त्ति जाणावेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* सेसाणि कम्माणि एदेहिं वीचारेहिं अणुमग्गियव्वाणि।

§ ९२ गयत्थमेदं गाहापच्छद्धपडिबद्धं विहासासुत्तमिदि ण एत्थ किंचि वक्खाणेयव्वमत्थि। एवमेदीए सव्वमग्गणाए सवित्थरमणुमग्गिदाए तदो एक्कारसमी मूलगाहा समप्पदि त्ति जाणावणट्ठमुवसंहारवक्कमाह—

* अणुमग्गिदे समत्ता एक्कारसमी मूलगाहा भवदि।

पर उससे कृष्टिवेदकके सब सन्धियोंमें स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धके प्रमाणके निश्चय करनेमें यह नौवां क्रियाभेद प्रतिबद्ध है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। 'बंधपरिहाणीए' इस पदद्वारा बन्धपरिहानि ऐसा कहने पर स्थितिबन्धकी परिहानि और अनुभागबन्धकी परिहानिके प्रमाणके निश्चय करनेमें यह दसवां क्रियाभेद प्रतिबद्ध है ऐसा यहाँ निश्चय करना चाहिये।

§ ९१ इस प्रकार इन दस क्रियाभेदोंके द्वारा इस दसवीं मूलगाथा में मोहनीय कर्मकी प्ररूपणा प्रतिबद्ध है, इस प्रकार यहाँ पर मूलगाथासूत्रका यह समुच्चयरूप अर्थ जानना चाहिये। और इस प्रकारकी सम्पूर्ण प्ररूपणा पहले ही विस्तारके साथ कह आये हैं, इसलिये उसका पुनः विस्तार नहीं करते हैं, क्योंकि प्रकाशित कथन के पुनः प्रकाशन करनेमें कोई फल नहीं दिखाई देता। अब शेष ज्ञानावरणादि कर्मोंकी भी इन्हीं क्रियाभेदोंके द्वारा यथासम्भव गवेषणा कर लेनी चाहिये इस बातका ज्ञान कराते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* शेष कर्मोंकी भी इन्हीं क्रियाभेदों के द्वारा मार्गणा कर लेनी चाहिये।

§ ९२ मूलगाथाके उत्तरार्धसे सम्बन्ध रखनेवाला यह विभाषासूत्र गतार्थ हुआ। इसमें कुछ भी व्याख्यान करने योग्य नहीं है, इस प्रकार इस सम्पूर्ण मार्गणाका विस्तारसहित अनुसन्धानकर लेने पर उसके बाद ग्यारहवीं मूलगाथा समाप्त होती है इस प्रकार इस बातका ज्ञान करानेके लिये उपसंहार वचनको कहते हैं—

* उक्त विषयोंकी मार्गणा कर लेने पर ग्यारहवीं मूलगाथा समाप्त होती है।

९३ सुगमं । एवं च एक्कारसमी मूलगाहाए विहासिय समत्ताए तदो किट्टीसु पडिबद्धाणमेक्कारसण्हं मूलगाहाणमत्थविहासा समत्ता होदि त्ति जाणावणट्ठमुवसंहारवक्कमाह—

*** 'एक्कारस होंति किट्टीए' त्ति पदं समत्तं ।**

---

§ ९३ यह सूत्र सुगम है । इस प्रकार ग्यारहवीं मूल गाथाकी विभाषा करके, समाप्त होनेपर उसके बाद कृष्टियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली ग्यारह मूल गाथाओंके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त होता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये उपसंहार वचनको कहते हैं—

*** 'एक्कारस होंति किट्टीए' अर्थात् कृष्टियोंके विषयमें ग्यारह मूल गाथायें हैं यह पद समाप्त होता है ।**

विशेषार्थ—प्रकृतमें विभाषासहित ग्यारहवीं मूल गाथाको विभाषाके साथ टीका द्वारा स्पष्ट किया गया है । इसमें आये हुए 'वीचार' पदका अर्थ क्रियाभेद है । वे वीचारस्थान या क्रियाभेद सब मिलाकर दस कहे गये हैं । उनके नाम हैं—स्थितिघात १, स्थितिसत्कर्म २, उदय ३, उदीरणा ४, स्थितिकाण्डक ५, अनुभागघात ६, स्थितिसत्कर्म ७, अनुभागसत्कर्म ८, बन्ध ९, और बन्धपरिहानि । इन दस वीचारोंमें से 'स्थितिघात' पद द्वारा स्थितिघात-विषयककालका ग्रहण किया गया है । 'स्थितिसत्कर्म' द्वारा इस कृष्टिवेदक क्षपकके स्थितिविषयक सत्कर्मके प्रमाणका ज्ञान कराया गया है । 'उदय' पद द्वारा उक्त जीवके उदयमें प्रतिसमय संज्वलन मोहनीयकी कृष्टियोंमें अनन्तगुणी हानि होती रहती है यह स्पष्ट किया गया है । 'उदीरणा' पद द्वारा बुद्धिपूर्वक उपयोगके स्वभावभूत आत्माके सन्मुख रहने पर अपकर्षण होकर संज्वलन मोहनीयकी स्थिति और अनुभागकी जो उदीरणा होती है उसकी प्ररूपणा की गई है । 'स्थितिकाण्डक' पद द्वारा उक्त क्षपकजीवके स्थितिकाण्डकके आयामका निर्देश किया गया है । पहले जो स्थितिघात कह आये हैं उसमें कितना काल लगता है इसका विचार किया गया है और स्थितिकाण्डकमें उसके आयामका विचार किया गया है, इसलिये इन दोनोंके कथनमें अन्तर है ऐसा यहाँ समझना चाहिये । 'अनुभागघात' इस पद द्वारा उक्त जीवके संज्वलन चतुष्कके अनुभागकी प्रतिसमय अपवर्तना होती रहती है यह स्पष्ट किया गया है, क्योंकि इस जीवके संज्वलन चतुष्कका अनुभाग कृष्टिगत हो जाता है, इसलिये इसके अनुभागका काण्डकघात होना यहाँ सम्भव नहीं है । 'स्थितिसत्कर्म' इस पद द्वारा कृष्टिवेदकके चारों संज्वलनोंकी बारह संग्रहकृष्टियों-सम्बन्धी जो ग्यारह सन्धियाँ होती हैं उन सन्धियोंमें घात होनेसे जो स्थितिसत्कर्म शेष रहता है उनके प्रमाणका निश्चय कराया गया है । किन्तु यह दूसरे क्रियाभेद स्थितिसत्कर्मसे अत्यन्त भिन्न है, क्योंकि वह कृष्टिवेदकके प्रथम समयमें जो स्थितिकर्म होता है उसके प्रमाणका निश्चय कराता है और यह स्थितिसत्कर्म सब सन्धियोंमें शेष रही स्थितिसत्कर्मके प्रमाण का निश्चय कराता है, इसलिए इन दोनोंमें अन्तर है । यदि कहा जाए कि स्थितिसत्कर्म पदसे दोनोंका ग्रहण हो जायगा, इसलिये इनका अलग-अलग निर्देश करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती । इस प्रकार इसी बात को ध्यान में रखकर 'द्विदिसंकमेण' पद द्वारा स्थितिसंक्रमरूप इस दूसरे अभिप्राय का निर्देश किया गया है । इसे स्वीकार कर लेने से उक्त विरोध की स्थिति समाप्त हो जाती है । 'अनुभागसत्कर्म' इस पद द्वारा कृष्टिवेदक के प्रथम समय में चारों संज्वलनों का जो अनुभागसत्कर्म होता है वह सूचित किया गया है । 'बन्ध' इस पद द्वारा कृष्टिवेदक

§ ९४ एवमेदमुवसंहरिय संपहि किट्टीखवणद्धाए पडिबद्धाणं चउण्हं मूलगाहाणं भासगाहाणं जहावसरपत्तमत्थविहासणं कुणमाणो उवरिमं विहासागंथमाढवेइ—

*** एत्तो चत्तारि क्खवणाए त्ति ।**

§ ९५ एदं संबंधगाहावयवभूदबीजपदमवलंबणं कादूण चदुण्हं खवणमूलगाहाणं जहाकममेत्तो अत्थविहासणं कस्सामो त्ति भणिदं होदि । तत्थ ताव पढममूलगाहाए समुक्कित्तणं कुणमाणो इदमाह—

*** तत्थ पढममूलगाहा ।**

§ ९६ सुगमं ।

*** (१६१) किं वेदेंतो किट्टिं खवेदि किं चावि संछुहंतो वा ।**
संछोहणमुदयेण च अणुपुव्वं अणणुपुव्वं वा ।।२१४।।

के सम्पूर्ण सन्धियों में स्थितिबन्ध और अनुभाग बन्ध के प्रमाण का निश्चय कराया गया है कि इस सन्धि में इन दोनों का प्रमाण इतना होता है और इस सन्धि में इतना होता है । इस रूप में विशेष ज्ञान कराया गया है । 'बन्धपरिहानि' यह अन्तिम क्रियाभेद है, इस द्वारा उक्त क्षपक के स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध की किस स्थान में कितनी हानि होती है इस प्रकार उनके प्रमाण का निश्चय कराया गया है । इस प्रकार ये दस वीचार (क्रियाभेद) हैं जिनका विशेष व्याख्यान इस ग्यारहवी मूलगाथा के अन्तर्गत किया गया है । किन्तु इन दस क्रियाभेदों का विशेष व्याख्यान उस-उस स्थान पर पहले ही किया जा चुका है, इसलिए यहाँ नहीं किया गया है ऐसा यहाँ समझना चाहिए ।

§ ९४ इस प्रकार इस मूल सूत्रगाथाका उपसंहार करके अब कृष्टियोंके क्षपणाके कालसे सम्बन्ध रखनेवाली चार मूलगाथाओंकी भाष्यगाथाओके साथ यथावसर प्राप्त अर्थ की विभाषा करते हुए आगे के विभाषाग्रन्थको आरम्भ करते है ।

*** अब इससे आगे क्षपणासम्बन्धी चार मूल गाथाओं का निर्देश करते है ।**

§ ९५ अब इस सम्बन्ध गाथा के अवयवभूत बीज पदका अवलम्बन करके क्षपणासम्बन्धी चार मूल गाथाओं के अर्थ की क्रमानुसार विभाषा करेंगे यह उक्त कथन का तात्पर्य है । उनमेंसे सर्वप्रथम प्रथममूलगाथाकी समुत्कीर्तना करते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

*** उन मूल गाथाओं में यह प्रथम मूलगाथा है ।**

§ ९६ यह सूत्र सुगम है ।

*** (१६१) यह क्षपक कृष्टियों को क्या वेदन करता हुआ क्षय करता है, या क्या संक्रमण करता हुआ क्षय करता है, या क्या संक्रमण और वेदन दोनों करता हुआ क्षय करता है, या क्या आनुपूर्वी से क्षय करता है, या क्या आनुपूर्वी के बिना क्षय करता है ।।२१४।।**

§ ९७ एसा पढममूलगाहा बारससंगहकिट्टीओ खवेमाणो कधं खवेदि, किं वेदयमाणो खवेदि, किं वा अवेदयमाणो संछुहंतो चेव खवेदि, आहो तदुभयेण खवेदि, किं वा परिवाडीए खवेदि, आहो अपरिवाडीए खवेदि त्ति एवंविहाणं पुच्छाणं णिण्णयविहाणट्ठमोइण्णा। सुगमो च एदिस्से गाहाए अवयवत्थपरामरसो पदसंबंधो च। संपहि एदीए गाहाए पुच्छामेत्तेण णिद्दिट्ठाणमेदेसिमत्थाणं णिण्णये कीरमाणे तत्थ इमा एक्का भासगाहा दट्ठव्वा त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

* एदिस्से एक्का भासगाहा।

§ ९८ सुगमं।

* तं जहा।

§ ९९ सुगमं।

* (१६२) पढमं विदियं तदियं वेदेंतो वावि संछुहंतो वा।
चरिमं वेदयमाणो खवेदि उभयेण सेसाओ ॥२१५॥

---

§ ९७ यह प्रथम मूल गाथा बारह संग्रहकृष्टियों की क्षपणा करता हुआ किस प्रकार क्षपणा करता है, क्या वेदन करता हुआ क्षपणा करता है, या क्या वेदन न करके संक्रमण करता हुआ ही क्षपणा करता है, या वेदन करता हुआ और क्षपणा करता हुआ इन दोनों प्रकारों से क्षपणा करता है, या परिपाटीक्रम से क्षपणा करता है या परिपाटीक्रम को छोड़कर क्षपणा करता है इस प्रकार इस विधि से पूछी गई पृच्छाओं के निर्णय का विधान करने के लिए अवतरित हुई है। परन्तु इस मूल गाथा के अवयवों के अर्थ का स्पष्टीकरण और पदों का सम्बन्ध सुगम है। अब इस मूलगाथा के पृच्छामात्र से निर्दिष्ट किये गये इन अर्थों का निर्णय करने पर उस विषय में एक भाष्यगाथा जाननी चाहिए इस प्रकार इस बात का ज्ञान कराने के लिए यह सूत्र कहते हैं—

* इस मूलगाथाकी एक भाष्यगाथा है।

§ ९८ यह सूत्र सुगम है।

* वह जैसे।

§ ९९ यह सूत्र सुगम है।

* १६२ क्रोध संज्वलनकी प्रथम, द्वितीय और तृतीय संग्रहकृष्टि को वेदन करता हुआ और संक्रमण करता हुआ भी क्षय करता है। अन्तिम बारहवीं संग्रह कृष्टिको वेदन करता हुआ ही क्षय करता है तथा शेष सब संग्रह-कृष्टियोंको दोनों प्रकार से क्षय करता है ॥ २१५ ॥

§ १०० एदिस्से भासगाहाए पुव्वुत्ताणमसेसाणं पुच्छाणं णिण्णयविहाणं कदं ति दट्ठव्वं । तं कधं ? 'पढमं बिदियं तदियं०' एवं भणिदे कोधस्स पढमकिट्टिं बिदियकिट्टिं तदियकिट्टिं च वेदेंतो वा संछुहंतो वा खवेदि त्ति पदसंबंधो । 'चरिमं वेदयमाणो' एवं भणिदे चरिमसंगहकिट्टिं णिच्छयेण वेदेंते चेव खवेदि, ण संछुहंतो त्ति सुत्तत्थसंबंधो । एत्थ चरिमसंगहकिट्टि त्ति वुत्ते सुहुमसांपराइयकिट्टीए गहणं कायव्वं, चरिमबादरसांपराइयकिट्टिए सगसरूवेण उदयासंभवादो । 'उभयेण सेसाओ' एवं भणिदे सुहुमसांपराइयकिट्टिं मोत्तूण सेसासेससंगहकिट्टीओ दुविहेण विहिणा खवेदि, संछुहंतो वेदेंतो च खवेदि त्ति वुत्तं होइ । संपहि एवंविहमेदिस्से गाहाए अत्थं विहासेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ ।

*** विहासा ।**

§ १०१ सुगमं ।

*** तं जहा ।**

§ १०२ सुगमं ।

---

§ १०० इस भाष्यगाथाद्वारा पूर्वोक्त अशेष पृच्छाओं के निर्णय का विधान किया गया है ऐसा यहाँ जानना चाहिये ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—'पढमं बिदियं तदियं०' ऐसा कहने पर क्रोधसंज्वलनकी प्रथम संग्रह कृष्टि, दूसरी संग्रह कृष्टि और तीसरी संग्रह कृष्टिको वेदन करता हुआ अथवा संक्रमण करता हुआ क्षय करता है ऐसा यहाँ पदोंका अर्थके साथ सम्बन्ध है । 'चरिमं वेदयमाणो' ऐसा कहने पर अन्तिम संग्रह कृष्टिको नियमपूर्वक वेदन करता हुआ ही क्षय करता है, संक्रमण करता हुआ क्षय नहीं करता, यह इस सूत्रके अर्थके साथ सम्बन्ध है । इस भाष्यगाथा में 'चरिमसंगहकिट्टि' ऐसा कहने पर सूक्ष्म साम्परायिक कृष्टि को ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि बादर संग्रह कृष्टिका अपने स्वरूपसे उदय होना सम्भव नहीं है । 'उभयेण सेसाओ' ऐसा कहने पर सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिको छोड़कर शेष सम्पूर्ण संग्रह कृष्टियोंका दो प्रकारसे क्षय करता है, अर्थात् संक्रमण करता हुआ और वेदन करता हुआ क्षय करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इस भाष्यगाथाके इस प्रकारके अर्थकी विभाषा करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा करते हैं ।**

§ १०१ यह सूत्र सुगम है ।

*** वह जैसे**

§ १०२ यह सूत्र सुगम है ।

* पढमं कोहस्स किट्टिं वेदेंतो वा खवेदि, अथवा अवेदेंतो संछुहंतो ।

§ १०३ कोहस्स जा पढमसंगहकिट्टी तं वेदेंतो वा खवेदि एवं भणिदे वेदेमाणो वा परपयडिसंकमेण संकामेमाणो वा खवेदि त्ति वुत्तं होइ, दोहिं मि पयारेहिं तिस्से खवणोवलंभादो। अथवा अवेदेंतो एवं भणिदे वेदगभावेण विणा परपयडिसंकमेण संछुहंतो चेव केत्तियं पि कालं णिरुद्धकोहपढमसंगहकिट्टिं खवेदि त्ति भणिदं होदि। संपहि कदमम्मि अवत्थाविसेसे वट्टमाणो वेदेंतो खवेदि कदमम्मि वा अवत्थंतरे संछुहमाणो चेव खवेदि त्ति एदस्स अत्थविसेसस्स फुडीकरणट्ठमुत्तरसुत्तद्दयमाह—

* जे वे आवलियबंधा दुसमयूणा ते अवेदेंतो खवेदि केवलं संछुहंतो चेव।

§ १०४ सगवेदगद्धाए खीणाए पुणो दुसमयूणदोआवलियमेत्तणवकबंधकिट्टीणमवेदिज्जमाणाणं संछोहणाए चेव खवणदंसणादो।

---

* संज्वलन क्रोधकी प्रथम संग्रह कृष्टिका वेदन करता हुआ क्षय करता है अथवा वेदन न करके संक्रमण करता हुआ क्षय करता है।

§ १०३ संज्वलन क्रोधकी जो प्रथम संग्रह कृष्टि है उसे वेदन करता हुआ क्षय करता है ऐसा कहने पर वेदन करता हुआ और परप्रकृतिसंक्रमणके द्वारा संक्रमण करता हुआ क्षय करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि इन दोनों प्रकारोंसे उसकी क्षपणा उपलब्ध होती है। अथवा 'अवेदेंतो' ऐसा कहनेपर वेदकपनेके विना परप्रकृतिसंक्रमणके द्वारा संक्रमण करता हुआ ही कितने ही काल तक विवक्षित क्रोधकी प्रथम संग्रहकृष्टिको क्षय करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब किस अवस्थाविशेषमें विद्यमान यह क्षपक क्रोधकी प्रथमसंग्रह कृष्टिको वेदन करता हुआ क्षय करता है तथा किस दूसरी अवस्थामें परप्रकृतिरूपसे संक्रमण करता हुआ ही क्षय करता है, इस प्रकार इस अर्थविशेषको स्पष्ट करनेके लिये आगेके दो सूत्रोंको कहते हैं—

* जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध निषेक हैं उनको वेदन न करते हुए ही क्षय करता है, उनको केवल संक्रमण करके ही क्षय करता है।

§ १०४ अपने वेदककालके क्षीण हो जानेपर उसके बाद दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्धसम्बन्धी कृष्टियोंका वेदन न करते हुए संक्रमण द्वारा ही क्षय देखा जाता है।

विशेषार्थ—प्रथमादि ग्यारह संग्रह कृष्टियोंका वेदक काल समाप्त होनेपर द्वितीयादि संग्रहकृष्टियोंका काल जब प्रारम्भ होता है तब उनके कालमें प्रथमादि संग्रह कृष्टियोंके कालमें बन्धको प्राप्त हुए दो समय कम दो आवलि प्रमाण नवकबन्ध परप्रकृतिसंक्रम द्वारा वेदे जाते है ऐसा नियम है, मात्र इसीलिये उनकी संक्रमण होकर ही निर्जरा होती है, उक्त सूत्रमें यह निर्देश किया गया है।

* पढमसमयवेदगप्पहुडि जाव तिस्से किट्टीए चरिमसमयवेदगो त्ति ताव एदं किट्टिं वेदेंतो खवेदि ।

§ १०५ किं कारणं ? एदम्मि अवत्थंतरे णिरुद्धकोहपढमसंगहकिट्टीए वेदगभावेण सह संकामयत्तसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो । संपहि इममेवत्थमुवसंहारमुहेण फुडीकरेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* एवमेदं पि पढमकिट्टिं दोहिं पयारेहिं खवेदि किंचि कालं वेदेंतो, किंचि कालमवेदेंतो संछुहंतो ।

§ १०६ गयत्थमेदं सुत्तं । ण केवलं पढमसंगहकिट्टीए एसा विही, किंतु विदियादिसंगहकिट्टीणं पि खविज्जमाणाणमेसो चेव कमो दट्ठव्वो त्ति पदुप्पाएमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* जहा पढमकिट्टिं खवेदि तहा विदियं तदियं चउत्थं जाव एक्कारसमि त्ति ।

§ १०७ जहा कोहपढमसंगहकिट्टिं दोहिं पयारेहिं खवेदि एवमेदाओ विदियादिकिट्टीओ एक्कारसमकिट्टिपज्जंताओ दुविहेण विहिणा खवेदि; दुसमयूणदोआवलियमेत्तणवकबंधकिट्टीओ संछुहंतो चेव खवेदि, तत्तो हेट्ठा सगवेदगकालब्भंतरे वेदेंतो

* तथा क्रोधसंज्वलनकी प्रथम संग्रह कृष्टिके वेदककालके अन्तिम समयसे लेकर उसी संग्रह कृष्टिके वेदककालके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक इस संग्रह कृष्टिको वेदन करता हुआ क्षय करता है ।

§ १०५ **शंका**—इसका क्या कारण है ?

समाधान—क्योंकि इस अवस्थामें विवक्षित क्रोधसंज्वलन संग्रह कृष्टिका वेदकपनेके साथ निर्वाधरूपसे संक्रामकपना सिद्ध होता है । अब इसी अर्थको उपसंहारमुखसे स्पष्टीकरण करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* इस प्रकार इस प्रथम संग्रह कृष्टिको दो प्रकारसे क्षय करता है—कुछ काल तक वेदन करता हुआ क्षय करता है और कुछ काल तक वेदन नहीं करता हुआ क्षय करता है ।

§ १०६ यह सूत्र गतार्थ है । केवल प्रथम संग्रह कृष्टिको यह विधि नहीं है, किन्तु क्षयको प्राप्त होनेवाली द्वितीयादि संग्रह कृष्टियोंका भी यही क्रम जानना चाहिये इस प्रकार इस बातका कथन करते हुये आगेके सूत्रको कहते हैं—

* जिस प्रकार प्रथम कृष्टिका क्षय करता है उसी प्रकार दूसरी, तीसरी और चौथी कृष्टिसे लेकर ग्यारहवीं कृष्टि तक इन संग्रहकृष्टियोंका क्षय करता है ।

§ १०७ जिस क्रोधसंज्वलनकी प्रथम संग्रहकृष्टिका दो प्रकारसे क्षय करता है उसी प्रकार ग्यारहवीं संग्रहकृष्टि पर्यन्त इन दूसरी आदि संग्रह कृष्टियोंका दोनों प्रकारसे क्षय करता है; दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध कृष्टियोंका संक्रमण करता हुआ ही क्षय करता है तथा

संछुहंतो च खवेदि त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो। संपहि बारसमीए बादरसांपराइयकिट्टीए केरिसो खवणाविहि त्ति आसंकाए इदमाह--

*** बारसमीए बादरसांपराइयकिट्टीए अव्ववहारो।**

§ १०८ कुदो? सुहुमसांपराइयकिट्टीसरूवेण परिणमिय खविज्जमाणाए तिस्से सगसरूवेण विणासाणुवलंभादो। संपहि 'चरिमं वेदेमाणो खवेदि' त्ति इमं सुत्तावयवमस्सियूण सुहुमसांपराइयकिट्टीए खवणाए विहिं परूवेमाणो उवरिमं पबंधमाढवेइ--

*** चरिमं वेदेमाणो त्ति अहिप्पायो जा सुहुमसांपराइयकिट्टी सा चरिमा, तदो तं चरिमकिट्टिं वेदेंतो खवेदि; ण संछुहंतो।**

§ १०९ चरिमं वेदयमाणो त्ति भणिदे ण चरिमबादरसांपराइयकिट्टीए गहणं कायव्वं, किंतु जा सुहुमसांपराइयकिट्टी सा चेव चरिमा त्ति इह विवक्खिया; सव्वपच्छिमाए तिस्से तव्ववएसोववत्तीदो तदो तं चरिमकिट्टिं वेदेंतो चेव खवेदि, ण संछुहंतो त्ति सुत्तत्थसंबंधो। कुदो एवमिदि चे? तत्थ णवकबंधसंभवाणुवलंभादो; तिस्से पडिग्गहंतराणुवलंभादो च।

उससे अधस्तन कृष्टियोंका अपने वेदक कालके भीतर वेदन करता हुआ और संक्रमण करता हुआ क्षय करता है इस प्रकार यह सूत्रका भावार्थ है। अब बारहवीं बादर साम्परायिक संग्रहकृष्टिकी क्षपणाविधि किस प्रकारकी है ऐसी आशंका होनेपर आगेके विभाषासूत्रको कहते हैं-

*** बारहवीं बादरसाम्परायिक कृष्टिमें उक्त व्यवहार नहीं है।**

§ १०८ क्योंकि उसे सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिरूपसे परिणमाकर क्षपणा होनेवाली उसका अपने स्वरूपसे विनाश नहीं उपलब्ध होता। अब 'चरिमं वेदेमाणो खवेदि' इस प्रकार इस सूत्रके अवयवका आश्रय करके सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिकी क्षपणाकी विधिकी प्ररूपणा करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

*** 'चरिमं वेदेमाणो' अर्थात् अन्तिम संग्रह कृष्टिको वेदन करता हुआ इस पदका अभिप्राय है कि जो सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि है वह अन्तिम है, इसलिये उस अन्तिम कृष्टिको वेदन करता हुआ क्षय करता है, क्षपणा करता हुआ उसका क्षय नहीं करता।**

§ १०९ 'चरिमं वेदयमाणो' ऐसा कहनेपर अन्तिम बादर साम्परायिक कृष्टिका ग्रहण नहीं करना चाहिये। किन्तु जो सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टि है वही अन्तिम है, यह यहाँ विवक्षित है, क्योंकि वह सबसे अन्तिम है, इसलिए उसकी यह संज्ञा बन जाती है। अतः उस अन्तिम कृष्टिको वेदन करता हुआ ही उसका क्षय करता है, संक्रमण करता हुआ उसका क्षय नहीं करता यह इस सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है।

शंका—ऐसा किस कारणसे है?

समाधान—क्योंकि उसमें नवकबन्धका सद्भाव नहीं पाया जाता तथा उसका प्रतिग्रहान्तर उपलब्ध नहीं होता।

§ ११० संपहि सेसाणमेक्कारसण्हं संगहकिट्टीणं दुसमयूणदोआवलियमेत्तणव-कबंधकिट्टीओ संछुहंतो चेव खवेदि त्ति इममत्थविसेसं पुव्वणिद्दिट्टं पि पुणो वि फुडी-करेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* सेसाणं किट्टीणं दो दो आवलियबंधे दुसमयूणे चरिमे संछुहंतो चेव खवेदि, ण वेदेंतो।

§ १११ सुहुमसांपराइयकिट्टिं मोत्तूण सेसाणमेक्कारसण्हं पि संगहकिट्टीणं चरिमे दुसमयूणदोआवलियमेत्तणवकबंधसमयपबद्धे संछुहमाणो चेव खवेदि, ण वेदे-माणो, तासिमुदयसंबंधाणुवलंभादो त्ति वुत्तं होदि। एवमेदेहिं दोहिं सुत्तेहिं जाओ वेदिज्जमाणीओ चेव खवेज्जंति, ण संछुब्भमाणीओ, जाओ च संछुब्भमाणीओ चेव खवेदिज्जंति, ण वेदिज्जमाणीओ; तासिं दुविहाणं पि किट्टीणं सरूवणिद्देसं कादूण संपहि तव्वदिरित्ताओ जाओ सेसासेसकिट्टीओ ताओ उभयेण वि पयारेण खवेदि त्ति इममत्थविसेसं पदुप्पाएमाणो उवरिमं सुत्तपबंधमाढवेइ—

* चरिमकिट्टिं वज्ज दो आवलियदुसमयूणबंधे च वज्ज जं सेस-किट्टीणं तमुभयेण खवेदि।

---

§ ११० अब शेष रही ग्यारह संग्रह कृष्टियोंकी जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवक-बन्ध कृष्टियाँ हैं उनका संक्रमण करता हुआ ही क्षय करता है इस प्रकार इस अर्थ विशेष को यद्यपि पहले प्ररूपणा कर आये हैं फिर भी उसका पुनः स्पष्टीकरण करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* शेष ग्यारह संग्रह कृष्टियोंमें प्रत्येकके अन्तमें जो दो समय कम दो-दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध शेष रहते हैं उनका संक्रमण करता हुआ ही क्षय करता है, वेदन करता हुआ क्षय नहीं करता।

§ १११ सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिको छोड़कर शेष ग्यारह संग्रहकृष्टियोंके अन्तमें जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध समयप्रबन्ध शेष रहते हैं उन्हें संक्रमण करता हुआ ही क्षय करता है, वेदन करता हुआ क्षय नहीं करता, क्योंकि उनका स्वमुखसे उदयका सम्बन्ध नहीं उपलब्ध होता, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार इन दो सूत्रों द्वारा जो वेदी जाकर ही क्षपणाको प्राप्त होती हैं, संक्रमण होकर नहीं, तथा जो संक्रमण होकर ही क्षपणाको प्राप्त होती हैं, वेदी जाकर नहीं, उन दोनों प्रकारकी कृष्टियोंका स्वरूपनिर्देश करके अब उनसे अतिरिक्त जो शेष सपूर्ण कृष्टियाँ हैं वे दोनों ही प्रकारसे क्षयको प्राप्त होती हैं इस प्रकार इस अर्थविशेषका प्रतिपादन करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं।

* अन्तिम सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिको छोड़कर तथा प्रथमादि ग्यारह संग्रह कृष्टियोंके दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवक समयप्रबद्धोंको छोड़कर उन शेष रही ग्यारह संग्रहकृष्टियोंकी जो कृष्टियाँ शेष रहती हैं उन्हें दोनों प्रकारसे क्षय करता है।

§ ११२ गयत्थमेदं सुत्तं । संपहि एत्थ उभयेणे त्ति जं पदं तस्स अत्थविवरणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

*** किं उभयेणे त्ति ?**

§ ११३ उभयेणे त्ति किमुक्तं भवतीति चेदु ? उच्यते ।

*** वेदेंतो च संछुहंतो च एदमुभयं ।**

§ ११४ वेदगभावेण संछोहयभावेण च खवेदि त्ति एसो उभयसद्दस्सत्थो जाणियव्वो त्ति भणिदं होदि ।

§ ११५ एवमेत्तिएण सुत्तपबंधेण पढममूलगाहाए एगभासगाहापडिबद्धमत्थं विहासिय संपहि जहावसरपत्ताए बिदियमूलगाहाए अत्थविहासणं कुणमाणो इदमाह—

---

§ ११२ यह सूत्र गतार्थ है। अब यहाँ (इस सूत्रमें) 'उभयेण' यह जो पद आया है उसके अर्थ का खुलासा करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं।

*** 'उभय प्रकारसे' इसका क्या अर्थ है ?**

§ ११३ 'उभय प्रकारसे' इसका क्या अर्थ है ? ऐसी शंका होनेपर कहते हैं—

*** 'वेदन करता हुआ और संक्रमण करता हुआ [क्षय करता] है' यह उभयपद का अर्थ है।**

§ ११४ 'वेदकभावसे और संक्रमण करनेके भावसे क्षय करता है' यह उभय शब्दका अर्थ जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

विशेषार्थ—सब मिलाकर बारह संग्रह कृष्टियाँ हैं और उनमें से प्रत्येक की अनन्त अन्तर-कृष्टियाँ हैं। उनकी क्षपणा कैसे होती है ? वेदन करके क्षपणा होती है या संक्रमण करके क्षपणा होती है, या दोनों प्रकार से क्षपणा होती है, यह एक मुख्य प्रश्न है। इसका समाधान करते हुए बतलाया गया है कि प्रारम्भ की जो ग्यारह संग्रह कृष्टियाँ और उनकी जो अवान्तर कृष्टियाँ हैं उनमें से प्रत्येक के वेदन करने के अन्त में जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध समय-प्रबद्ध बचते हैं उनका अगली संग्रह कृष्टि में संक्रमण होकर ही वेदन होता है तथा दो समय कम दो आवलि प्रमाण नवकबन्ध के अतिरिक्त जितनी भी संग्रह कृष्टियाँ और उनकी अवान्तर कृष्टियाँ हैं उन सबका वेदन और संक्रमण होकर ही क्षय होता है। शेष रही बारहवीं संग्रह कृष्टि और उसकी अवान्तर कृष्टियाँ सो ये कृष्टिकरण के काल में बादररूपसे ही कृष्टिपने को प्राप्त होती हैं। परन्तु इसका अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में ही सूक्ष्मकृष्टिरूपसे परिणमन हो जाता है, अतः सूक्ष्म-साम्परायिक गुणस्थान में वेदन होकर ही इनका क्षय होता है ऐसा यहाँ समझना चाहिए।

§ ११५ इस प्रकार इतने सूत्रप्रबन्ध द्वारा एक भाष्य गाथा के साथ प्रथम मूलगाथा के अर्थ की विभाषा करके अब यथावसरप्राप्त दूसरी मूलगाथा के अर्थ की विभाषा करते हुए इस सूत्र को कहते हैं—

* एत्तो बिदियमूलगाहा ।

§ ११६ सुगमं ।

* (१६३) जं वेदेंतो किट्टिं खवेदि किं चावि बंधगो तिस्से ।
जं चावि संछुहंतो तिस्से किं बंधगो होदि ॥२१६॥

§ ११७ एसा बिदियमूलगाहा किं वेदगस्स खवगस्स वेदिज्जमाणावेदिज्जमाण-सरूवेण खविज्जमाणासु किट्टीसु कासिं बंधसंबंधो अत्थि, कासिं वा णत्थि त्ति इमम-त्थविसेसं पुच्छामुहेण पदुप्पाएदुमोइण्णा परिप्फुडमेवेत्थ तहाविहत्थविसयपुच्छाणिद्दे-स-दंसणादो । तं जहा—'जं वेदेंतो किट्टिं' एवं भणिदे जं खलु किट्टिं वेदेमाणो खवेदि किं तिस्से किट्टीए बंधगो होदि, आहो ण होदि त्ति गाहापुव्वद्धे सुत्तत्थसंबंधो । एदस्स भावत्थो—दुसमयूणदोआवलियमेत्तणवकबंधे मोत्तूण सेसाओ एक्कारस-संगहकिट्टीण-मंतरकिट्टीओ वेदेमाणो खवेदि त्ति वुत्तं । एवं च खवेमाणो तदवत्थाए जं जं किट्टिं खवेदि तिस्से किट्टीए किं णियमा बंधगो होदि, आहो अबंधगो चेव, किं वा सिया बंधगो, सिया च ण बंधगो त्ति पुच्छिदं होदि ।

---

* इसके आगे दूसरी मूल सूत्रगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ।

§ ११६ यह सूत्र सुगम है ।

* (१६३) कृष्टिवेदक क्षपक जिस कृष्टिका वेदन करता हुआ क्षय करता है क्या उसका वह बन्धक भी होता है तथा जिस कृष्टिका संक्रमण करता हुआ क्षय करता है उसका भी क्या वह बन्धक होता है ॥२१६॥

§ ११७ यह दूसरी मूलगाथा कृष्टियोंका क्या वेदन करनेवाले क्षपकका वेदी जानेवाली या नहीं वेदी जानेवाली स्वरूपसे क्षयको प्राप्त होनेवाली कृष्टियोंके होनेपर, किनका बन्धके साथ क्या सम्बन्ध है अथवा किनका बन्धके साथ सम्बन्ध नहीं है, इस प्रकार इस अर्थविशेषका पृच्छाद्वारा प्रतिपादन करनेके लिये अवतीर्ण हुई है, क्योंकि इस गाथामें उस प्रकारकी अर्थविषयक पृच्छाका निर्देश स्पष्ट रूपसे ही देखा जाता है । यथा—'जं किट्टिं वेदंतो' ऐसा कहने पर नियमसे जिस कृष्टिका वेदन करता हुआ उसकी क्षपणा करता है, क्या उस कृष्टिका वह बन्धक होता है या बन्धक नहीं होता, इस प्रकार गाथाके पूर्वार्धमें इस सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है । इसका भावार्थ—दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवक बन्धको छोड़कर शेष ग्यारह संग्रह कृष्टियों और अन्तर कृष्टियोंको वेदन करनेवाला क्षय करता है यह उक्त सूत्रगाथामें कहा गया है । और इस प्रकार क्षय करता हुआ वह क्षपक उस अवस्थामे जिस-जिस कृष्टि का क्षय करता है—उस-उस कृष्टिका वह क्या नियमसे बन्धक होता है या अबन्धक ही रहता है, अथवा क्या कथंचित् बन्धक होता है और कथंचित् बन्धक नहीं होता, इस प्रकार यह पृच्छा की गई है ।

§ ११८ 'जं चावि संछुहंतो' एवं भणिदे जं खलु किट्टिं संकामेंतो चेव खवेदि, तिस्से किं बंधगो होदि आहो ण होदि त्ति गाहापच्छद्धे सुत्तत्थसंबंधो। एदस्स भावत्थो—दुसमयूणदोआवलियमेत्तणवकबंधकिट्टीओ संछुहंतो चेव खवेदि, ण वेदेंतो। एवं च खवेमाणो तदवत्थाए णिरुद्धसंगहकिट्टीए किं बंधगो होदि आहो ण होदि त्ति पुच्छा कदा होदि। एवमेदीए बिदियमूलगाहाए पुच्छामेत्तेण णिद्दिट्ठस्स अत्थविसेसस्स णिण्णयविहाणट्ठमेत्थ एका भासगाहा अत्थि। तिस्से समुक्कित्तणं विहासणं च कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* एदिस्से गाहाए एक्का भासगाहा।

§ ११९ सुगमं।

* जहा।

§ १२० सुगमं।

* (१६४) जं चावि संछुहंतो खवेदि किट्टिं अबंधगो तिस्से।
सुहुमम्हि सांपराए अबंधगो बंधगिदरासिं ॥ २१७ ॥

---

§ ११८ 'जं चावि संछुहंतो' ऐसा कहनेपर नियमसे जिस कृष्टिका संक्रमण करता हुआ क्षय करता है उसका क्या बन्धक होता है या इस प्रकार नहीं होता? यह सूत्रगाथाके उत्तरार्धमें इस गाथासूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है। इसका भावार्थ—दो समय कम दो आवलिप्रमाण कृष्टियोंका संक्रमण करता हुआ ही क्षय करता है, वेदन करता हुआ क्षय नहीं करता है। और इस प्रकार क्षय करता हुआ उस अवस्थामें विवक्षित संग्रह कृष्टिका क्या बन्धक होता है अथवा बन्धक नहीं होता? यह पृच्छा की गई है। इस प्रकार इस दूसरी मूलगाथामें पृच्छाद्वारा कहे गये अर्थविशेषके निर्णयका विधान करनेके लिये इस विषयमें एक भाष्यगाथा आई है उसकी समुत्कीर्तना और विभाषाको करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* इस मूल गाथाकी एक भाष्यगाथा है।

§ ११९ यह सूत्र सुगम है।

* जैसे।

§ १२० यह सूत्र सुगम है।

* (१६४) जिस कृष्टिका संक्रमण करता हुआ ही क्षय करता है उसका वह बन्धक नहीं होता तथा सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान में सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिका वह अबन्धक रहता है। किन्तु शेष कृष्टियोंका वेदन होकर क्षपण कालमें वह उनका बन्धक होता है ॥ २१७ ॥

§ १२१ एदिस्से गाहाए अत्थो वुच्चदे, तं जहा—जं किट्टिं दुसमयूणदोआवलियमेत्तणवकबंधसरूवसंकोहणाए चेव खवेमाणो तदवत्थाए तिस्से णियमा अबंधगो। सुहुमसांपराइयकिट्टीए च अबंधगो होदि, तत्थ तब्बंधसत्तीए अच्चंतासंभवादो। सेसाणं पुण किट्टीणं बंधगो होदि, बादरसांपराइयविसये खविज्जमाणकिट्टीणं सगवेदगद्धामेत्तकालं बंधसंभवे विरोहाणुवलंभादो। संपहि एदस्सेव सुत्तत्थस्स फुडीकरणट्ठमुवरिमं विहासागंथमाढवेइ—

*** विहासा।**

§ १२२ सुगम।

*** जं जं खवेदि किट्टिं णियमा तिस्से बंधगो मोत्तूण दो दो आवलियबंधे दुसमयूणे सुहुमसांपराइयकिट्टीओ च।**

§ १२३ सुगमो च एसो विहासागंथो त्ति ण एत्थ किंचि वक्खाणेयव्वमत्थि।

---

§ १२१ अब इस गाथाका अर्थ कहते हैं। यथा—दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्धस्वरूप जिस कृष्टिका संक्रमण द्वारा क्षय करता है उस अवस्था में उसका नियमसे अबन्धक होता है क्योंकि वहाँ उसके बन्धकी शक्तिका होना अत्यन्त असम्भव है। परन्तु शेष कृष्टियोंका बन्धक होता है, क्योंकि बादर साम्परायिक गुणस्थानमें क्षयको प्राप्त होनेवाली कृष्टियोंका अपने वेदक कालप्रमाण कालतक उनके बन्धके सम्भव होनेमें विरोध नहीं पाया जाता। अब इसी सूत्रसम्बन्धी अर्थको स्पष्ट करनेके लिए विभाषा ग्रन्थको आरम्भ करते हैं—

*** अब उक्त भाष्यगाथाकी विभाषाकी जाती है।**

§ १२२ यह सूत्र सुगम है।

*** जिस-जिस कृष्टिका क्षय करता है वह, दो समय कम दो-दो आवलिप्रमाण नवक-बन्धकृष्टियोंको तथा सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टियोंको छोड़कर, उनका नियमसे बन्धक होता है।**

§ १२३ इसका विभाषाग्रन्थ सुगम है, इसलिये इस विषयमें कुछ भी व्याख्यान करने योग्य नहीं है।

विशेषार्थ—इसकी गाथा २०६ को विभाषा करते हुए बतलाया है कि क्रोधसंज्वलनकी प्रथम संग्रह कृष्टिका वेदन करनेवाला क्षपक चारों संज्वलनकषायोंकी प्रथम संग्रह कृष्टिका बन्ध करता है। इस पर यह शंका की गई है कि क्या इस प्रकार क्रोधसंज्वलनको दूसरी संग्रह कृष्टिका वेदन करनेवाला जीव चारों कषायोंकी क्या दूसरी संग्रह कृष्टिका बन्ध करता है? इसका समाधान करते हुए बतलाया है कि जिस संज्वलन कषायकी जिस संग्रह कृष्टिका वेदन करता है उस कषाय की उस संग्रह कृष्टिका बन्ध करता है तथा शेष कषायोंका प्रथम संग्रह कृष्टियोंका बन्ध करता है।

§ १२४ एवं बिदियमूलगाहाए अत्थविहासणं समाणिय संपहि जहावसरपत्ताए तदियमूलगाहाए अत्थविहासणं कुणमाणो तदवसरकरणट्ठमुवरिमं पबंधमाढवेइ—

* एत्तो तदिया मूलगाहा ।

§ १२५ सुगमं ।

* तं जहा ।

§ १२६ सुगमं ।

* (१६५) जं जं खवेदि किट्टिं ट्ठिदि-अणुभागेसु केसुदीरेदि ।
संछुहदि अण्णकिट्टिं से काले तासु अण्णासु ॥ २१८ ॥

§ १२७ एसा तदियमूलगाहा किट्टीसु खविज्जमाणीसु तदवत्थाए णिरुद्धसंगहकिट्टीविसए ट्ठिदि-अणुभागोदीरणासंकमाणं बंधसहगदाणं पवुत्तिविसेसावहारणट्ठमोइण्णा । संपहि एदिस्से अवयवत्थो वुच्चदे । तं जहा—'जं जं खवेदि किट्टिं' एवं भणिदे जं जं संगहकिट्टिं खवेदि तं तं ट्ठिदि-अणुभागेसु किंभूदेसु उदीरेदि किमविसेसेण सव्वेसु ठिदिविसेसेसु अणुभागविसेसेसु च उदीरणा पयट्टदि आहो अत्थि को वि तत्थ विसेसणियमो त्ति पुच्छिदं होइ । एवमेसो गाहापुव्वद्धे सुत्तत्थसमुच्चओ ।

---

§ १२४ इस प्रकार दूसरी मूल गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान समाप्त करके अब यथावसर प्राप्त तीसरी मूल गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान करते हुए उसका अवसर उपस्थित करनेके लिये आगेके प्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

* इसके बाद तीसरी मूल गाथा है ।

§ १२५ यह सूत्र सुगम है ।

* वह जैसे ।

§ १२६ यह सूत्र भी सुगम है ।

* (१६५) जिस-जिस संग्रहकृष्टिका क्षय करता है, 'उस-उस कृष्टिको किस-किस प्रकारके स्थिति और अनुभागोंमें उदीरित करता है । विवक्षित कृष्टिको अन्य कृष्टमें संक्रमण करता हुआ किस-किस प्रकारके स्थिति और अनुभागोंसे युक्त कृष्टिमें संक्रमण करता है । तथा विवक्षित समयमें जिस स्थिति और अनुभागयुक्त कृष्टियोंमें उदीरणा-संक्रमण आदि किये हैं, अनन्तर समयमें क्या उन्हीं कृष्टियोंमें उदीरणा-संक्रमण आदि करता है, अथवा अन्य कृष्टियोंमें करता है ॥ २१८ ॥

§ १२७ यह तीसरी मूल गाथा कृष्टियोंके क्षयको प्राप्त होते हुए उस अवस्थामें विवक्षित संग्रह कृष्टिके विषयमें बन्धके साथ होनेवाले स्थिति और अनुभागोंकी उदीरणा और संक्रमणकी प्रवृत्तिविशेषका अवधारण करनेके लिये अवतीर्ण हुई है । अब इसके प्रत्येक चरणका अर्थ कहते हैं । वह जैसे—'जं जं खवेदि किट्टिं' ऐसा कहने पर जिस-जिस संग्रह कृष्टिका क्षय करता है उस-उस संग्रह कृष्टिका किस-किस प्रकारके स्थिति-अनुभागोंमें उदीरित करता है ? क्या सामान्यसे सब स्थितिविशेषोंमें और अनुभागविशेषोंमें उदीरणा प्रवृत्त होती है या वहाँ कोई विशेष नियम है ? यह पूछा गया है । इसप्रकार यह गाथाके पूर्वार्धमें सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है ।

§ १२८ 'संछुहदि अण्णकिट्टिं' एवं भणिदे णिरुद्धसंगहकिट्टिमण्णकिट्टीए उवरि संकामेमाणो कथंभूदेसु ठिदिअणुभागेसु वट्टमाणाणं णिरुद्धसंगहकिट्टिं संछुहदि किम-विसेसेण सव्वाओ ट्ठिदीओ अणुभागकिट्टीओ च अण्णकिट्टीसरूवेण संकामेदि आहो अत्थि कोवि तत्थ विसेससंभवो त्ति एसा बिदियपुच्छा ट्ठिदि-अणुभागसंकमाणं पवुत्तिविसेसमुवेक्खदे । ट्ठिदि-अणुभागबंधविसयो वि पुच्छाणिद्देसो एत्थेव णिलीणो वक्खाणेयव्वो; सुत्तस्सेदस्स देसामासयभावेण पवुत्तिअब्भुवगमादो । तदो णिरुद्धसंगह-किट्टीए खविज्जमाणाए ट्ठिदि-अणुभागोदीरणा तव्विसयोक्कड्डणा परपयडिसंकमो ट्ठिदि-अणुभागबंधो च कथं पयट्टंति त्ति एसो ए सुत्तत्थसंगहो ।

§ १२९ 'से काले तासु अण्णासु' ए भणिदे णिरुद्धसमये जासु ट्ठिदीसु अणु-भागकिट्टीसु च बंधोदीरणसंकमा संवुत्ता किं तासु चेव से काले पयट्टंति आहो तदो अण्णासु पयट्टंति त्ति एसो तदिओ पुच्छाणिद्देसो । एदेण ट्ठिदि-अणुभाग-संकमोदीरणाणं बंधसहगदाणं समयं पडि पवुत्तिविसेसो केरिसो होदि त्ति एवंविहो अत्थविसेसो सूचिदो दट्ठव्वो । एदेणेव अण्णो वि पयदोवजोगिओ अत्थविसेसो देसामासयभावेण सूचिदो त्ति वक्खाणेयव्वो । संपहि एदिस्से तदियमूलगाहाए अत्थविहासणं कुणमाणो तत्थ पडिबद्धाणं भासगाहाणमियत्तावहारणट्ठमुत्तरं सुत्तमाह—

---

§ १२८ 'संछुहदि अण्णकिट्टिं' ऐसा कहने पर विवक्षित संग्रह-कृष्टिका अन्य कृष्टि में संक्रम करता हुआ किस प्रकारकी स्थिति और अनुभागमें विद्यमान उनका विवक्षित संग्रह कृष्टिका संक्र-मण करता है, क्या सामान्यसे सब स्थितियों और अनुभाग-कृष्टियोंको अन्यकृष्टिरूपसे संक्रमित करता है या इस विषयमें कोई विशेष सम्भव है। इस प्रकार यह दूसरी पृच्छा स्थिति, अनुभाग और संक्रमकी प्रवृत्ति विशेषकी अपेक्षा करता है तथा स्थिति, अनुभाग और बन्धविषयक पृच्छाका निर्देश भी इसीमें लीन है ऐसा व्याख्यान करना चाहिये, क्योंकि इस सूत्रको देशामर्षकरूपसे प्रवृत्ति स्वीकारकी गई है। अतः विवक्षित संग्रहकृष्टिकी क्षपणा होते समय स्थिति, अनुभाग और उदीरणा तथा तद्विषयक अपकर्षण, परप्रकृतिसंक्रम, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध किस प्रकार प्रवृत्त होते हैं ? इस प्रकार यह प्रकृतमें सूत्रका समुदायरूप अर्थ है ।

§ १२९ 'से काले तासु अण्णासु' ऐसा कहनेपर विवक्षित समय में जिन स्थिति और अनुभाग कृष्टियोंमें बन्ध, उदीरणा और संक्रम प्रवृत्त हुए हैं क्या उन्हींमें अनन्तर समय में प्रवृत्त रहते हैं या उनसे अन्यमें वे प्रवृत्त रहते हैं ? इस प्रकार यह तीसरा पृच्छानिर्देश है । इसके द्वारा बन्ध के साथ होनेवाले स्थिति, अनुभाग, संक्रम और उदीरणाका प्रत्येक समयमें प्रवृत्ति विशेष किस प्रकारका होता है, इस तरह इस प्रकारका अर्थविशेष सूचित किया गया जानना चाहिये । इसीके द्वारा अन्य भी प्रकृतमें उपयोगी अर्थ विशेष देशामर्षकरूपसे सूचित किया गया है ऐसा व्याख्यान करना चाहिये । अब इस तीसरी मूल गाथाके अर्थको विभाषा करते हुए उससे सम्बन्ध रखनेवाली भाष्यगाथाओंकी संख्याका निश्चय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* एदिस्से दस भासगाहाओ ।

§ १३० सुगममेदं सुत्तं । एत्थ पडिबद्धाणं दसण्हं भासगाहाणं परिप्फुडमेव समुवलंभादो । संपहि काओ ताओ दसभासगाहाओ त्ति आसंकाए जहाकममेव तासिं समुक्कित्तणं विहासणं च कुणमाणो उवरिमं पबंधमाढवेइ--

* तत्थ पढमाए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

§ १३१ तासु दससु भासगाहासु पढमभासगाहाए तत्थ समुक्कित्तणा पुव्वमेव कीरदि त्ति वुत्तं होदि ।

* (१६६) बंधो व संकमो वा णियमा सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु ।
सव्वेसु चाणुभागेसु संकमो मज्झिमो उदओ ॥२१९॥

---

* इस मूलगाथा सूत्रकी दस भाष्यगाथाएँ हैं ।

§ १३० यह सूत्र सुगम है । इस विषयमें सम्बन्ध रखनेवाली दस भाष्यगाथाएँ स्पष्टरूपसे ही उपलब्ध होती हैं । अब वे दस भाष्यगाथाएँ कौन सी हैं ? ऐसी आशंका होनेपर यथाक्रमसे ही उनकी समुत्कीर्तना और विभाषा करते हुए आगेके प्रबन्धको आरम्भ करते है—

* उनमेंसे प्रथम भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ।

§ १३१ उन दस भाष्यगाथाओंमें से यहाँ सर्वप्रथम भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना की जाती है, यह कहा गया है—

* (१६६) विवक्षित कृष्टिका बन्ध और संक्रम नियमसे क्या सभी स्थिति-विशेषोंमें होता है ? (विवक्षित कृष्टिका स्थितिबन्ध सभी स्थितिविशेषोंमें नहीं होता । परन्तु स्थिति-संक्रम उदयावलिको छोड़कर सभी स्थिति-विशेषोंमें होता है ।) तथा विवक्षित कृष्टिके अनुभागका सभी अनुभाग-सम्बन्धी भेदोंमें संक्रम होता है । मात्र जिस कृष्टिका वेदन करता है उसका मध्यम कृष्टियोंके रूपसे उदय होता है ॥ २१९ ॥

§ १३२ एसा पढमभासगाहा पुव्वद्धेण ट्ठिदिबंध-ट्ठिदिसंकमाणं किट्टीवेदग-खवगसंबंधीणं णिण्णयविहाणट्ठमोइण्णा 'बंधो वा संकमो वा णियमा' णिच्छयेणेव किं सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु होदि आहो ण सव्वेसु त्ति पदाहिसंबंधवसेण परिप्फुडमेवेत्थ ट्ठिदिबंधसंकमणणिण्णयविहाणस्स पडिबद्धत्तदंसणादो। एदं च गाहापुव्वद्धं पुच्छासुत्त-मेव, ण णिद्देसमुत्तमिदि उवरि चुण्णिसुत्तयारो सयमेव भणिहिदि। तत्थेव तव्वि-णिण्णयं कस्सामो। तम्हा पच्छद्धेण वि अणुभागसंकमस्स अणुभागोदयस्स च किट्टी-विसयस्स पवुत्तिविसेसो एवं होदि त्ति णिण्णयविहाणट्ठमेसा भासगाहा समोइण्णा, सव्वेसु चेव णिरुद्धसंगहकिट्टीए अणुभागवियप्पेसु संकमो होदि, उदयो पुण मज्झिम-किट्टीसरूवेणेव दट्ठव्वो त्ति परिप्फुडमेव गाहापच्छद्धे अणुभागविसयाणं संकमोदयाणं णिण्णयविहाणदंसणादो। एदं च गाहापच्छद्धं णिद्देससुत्तमेव, ण पुच्छासुत्तमिदि घेत्तव्वं। संपहि एवंविहत्थपडिबद्धाए एदिस्से पढमभासगाहाए अत्थविहासणं कुणमाणो पुव्वमेव ताव गाहापुव्वद्धस्स णिद्देससुत्ताभावासंकाणिरायरणदुवारेण पुच्छासुत्तत्थसमत्थणट्ठमुवरिमं पबंधमाढवेइ—

---

§ १३२ यह प्रथम भाष्यगाथा, अपने पूर्वार्धद्वारा कृष्टिवेदकके क्षपकसम्बन्धी स्थितिबन्ध और स्थितिसंक्रमका निर्णय करनेके लिये अवतीर्ण हुई है। बन्ध और संक्रम 'णियमा' निश्चयसे ही क्या सभी स्थितिविशेषोंमें होता है या सभी स्थितिविशेषोंमें नहीं होता इस प्रकार पदोंके अभिसम्बन्धके वशसे स्पष्टरूपसे ही यहाँ पर स्थितिबन्ध और संक्रमके निर्णयके विधानका अर्थके साथ सम्बन्ध देखा जाता है। और यह गाथाका पूर्वार्ध पृच्छासूत्र ही है; निर्देशसूत्र नहीं, यह आगे चूर्णिसूत्रकार स्वयं ही कहेंगे, इसलिये वहीं उसका निर्णय करेंगे। इस कारण गाथाके उत्तरार्ध द्वारा भी कृष्टिविषयक अनुभाग-संक्रम और अनुभाग-उदयकी प्रवृत्तिविशेष इस प्रकार होती है इस बात का निर्णय करनेके लिये यह भाष्यगाथा अवतीर्ण हुई है, क्योंकि विवक्षित संग्रह कृष्टिके अनुभागसम्बन्धी सभी भेदोंमें संक्रम होता है। परन्तु उदय मध्यम कृष्टिरूपसे ही जानना चाहिये इस प्रकार गाथाके उत्तरार्धमें अनुभाग विषयक संक्रम और उदयके निर्णयका कथन स्पष्टरूपसे देखा जाता है और यह गाथाका उत्तरार्ध निर्देशसूत्र ही है, पृच्छासूत्र नहीं है, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। अब इस प्रकारके अर्थ-के साथ सम्बन्ध रखनेवाली इस प्रथम भाष्यगाथाके अर्थकी विभाषा करते हुए सर्वप्रथम गाथाके पूर्वार्धमें निर्देशसूत्रकी अभावविषयक आशंकाके निराकरण द्वारा पृच्छासूत्ररूप अर्थका समर्थन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

* 'बंधो व संकमो वा णियमा सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु' त्ति एदं पुण पुच्छासुत्तं ।

§ १३३ अस्यार्थ उच्यते—'एदं णज्जदि' एवमुक्ते एतत्परिज्ञायते किमिति वायरणसुत्तं ति व्याख्यानसूत्रमिति व्याक्रियतेऽनेनेति व्याकरणं प्रतिवचनमित्यर्थः । 'एदं पुण पुच्छासुत्तं' एतत्तु पृच्छासूत्रमेवेति प्रतिपत्तव्यं; गाथासूत्रकाराभिप्रायस्य तथाविधत्वादित्युक्तं भवति । कथं पुनरिदं विज्ञायते प्रश्नवाक्यमेवैतत्, न पुनः प्रतिवचनसूत्रमिति । अत्रोच्यते—ट्ठिदिबंधट्ठिदिसंकमा जहावुत्तविहाणेण सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु ण संभवंति; तेसिं परिमियेसु चेव ट्ठिदिविसेसेसु पवुत्तिणियमदंसणादो । तम्हा पुच्छा-वक्कमेदमेव, ण वक्खाणसुत्तमिदि णिच्छेयव्वं । साम्प्रतमिममेवार्थं समर्थयितुकाम उत्तरं प्रबंधमारभयति—

* तं जहा ।

§ १३४ सुगमं ।

---

* 'बन्ध और संक्रम नियमसे सब स्थितिविशेषोंमें होता है क्या ?' इससे यह जाना जाता है कि क्या यह व्याकरण (व्याख्यान) सूत्र है ? परन्तु यह व्याकरण-सूत्र न होकर पृच्छासूत्र है ।

§ १३३ अब इसका अर्थ कहते हैं—'एदं णज्जदि' ऐसा कहने पर यह जाना जाता है कि क्या यह व्याकरणसूत्र है या व्याख्यानसूत्र है । जिसके द्वारा व्याक्रियते अर्थात् विशेषरूपसे पूरी तरह-से मीमांसा की जाती है उसे व्याकरणसूत्र कहते हैं उसका अर्थ होता है 'प्रतिवचन' । परन्तु यह (व्याकरणसूत्र न होकर) पृच्छासूत्र है, यह तो पृच्छासूत्र ही है ऐसा जानना चाहिये, क्योंकि गाथा-सूत्रकारका अभिप्राय उसी प्रकारका है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि यह प्रश्नवाक्य ही है, किन्तु यह प्रतिवचन सूत्र नहीं है ?

समाधान—अब यहाँ इसका उत्तर कहते हैं—स्थिति और स्थितिसंक्रम जिस प्रकार पूर्वमें इनकी विधि कह आये हैं उस विधिके अनुसार सब स्थिति-विशेषोंमें सम्भव नहीं है, क्योंकि उनको परिमित स्थितिविशेषों में ही प्रवृत्ति होनेका नियम देखा जाता है । इसलिये यह पृच्छावाक्य ही है, व्याख्यानसूत्र नहीं, ऐसा यहाँ निश्चय करना चाहिये ।

अब इसी अर्थका समर्थन करने की इच्छा रखने वाले आचार्य आगेके प्रबन्धको आरम्भ करते हैं ।

* वह जैसे ।

§ १३४ यह सूत्र सुगम है ।

* बंधो व संकमो वा णियमा सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु त्ति एदं वक्खाणसुत्तं तं णिद्दिट्ठं त्ति एदं पुण पुच्छिदे किं सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु, आहो ण सव्वेसु ।

§ १३५ गतार्थमेतत्, पूर्वोक्तस्यैवार्थस्यानेन दृढीकरणात् । एवमेदस्स गाहापुव्वद्धस्स पुच्छासुत्तत्थं जाणाविय पुच्छाकमं च पदरिसिय संपहि एदिस्से पुच्छाए गाहासुत्तसूचिदं णिण्णयविहाणं कुणमाणो विहासासुत्तयारो विहासागंथमुत्तरमाढवेइ—

* तदो वत्तव्वं ण सव्वेसु त्ति ।

§ १३६ तत एवं वक्तव्यं न सर्वेषु स्थितिविशेषेष्विति । कुत एवमिदि चेत् ? आह—

* किट्टीवेदगे पगदं ति चत्तारि मासा एत्तिगाओ ट्ठिदीओ बज्झंति, आवलियपविट्ठाओ मोत्तूण सेसाओ संकामिज्जंति ।

---

* बन्ध और संक्रम नियमसे स्थितिविशेषोंमें होता है इस वचनसे यह जाना जाता है कि इस द्वारा यह निर्देश किया गया है कि यह व्याख्यानसूत्र है क्या ? परन्तु यह व्याख्यानसूत्र न होकर पृच्छासूत्र है। इस द्वारा यह पूछा गया है कि बन्ध और संक्रम सब स्थितिविशेषोंमें होता है या सब स्थितिविशेषोंमें नहीं होता ।

§ १३५ यह सूत्र गतार्थ है, क्योंकि अर्थको ही इस द्वारा दृढ़ किया गया है। इस प्रकार उक्त गाथासूत्रके इस पूर्वार्धके पृच्छासूत्ररूप अर्थको जानकर और पृच्छाक्रमको दिखलाकर अब इस पृच्छाके द्वारा गाथासूत्रसे सूचित होनेवाले निर्णयसम्बन्धी कथनको करते हुए विभाषासूत्रकार आगेके विभाषाग्रन्थको आरम्भ करते हैं—

* उक्त प्रश्न के उत्तरमें कहना चाहिये कि सब स्थितियोंमें बन्ध और संक्रम नहीं होता है ।

§ १३६ इसलिये यह कहना चाहिये कि सब स्थितिविशेषोंमें बन्ध और संक्रम नहीं होता है।

शंका—ऐसा क्यों होता है ?

समाधान—कहते हैं—

* यहाँ कृष्टिवेदकका प्रकरण है, इसलिये इसके 'चार मास' इतनी ही स्थितियाँ बँधती हैं। तथा आवलि (उदयावलि) प्रविष्ट स्थितियोंको छोड़कर शेष सब स्थितियाँ संक्रामित की जाती हैं ।

§ १३७ अयमस्य भावार्थः—पढमसमयकिट्टीवेदगस्स संजलणाणं ट्ठिदिसंतकम्ममट्ठवस्समेत्तमत्थि; कोहोदयखवगम्मि परिप्फुडमेव तदुवलंभादो। ण च एत्तियमेत्ताणं ट्ठिदिविसेसाणं तक्काले बंधसंभवो अत्थि; चदुमासमेत्तस्सेव तत्थ संजलणाणं ट्ठिदिबंधस्स संभवोवलंभादो। ट्ठिदिसंकमो पुण तक्कालभाविओ उदयावलियपविट्ठाओ ट्ठिदीओ मोत्तूण सेसासेसट्ठिदिविसेसेसु पयट्टदि, तत्थ पयारंतरासंभवादो त्ति। एदेण कारणेण ण; सव्वेसु ठिदिविसेसेसु त्ति णिद्दिट्ठं। ट्ठिदिउदीरणा वि उदयावलियवज्जासु सव्वासु चेव ट्ठिदीसु पयट्टदि त्ति एसो वि अत्थो एदेणेव सुत्तेण सूचिदो दट्ठव्वो। एवमेत्तिएण पबंधेण गाहापुव्वद्धं विहासिय संपहि गाहापच्छद्धमस्सियूण अणुभागसंकमतदुदीरणाणं पवुत्तिविसेसावहारणट्ठमिदमाह—

* 'सव्वेसु चाणुभागेसु संकमो मज्झिमो उदयो' त्ति एदं सव्वं वाकरणसुत्तं।

§ १३८ सर्वमेवैतद् गाथापश्चार्द्धं व्याकरणसूत्रमेव प्रतिवचनसूत्रमेवेति ग्राह्यं। सुबोधमन्यत्।

* सव्वाओ किट्टीओ संकमंति।

---

§ १३७ इस विभाषासूत्रका यह भावार्थ है—प्रथम समयमें कृष्टिवेदकजीवके चारों संज्वलनोंका स्थितिसत्कर्म आठ वर्ष प्रमाण होता है, क्योंकि क्रोधसंज्वलनके उदयके समय क्षपक यह सत्व स्पष्ट रूप ही पाया जाता है। किन्तु उस कालमें एतत्प्रमाण स्थितिबन्ध नहीं पाया जाता, मात्र उस कालमें संज्वलनकषायोंका स्थितिबन्ध चार मास प्रमाण ही पाया जाता है। किन्तु उस कालमें होनेवाला स्थितिसंक्रम उदयावलिप्रविष्ट स्थितियोंको छोड़कर शेष समस्त स्थितिविशेषोंमें प्रवृत्त होता है; क्योंकि उस कालमें संक्रमसम्बन्धी और दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है। उस काल में स्थितिउदीरणा भी उदयावलिको छोड़कर शेष समस्त स्थितियोंमें प्रवृत्त होती है इस प्रकार यह अर्थ भी इसी सूत्र द्वारा सूचित हुआ जानना चाहिये। इस प्रकार इतने प्रबन्धद्वारा गाथाके पूर्वार्धकी विभाषा करके अब गाथाके उत्तरार्धका आश्रय करके अनुभाग-संक्रम और अनुभाग-उदीरणाकी प्रवृत्तिविशेषका अवधारण करनेके लिये यह सूत्र कहते हैं—

* तथा संक्रम सभी अनुभागोंमें होता है और उदय मध्यमकृष्टियोंका होता है। इस प्रकार गाथाका उत्तरार्धरूप यह सब व्याकरणसूत्र है।

§ १३८ यह पूरा ही उक्त गाथाका व्याकरणसूत्र ही है अर्थात् प्रतिवचनसूत्र ही है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। शेष सब कथन सुबोध है।

* उक्त क्षपकके सभी कृष्टियाँ संक्रमित होती हैं।

§ १३९ वेदिज्जमाणावेदिज्जमाणाणं सव्वासिमेव किट्टीणं समयाविरोहेण संकंतिणियमदंसणादो।

* जं किट्टिं वेदयदि तिस्से मज्झिमकिट्टीओ उदिण्णाओ।

§ १४० वेदिज्जमाणसंगहकिट्टीए हेट्ठिमोवरिमासंखेज्जभागविसयाओ किट्टीओ मोत्तूण सेसासेसमज्झिमकिट्टिसरूवेण उदयोदीरणाओ पयट्टंति त्ति वुत्तं होई।

---

§ १३९ उक्त क्षपकजीवके वेद्यमान और अवेद्यमान सभी कृष्टियोंके समयके अविरोधपूर्वक संक्रमका नियम देखा जाता है।

*** मात्र वह क्षपक जिस संग्रह कृष्टिका वेदन करता है उसकी मध्यम कृष्टियाँ ही उदीर्ण होती हैं।**

§ १४० उक्त क्षपकके वेद्यमान संग्रह कृष्टिके अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियोंको छोड़कर शेष समस्त मध्यम कृष्टिरूपसे उनके उदय और उदीरणा प्रवृत होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

विशेषार्थ—पहले १६५ (२१८) संख्याके गाथासूत्रका स्पष्टीकरण करनेके प्रसंगसे उसकी १० भाष्यगाथाएँ आई हैं। उनमें 'बंधो व संकमो वा' यह प्रथम भाष्यगाथा है। उसमें स्थितिविशेषोंको ध्यानमें रखकर बन्ध और संक्रमका तथा अनुभागकी अपेक्षा संक्रमका और किन कृष्टियोंकी उदय-उदीरणा होती है इसका विचार किया गया है। इसका विशेष खुलासा करते हुए वीरसेन स्वामीने जो स्पष्टीकरण किया है उसका भाव यह है—

(१) क्षपकश्रेणिमें क्रोधसंज्वलनकी प्रथम कृष्टिके वेदनके समय संज्वलन कषायका बन्ध बार माह प्रमाण ही होता है, इसलिये इससे ज्ञात होता है कि उक्त गाथासूत्रका पूर्वार्ध पृच्छासूत्र ही है। इसी प्रकार इसके संज्वलनकी सत्ता आठ वर्षप्रमाण होती है, इसलिये इसका संक्रम, उदयावलिको छोड़कर शेष सब स्थितियोंका होता है यह निश्चित होता है। उदयावलि सब करणोंके अयोग्य होती है, इसलिये उदयावलि प्रमाण निषेकोंका संक्रम नहीं होता, यह टीकामें स्वीकार किया गया है। यह तो स्थितिबन्ध और स्थितिसंक्रमका विचार है।

(२) अनुभागके विषयमें सूत्रकारका क्या कहना है? उसे स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि संज्वलनकी विवक्षित संग्रह कृष्टिके पूरे अनुभागका संक्रम होनेमें कोई बाधा नहीं आती। जितना भी विवक्षित संग्रह कृष्टिका अनुभाग है उसका समयके अविरोधपूर्वक अपने कालतक संक्रम होता रहता है, यह स्पष्ट है।

(३) मात्र उदय-उदीरणाके विषयमें यह नियम है कि जिस संग्रह कृष्टिकी उदय-उदीरणा होती है उसकी मध्यम अन्तर कृष्टियोके रूपसे ही उदय-उदीरणा होती है, ऐसा यहाँ जानना चाहिये।

§ १४१ एवमेत्तिएण सुत्तपबंधेण[1] पढमभासगाहामस्सियूण ट्ठिदि-अणुभाग-संकमोदीरणाणं मूलगाहासुत्तणिद्दिट्ठाणं पवुत्तिविसेसणिण्णयं कादूण संपहि बिदिय भासगाहाए विहासणं कुणमाणो उवरिमं पबंधमाह—

* एत्तो बिदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

§ १४२ सुगमं ।

* जहा ।

§ १४३ सुगमं ।

* (१६७) संकामेदि उदीरेदि चावि सव्वेहिं ट्ठिदिविसेसेहिं ।
  किट्टीए अणुभागे वेदेंतो मज्झिमो णियमो ॥ २२० ॥

§ १४४ एसा बिदियभासगाहा पढमभासगाहाणिद्दिट्ठस्सेव अत्थविसेसस्स पुणो वि विसेसियूण परूवणट्ठमोइण्णा । तत्थ णिद्दिट्ठाणं ट्ठिदिसंकम-ट्ठिदिउदीरणाणमणुभागोदयस्स च किंचि विसेसियूणेत्थ णिद्देसदंसणादो । ण च एवं संते एदिस्से गाहाए पुणरुत्तभावो आसंकणिज्जो, तत्थापरूविदट्ठिदि-अणुभागोदीरणाणमेत्थ पहाणभावेण

§ १४१ इस प्रकार इतने सूत्रप्रबन्धद्वारा प्रथम भाष्यगाथाका आश्रयकर मूल सूत्रगाथामें निर्दिष्ट स्थिति और अनुभागसम्बन्धी संक्रम और उदीरणाकी प्रवृत्तिविशेषका निर्णय करके अब दूसरी भाष्यगाथाकी विभाषा करते हुए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

* इससे आगे अब दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ।

§ १४२ यह सूत्र सुगम है ।

* जैसे ।

§ १४३ यह सूत्र सुगम है ।

* (१६७) यह क्षपक सर्वस्थितिविशेषोंके द्वारा क्या संक्रम और उदीरणा करता है ? कृष्टिके अनुभागोंका वेदन करता हुआ नियमसे मध्यम कृष्टियोंके अनुभागोंका वेदन करता है ॥ २२० ॥

§ १४४ यह दूसरी भाष्यगाथा, प्रथम भाष्यगाथाद्वारा निर्दिष्ट किये गये अर्थविशेषकी ही फिर भी विशेषरूपसे प्ररूपणा करनेके लिये अवतीर्ण हुई है क्योंकि उसमें कहे गये स्थितिसंक्रम, स्थिति-उदीरणा और अनुभागके उदयका किञ्चित् विशेष करके इस भाष्यगाथामें निर्देश देखा जाता है । और ऐसा होने पर इस भाष्यगाथामें पुनरुक्तपनेका दोष आता है ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि पूर्वकी भाष्यगाथामें नहीं कहे गये स्थिति-अनुभाग और उदीरणाका इस भाष्य-

1. आ० प्रतौ 'एवमेत्तिएण पबंधेण' इति पाठः ।

परूवणोवलंभादो। संपहि एदिस्से गाहाए किंचि अवयवत्थपरूवणं कस्सामो। तं जहा—

§ १४५ 'संकामेदि उदीरेदि चावि' एवं भणिदे किं सव्वेहिं ट्ठिदिविसेसेहिं संकामेदि, उदीरेदि वा, आहो ण सव्वेहिं ति गाहापुव्वद्धे पुच्छाहिसंबंधो; गाहापुव्वद्धस्सेदस्स पुच्छासुत्तभावेण समवट्ठाणदंसणादो। तदो किं सव्वे ट्ठिदिविसेसे संकामेदि उदीरेदि वा, आहो ण, तहा वत्तव्वमिदि। एवंविहो पुच्छाणिद्देसो गाहापुव्वद्धपडिबद्धो त्ति णिच्छेयव्वं। गाहापच्छद्धे 'किट्टीए अणुभागे वेदेंतो णियमा' मज्झिमकिट्टीसरूवेण चेव वेदेदि त्ति सुत्तत्थसंबंधो। एदं च गाहापच्छद्धं णिद्देससुत्तमेव, ण पुच्छासुत्तमिदि पुव्वं व वक्खाणेयव्वं। संपहि एवंविहमेदिस्से गाहाए अत्थविसेसं विहासेमाणो उवरिमं पबंधमाढवेइ—

* विहासा।

§ १४६ सुगमं।

* एसा[1] वि गाहा पुच्छासुत्तं।

§ १४७ सुगमं।

गाथामें प्रधानरूपसे कथन पाया जाता है। अब इस भाष्यगाथाके अवयवोंके किंचित् अर्थकी प्ररूपणा करेंगे। वह जैसे—

§ १४५ 'संकामेदि उदीरेदि चावि' ऐसा कहनेपर क्या सभी स्थितिविशेषोंके द्वारा संक्रम करता है या उदीरणा करता है अथवा सभी स्थितिविशेषोंद्वारा संक्रम और उदीरणा नहीं करता ? इस प्रकार इस भाष्यगाथाके पूर्वार्धमें पृच्छाका सम्बन्ध है क्योंकि इस गाथाके पूर्वार्धका पृच्छासूत्ररूपसे अवस्थान देखा जाता है। इस कारण क्या सभी स्थितिविशेषोंको संक्रमित करता है और उदीरित करता है अथवा नहीं करता है, इस प्रकार कहना चाहिये। इस प्रकार पृच्छाका निर्देश गाथाके पूर्वार्धमें प्रतिबद्ध है, ऐसा निश्चय करना चाहिये। गाथाके उत्तरार्धमें कृष्टिके अनुभागोंको वेदन करता हुआ नियमसे मध्यम कृष्टिरूपसे ही वेदन करता है इस प्रकार सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है। और इस प्रकार इस भाष्यगाथाका उत्तरार्ध निर्देशसूत्र ही है, पृच्छासूत्र नहीं, इस प्रकार पहलेके समान व्याख्यान करना चाहिये। अब इस प्रकार इस भाष्यगाथाके अर्थको विभाषा करते हुए आगेके प्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

* अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है।

§ १४६ यह सूत्र सुगम है।

* यह भाष्यगाथा भी पृच्छासूत्र है।

§ १४७ यह सूत्र सुगम है।

---

१. आ॰प्रतौ 'एसो' इति पाठः।

* किं सव्वे ट्ठिदिविसेसे संकामेदि उदीरेदि वा, आहो ण वत्तव्वं।

§ १४८ सुगमं।

* आवलियपविट्ठं मोत्तूण सेसाओ सव्वाओ ट्ठिदीओ संकामेदि उदीरेदि च।

§ १४९ सुगमं।

* जं किट्टिं वेदेदि तिस्से मज्झिमकिट्टीओ उदीरेदि।

§ १५० गयत्थमेदं पि सुत्तं। एवं बिदियभासगाहाए अत्थविहासा समत्ता।

* एत्तो तदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा।

§ १५१ सुगमं।

* जहा।

§ १५२ सुगमं।

* (१६८) ओकड्डदि जे अंसे से काले किण्णु ते पवेसेदि।
ओकड्डिदे च पुव्वं सरिसमसरिसे पवेसेदि ॥ २२१ ॥

---

* क्या सभी स्थितिविशेषोंको संक्रमित और उदीरित करता है अथवा नहीं ? इसे कहना चाहिये।

§ १४८ यह सूत्र सुगम है।

* उदयावलिमें प्रविष्ट हुई स्थितिको छोड़कर शेष सब स्थितियोंको संक्रमित करता है और उदीरित करता है।

§ १४९ यह सूत्र सुगम है।

* तथा वह क्षपक जिस संग्रह कृष्टिका वेदन करता है उसकी मध्यम कृष्टियोंको उदीरित करता है।

§ १५० यह सूत्र गतार्थ है। इस प्रकार दूसरी भाष्यगाथाकी अर्थविभाषा समाप्त हुई।

* यहाँ से आगे अब तीसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं।

§ १५१ यह सूत्र सुगम है।

* जैसे।

§ १५२ यह सूत्र सुगम है।

* (१६८) यह क्षपक जिन कर्मप्रदेशोंका अपकर्षण करता है वह क्या उन कर्मप्रदेशोंको तदनन्तर समयमें उदीरणाद्वारा प्रवेशक होता है ? जिन कर्मप्रदेशोंका पहले समयमें अपकर्षण किया है उनका सदृश अथवा असदृशरूपसे उदीरणा द्वारा प्रवेशक होता है ॥२२१॥

§ १५३ एसा तदियभासगाहा पुव्वद्धेण ट्ठिदीहिं अणुभागेहिं वा ओकड्डिदाणं कम्मपदेसाणमोकड्डिदाणंतरसमये चेव किमुदीरणाए अत्थि संभवो आहो णत्थि त्ति एवंविहस्स अत्थविसेसस्स पुच्छादुवारेण णिण्णयविहाणट्ठमोइण्णा। पच्छद्धेण च तहोदीरिज्जमाणाणं तेसिं पदेसग्गाणं किमेयवग्गणायारेण परिणमिय सव्वेसिं सरिस-भावेणुदीरणा पयट्ठदि त्ति आहो णाणावग्गणसरूवेण विसरिसभावेणुदीरणापरिणामो त्ति एदस्स अत्थविसेसस्स फुडीकरणट्ठमोइण्णा त्ति दट्ठव्वा। एत्थ गाहापुव्वद्धे अवयवत्थपरूवणा सुगमा। पच्छद्धे एवं पुच्छाहिसंबंधो कायव्वो—'ओकड्डिदे च पुव्वं' अणंतरपुव्विल्लसमये ओकड्डिदे पदेसग्गे पुणो से काले उदीरेमाणो किं सरिसं पवेसेदि आहो असरिसभावेण पवेसेदि त्ति।

§ १५४ एत्थ सरिसासरिसपदाणमत्थविणिण्णयमुवरि चुण्णिसुत्तसंबंधेणेव कस्सामो। तदो किट्टीखवगो जाणि कम्माणि ट्ठिदीहिं वा अणुभागेहिं वा ओकड्डदि से काले किं पुण ताणि ओकड्डियूण उदयं पवेसेदि आहो ण पवेसेदि? पवेसेमाणो च अणंतरपुव्विल्लसमयम्मि ओकड्डिदाणि ताणि किमणुभागेण सरिसाणि पवेसेदि आहो विसरिसाणि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसंगहो। संपहि एवमेदीए गाहाए पुच्छिदत्थविसये णिच्छयजणणट्ठमुवरिमं विहासागंथमाढवेइ—

---

§ १५३ यह तीसरी भाष्यगाथा अपने पूर्वार्धके द्वारा स्थितियों और अनुभागोंकी अपेक्षा कर्मप्रदेशोंको अनन्तर समयमें ही क्या उदीरणा सम्भव है या उदीरणा सम्भव नहीं है? इस प्रकारके अर्थविशेषका पृच्छा द्वारा निर्णयका कथन करनेके लिये अवतरित हुई है तथा उत्तरार्ध द्वारा उस प्रकार से उदीरित होनेवाले उन प्रदेशोंका क्या एक वर्गणारूपसे परिणमन करके सभी की सदृशरूपसे उदीरणा प्रवृत्त होती है या नाना वर्गणारूपसे (परिणमन करके) विसदृशरूपसे उदीरणापरिणाम होता है? इस प्रकार इस अर्थविशेषका स्पष्टीकरण करनेके लिये [यह गाथा] अवतरित हुई है, ऐसा यहाँ जानना चाहिये। यहाँ इस गाथाके पूर्वार्धमें आये हुए अवयवोंके अर्थकी प्ररूपणा सुगम है। उत्तरार्ध में पृच्छाका इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिये—'ओकड्डिदे च पुव्वं' अर्थात् जिन प्रदेशोंका अनन्तर पूर्व समयमें अपकर्षण किया था उन अपकर्षित कर्मप्रदेशोंकी पुनः तदनन्तर समयमें उदीरणा करनेवाला जीव उनको क्या सदृशरूपसे प्रवेश कराता है या असदृशरूपसे प्रवेश कराता है?

§ १५४ यहाँपर सदृश और असदृश पदोंका निर्णय आगे चूर्णिसूत्रके सम्बन्धसे ही करेंगे। इसलिये कृष्टियोंकी क्षपणा करनेवाला जीव जिन कर्मोंको स्थितियों और अनुभागोंके द्वारा अपकर्षित करता है क्या तदनन्तर समयमें पुनः उनका अपकर्षण करके उनको उदयमें प्रवेश करता है या प्रवेश नहीं करता है? और प्रवेश कराता हुआ अनन्तर पूर्व समयमें क्या अपकर्षित किये गये उन कर्म-परमाणुओंको क्या अनुभागके द्वारा सदृश ही प्रवेश कराता है या क्या विसदृश उन कर्म परमाणुओं-को प्रवेश कराता है यह यहाँ सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है। इस प्रकार इस गाथा द्वारा पूछे गये अर्थ-के विषयमें निर्णय करनेके लिये आगेके विभाषाग्रन्थको आरम्भ करते हैं—

* विहासा।

§ १५५ सुगमं ।

* एसा वि गाहा पच्छासुत्तं ।

§ १५६ सुगमं । संपहि किमेसा गाहा पुच्छदि त्ति आसंकाए इदमाह—

* ओकड्डदि जे अंसे से काले किण्णु ते पवेसेदि अहो ण? वत्तव्वं—

§ १५७ गाहापुव्वद्धे पुच्छाहिसंबंधो एवं कायव्वो त्ति वुत्तं होइ। संपहि एवं पुच्छिदत्थविसये णिण्णयविहाणट्ठमिदमाह—

* पवेसेदि ओकड्डिदे च पुव्वमणंतरपुव्वगेण ।

§ १५८ अणंतरपुव्विल्लसमयम्मि ओकड्डिदे कम्मपदेसे से काले चेव पवेसेदुमत्थि संभवो, ण तत्थ पडिसेहो त्ति वुत्तं होइ। एदेण उक्कड्डिदस्स पदेसग्गस्स जहा आवलियमेत्तकालं णिरुवक्कमभावेणावट्ठाणणियमो, ण एवमोकड्डिदस्स पदेसग्गस्स, किंतु ओकड्डिदविदियसमये चेव पुणो ओकड्डियूण पवेसेदुमेदस्स संभवो अत्थि त्ति जाणाविदं।

---

* अब इस भाष्यगाथाकी विभाषाकी जाती है।

§ १५५ यह सूत्र सुगम है।

* यह भाष्यगाथा भी पृच्छासूत्र है।

§ १५६ यह सूत्र सुगम है। अब इस गाथामें क्या पूछा गया है ऐसी आशंका होनेपर यह आगेका सूत्र कहते हैं—

* जिन कर्म परमाणुओंको अपकर्षित करता है अनन्तर समयमें उन्हें क्या प्रविष्ट करता है या नहीं प्रविष्ट करता है? कहते हैं—

§ १५७ भाष्यगाथाके पूर्वार्धमें पृच्छाका सम्बन्ध इस प्रकार करना चाहिये, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इस प्रकार पूछे गये अर्थके विषयमें निर्णयका विधान करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

* पूर्व समयमें अपकर्षित करनेपर उससे अनन्तर समयमें प्रवेश कराना शक्य है।

§ १५८ अनन्तर पूर्व समयमें अपकर्षित किये गये कर्मप्रदेशोंका तदनन्तर समयमें ही प्रवेश कराना सम्भव है, इस विषयमें प्रतिषेध नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इससे ज्ञात होता है कि उत्कर्षित किये गये प्रदेशपुंजका जिस प्रकार एक आवलिकाल तक निरुपक्रमरूपसे रहनेका नियम है उस प्रकार अपकर्षित किये गये प्रदेशपुंजका यह नियम नहीं है। किन्तु अपकर्षित करनेके

---

१. ओकड्डिदस्स आ० प्रति।

एत्थ 'अणंतरपुव्वगेणे' त्ति भणिदे अणंतरपुव्विल्लसमयम्मि ओकड्डिदे कम्मपदेसे त्ति अत्थो गहेयव्वो; सत्तमीए अत्थे तदियविहत्तिणिद्देसावलंबणादो। संपहि सरिसासरिसपदाणमत्थणिण्णयं कादूण गाहापच्छद्धं विहासेमाणो उवरिमं पबंधमाढवेइ—

* सरिसमसरिसे त्ति णाम का सण्णा ?

§ १५९ किं पेक्खियूण सरिसत्तमसरिसत्तं वा इह विवक्खियमिदि पुच्छिदं होदि। संपहि एदिस्से पुच्छाए णिण्णयविहाणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

* जदि जे अणुभागे उदीरेदि एक्किस्से वग्गणाए सव्वे ते सरिसा णाम। अध जे उदीरेदि अणेगासु वग्गणासु, ते असरिसा णाम।

§ १६० एवं—

§ १६१ भणिदस्साहिप्पाओ—उदयम्मि णिवदमाणाओ अणंताओ किट्टीओ सव्वाओ चेव जइ एगकिट्टीसरूवेण परिणमिय उदयमागच्छंति तो तासिं सरिससण्णा होदि। अध अणंतकिट्टीओ ओकड्डियूणुदयम्मि पदिदपरमाणू जइ अणंतकिट्टीसरूवेण होदूण चिट्ठंति तदो ते असरिसा णाम भण्णंति, अणेयवग्गणायारेण परिणदत्तादो त्ति। एवमेदेण सुत्तेण सरिसासरिसपदाणमत्थं जाणाविय संपहि एदेसु दोसु वियप्पेसु

दूसरे समयमें ही पुनः अपकर्षित करके इसका प्रवेश कराना सम्भव है ऐसा यहाँ ज्ञान कराया गया है। यहाँ 'अणंतरपुव्वगेण' ऐसा कहनेपर अनन्तर पूर्व समयमें कर्मप्रदेशोंके अपकर्षित करनेपर यह अर्थ ग्रहण करना चाहिये क्योंकि सप्तमी विभक्तिके अर्थमें तृतीया विभक्तिके निर्देशका इस पदमें अवलम्बन लिया गया है। अब सदृश और असदृश पदोंके अर्थका निर्णय करके गाथाके उत्तरार्धकी विभाषा करते हुए आगेके प्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

* सदृश और असदृश इस नामकी संज्ञाका क्या अर्थ है ?

§ १५९ सदृशपना या असदृशपना क्या देखकर प्रकृतमें विवक्षित है, यह पूछा गया है? अब इस पृच्छाका निर्णय करनेके लिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

* यदि एक वर्गणाके रूपमें जिन अनुभागोंकी उदीरणा करता है उन सबकी सदृश संज्ञा है। तथा अनेक वर्गणाओंके रूपमें जिन अनुभागोंकी उदीरणा करता है उनकी असदृश संज्ञा है।

§ १६० इस प्रकार—

§ १६१ कहनेवालेका यह अभिप्राय है—उदयमें प्राप्त होनेवाली अनन्त कृष्टियाँ यदि सभी कृष्टियाँ एक कृष्टिरूपसे परिणमन करके उदयको प्राप्त होती हैं तो उनकी सदृश संज्ञा होती है। तथा यदि अनन्त कृष्टियोंको अपकर्षित करके उदयको प्राप्त हुए परमाणु यदि अनन्त कृष्टिरूप होकर स्थित रहते हैं तब वे असदृश संज्ञावाले कहे जाते हैं, क्योंकि वे अनेक वर्गणारूपसे परिणत हुए हैं। इस प्रकार इस सूत्र द्वारा सदृश और असदृश पदोंका ज्ञान कराकर अब इन

[illegible] [illegible] किट्टीणमुदीरणा पयट्टदि, किं सरिसभावेण आहो विसरिसभावेणे त्ति आसंकाए उत्तरमाह—

* एदीए सण्णाए से काले जे पवेसेदि ते असरिसे पवेसेदि[1] ।

§ १६२ एदीए अणंतरपरूविदाए सण्णाए पयदत्थणिण्णये कीरमाणे से काले जे अणुभागे पवेसेदि, ते णियमा असरिसे चेव पवेसेदि त्ति घेत्तव्वं । उदयम्मि संछुद्धाणंतकिट्टीणमणुभागो एगअंतरकिट्टीसरूवो ण होदि, किंतु अणंतकिट्टीसरूवो होदूण अच्छदि त्ति भणिदं होदि । एत्थ से काले त्ति भणिदे ओकड्डिदाणंतरविदियसमये चेवेत्ति भणिदं होदि ।

दोनों विकल्पोंमें किस प्रकारसे कृष्टियोंकी उदीरणा प्रवृत्त होती है, क्या सदृशरूपसे या विसदृश-रूपसे ऐसी आशंका होनेपर उत्तर कहते हैं—

* **इस संज्ञाके अनुसार अनन्तर समयमें जिन कृष्टियोंको उदयमें प्रविष्ट करता है उन्हें असदृश ही प्रविष्ट करता है ।**

§ १६२ इस अनन्तर कही गई संज्ञाके अनुसार प्रकृत अर्थका निर्णय करने पर अनन्तर समयमें जिन अनुभागोंको प्रविष्ट करता है उनको नियमसे असदृश ही प्रविष्ट करता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये । उदयको प्राप्त अनन्त कृष्टियोंका अनुभाग एक अन्तरकृष्टिस्वरूप नहीं होता, किन्तु अनन्त कृष्टिस्वरूप होकर रहता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । प्रकृतमें 'से काले' ऐसा कहने पर 'अपकर्षित करनेके अनन्तर दूसरे समयमें ही' यह कहा गया है ।

विशेषार्थ—इस भाष्यगाथामें बतलाया गया है कि जिन कृष्टियोंका अपकर्षण होता है उनका अनन्तर समयमें क्या उदय-उदीरणारूपसे परिणमन होता है या नहीं होता है । यदि इस रूपसे परिणमन होता है, तो वह सदृशरूपसे परिणमन होकर उदय-उदीरणा होती है या विसदृशरूपसे परिणमनकर उदय-उदीरणा होती है । उत्कर्षणके लिये तो यह नियम है कि जिन कर्मपरमाणुओंका स्थिति और अनुभागरूपसे उत्कर्षण होता है वे एक आवलि कालतक तदवस्थ रहते हैं किन्तु जिनका अपकर्षण होता है उनका दूसरे समयमें ही उदयरूप होना सम्भव है । इस नियमके अनुसार यहाँ यह प्रश्न है कि जिन अनन्त अवान्तर कृष्टियोंका अपकर्षण होता है वे क्या अनन्तर समयमें एक कृष्टिरूपसे परिणमकर अवस्थित रहते हैं या क्या अनन्तर कृष्टिरूपसे परिणमकर वे अवस्थित रहते हैं । यह एक प्रश्न है । इसका समाधान करते हुए चूर्णिसूत्रमें बतलाया है कि जिन अनन्त अवान्तर कृष्टियोंका यह जीव अपकर्षण करता है वे अगले समयमें अनन्त कृष्टिरूपसे ही अवस्थित रहती हैं ।

---

१. पवेसे आ० ।

§ १६३ एवमेत्तिएण विहासागंथेण तदियभासगाहं विहासिय संपहि चउत्थ-भासगाहाए जहावसरपत्तमत्थविहासणं कुणमाणो इदमाह—

* एत्तो चउत्थीए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

§ १६४ सुगमं ।

* तं जहा ।

§ १६५ सुगमं ।

* (१६९) उक्कड्डदि जे अंसे से काले किण्णु ते पवेसेदि ।
उक्कड्डिदे च पुव्वं सरिसमसरिसे पवेसेदि ।। २२२ ।।

§ १६६ जहा ओकड्डणमस्सियूण पुव्विल्लगाहाए अवयवत्थपरामरसो कदो, तहा चेव एत्थ वि उक्कड्डणासंबंधेण कायव्वो; विसेसाभावादो । संपहि एसा वि गाहा पुच्छासुत्तमेवेत्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

* एदं पुच्छासुत्तं ।

---

§ १६३ इस प्रकार इतने विभाषाग्रन्थके द्वारा तीसरी भाष्यगाथाकी विभाषा करके अब चौथी भाष्यगाथाकी यथावसर प्राप्त विभाषा करते हुए इस सूत्रको कहते हैं—

* इससे आगे चौथी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ।

§ १६४ यह सूत्र सुगम है ।

* वह जैसे ।

§ १६५ यह सूत्र सुगम है ।

* (१६९) यह क्षपकजीव जिन कर्मपरमाणुओंका उत्कर्षण करता है क्या वह अनन्तर समयमें उन कर्मपरमाणुओंको उदीरणा द्वारा प्रविष्ट करता है ? पूर्व समयमें उत्कर्षित करने पर उनकी उदीरणा करता हुआ सदृशरूपसे प्रविष्ट करता है या असदृशरूपसे प्रविष्ट करता है । ।। २२२ ।।

§ १६६ जिस प्रकार अपकर्षणका परामर्श किया उसी प्रकार प्रकृतमें भी उत्कर्षणके सम्बन्धसे परामर्श कर लेना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । अब यह गाथा भी पृच्छा-सूत्र ही है इस बातका ज्ञान करानेके लिये चूर्णिसूत्रको कहते हैं—

* यह पृच्छासूत्र है ।

---

१. उक्कस्सेण आ० ।

§ १६७ सुगमं। संपहि एदीए गाहाए पुच्छिदत्थस्स किट्टीवेदगम्मि णत्थि चेव संभवो त्ति पदुप्पायणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

* एदिस्से गाहाए किट्टीकरणप्पहुडि णत्थि अत्थो।

§ १६८ किं कारणं? उक्कड्डणाकरणस्स एदम्मि विसये अच्चंतासंभवेण पडिसिद्धत्तादो, तम्हा उक्कड्डणाए संभवे संते उक्कड्डिदस्स पदेसग्गस्स से काले चेव किमोकड्डियूण पवेसेदुमत्थि संभवो आहो णत्थि त्ति एवंविहो विचारो पयट्टदे। एत्थ पुण उक्कड्डणाए चेव अच्चंताभावेण पयदविचारस्साणवसरो चेवेत्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसब्भावो। संपहि एदस्सेवत्थस्स फुडीकरणट्ठमुत्तरसुत्तणिद्देसो।

* हंदि किट्टीकारगो किट्टीवेदगो वा ट्ठिदि-अणुभागे ण उक्कड्डदि त्ति।

§ १६९ हंदि वियाण णिश्चिनु किट्टीकारगो किट्टीवेदगो वा ट्ठिदि-अणुभागे उक्कड्डिदूणुवरि ण संछुहदि त्ति। कुदो एस णियमो चे? खवगपरिणामाण-मेत्थ तणाणंतविरुद्धसरूवेणावट्ठाण-णियमदंसणादो। जो पुण किट्टीकम्मंसियवदिरित्तो

---

§ १६७ यह सूत्र सुगम है। अब इस गाथाद्वारा पूछे गये अर्थका कृष्टिवेदकके विषयमें किसी प्रकारके भी प्रयोजनकी सम्भावना नहीं है इस बातका कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

* इस गाथाके [अर्थका] कृष्टिकरण प्रकरणसे लेकर कोई प्रयोजन नहीं है।

§ १६८ शंका—इसका क्या कारण है?

समाधान—उत्कर्षणाकरण कृष्टिकरणके विषयमें अत्यन्त असम्भव है, इसलिये वह यहाँ प्रतिषिद्ध है। इस कारण उत्कर्षणके सम्भव होने पर उत्कर्षित किये गये प्रदेशपुंजका तदनन्तर समयमें ही क्या अपकर्षण करके उनका प्रवेश कराना क्या सम्भव है या उनका प्रवेश कराना सम्भव नहीं है? इस तरह ऐसा विचार ख्यालमें आता है। परन्तु यहाँ पर उत्कर्षणका ही अत्यन्त अभाव होनेसे प्रकृत विचारका अवसर ही नहीं है यह यहाँ इस सूत्रका अर्थके साथ सद्भाव है। अब इसी अर्थको स्पष्टकरनेके लिये आगेके सूत्रका निर्देश करते हैं—

* खेद है! कि कृष्टिकारक और कृष्टिवेदक स्थिति और अनुभागका उत्कर्षण नहीं करता।

§ १६९ 'हंदि' यह जानो और निश्चय करो कि कृष्टिकारक और कृष्टिवेदक स्थिति और अनुभागका उत्कर्षण करके उन्हें ऊपर नहीं संक्रमित करता है।

शंका—यह नियम क्यों है?

समाधान—क्योंकि यहाँ सम्बन्धी क्षपक परिणामोंके [उत्कर्षणके] अत्यन्त विरुद्ध स्वभावरूपसे अवस्थानका नियम देखा जाता है। परन्तु जो कृष्टिकर्मांशिकसे भिन्न जीव है उसके इस

तत्थ एसो अत्थविचारो पयट्टदि तस्सुक्कड्डणाए पडिसेहाभावादो। सो च पुव्वमेव सुविचारिदो त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

*** जो किट्टीकम्मंसियवदिरित्तो जीवो तस्स एसो अत्थो पुव्वं परूविदो**

§ १७० गयत्थमेदं सुत्तं; ओवट्टणचरिममूलगाहासंबंधेणेदस्स अत्थस्स पुव्वमेव सुविचारिदत्तादो। जइ एवं एसा गाहा णाढवेयव्वा एदम्मि विसये असंभवदोसदूसियत्तादो त्ति णासंका कायव्वा; तदसंभवस्सेव फुडीकरणट्ठमेदिस्से गाहाए अवयारस्स साफल्लदंसणादो। तम्हा ओकड्डणसंबंधेणुक्कड्डणाए वि संभवासंभवणिण्णयविहाणट्ठमेसा गाहा समोइण्णा त्ति ण किंचि विप्पडिसिद्धं।

प्रकारके अर्थका विचार प्रवृत्त होता है, क्योंकि उस जीवके उत्कर्षण होनेका निषेध नहीं है। और उसका पहले ही अच्छी तरहसे विचार कर आये हैं। इसप्रकार इस अर्थका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** जो कृष्टिकर्मांशिकसे अतिरिक्त जीव है उसके इस अर्थका पहले ही कथन कर आये हैं।**

§ १७० यह सूत्र गतार्थ है, क्योंकि अपवर्तनासम्बन्धी अन्तिम मूल गाथाके सम्बन्धसे इस अर्थका पहलेही अच्छी तरह विचार कर आये हैं।

शंका—यदि ऐसा है तो यह गाथा आरम्भ नहीं की जानी चाहिये, क्योंकि इस विषयमें यह गाथा असम्भव दोषसे दूषित हो जाती है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि उत्कर्षण प्रकृतमें असम्भव है, उसको स्पष्ट करनेके लिये ही इस गाथाके अवतारको सफलता देखी जाती है। इसलिये अपकर्षणके सम्बन्धसे उत्कर्षणके भी सम्भव होने और सम्भव न होनेरूप निर्णयका विधान करनेके लिये यह गाथा अवतीर्ण हुई है, इसलिये प्रकृतमें कुछ भी निषेधयोग्य नहीं है।

विशेषार्थ—पहले मूल गाथा १११ (१६४) में यह स्पष्ट कर आये हैं कि अनिवृत्तिकरणमें जब यह जीव अनुभागकी अपेक्षा चारों संज्वलनोंकी कृष्टियोंकी रचना करता है और उनका वेदन करता है तब उन दोनों अवस्थाओंमें इसके अपकर्षण ही होता है, उत्कर्षण नहीं होता। ऐसी अवस्थामें प्रकृतमें 'उक्कड्डदि जे अंसे' यह गाथा नहीं कही जानी थी, क्योंकि कृष्टियोंके वेदन कालके समय इस गाथामें प्रतिपादित विषयका प्रकृतमें कोई प्रयोजन नहीं देखा जाता। यह एक शंका है, इसका समाधान करते हुए बतलाया है कि प्रकृतमें इस गाथामें प्रतिपादित विषयकी सम्भावना है या नहीं, इस बातको स्पष्ट करनेके लिये यहाँ इस गाथाका अवतार हुआ है। और निष्कर्षरूपमें यह बतलाया गया है कि इस अवस्थामें प्रतिपादित विषयका प्रकृतमें कोई प्रयोजन नहीं है।

§ १७१ एवमेदिस्से चउत्थभासगाहाए अत्थविहासणमुवसंहरिय संपहि जहावसरपत्ताए पंचमीए भासगाहाए अत्थविहासणं कुणमाणो तदवसरकरणट्ठमिदमाह—

* एत्तो पंचमी भासगाहा ।

§ १७२ सुगमं ।

* (१७०) बंधो व संकमो वा उदयो वा तह पदेसु अणुभागे ।
बहुगं ते थोवं जे जहेव पुव्वं तहेवेण्हिं[1] ॥२२३॥

§ १७३ एसा पंचमी भासगाहा किट्टीवेदगस्स खवगस्स पदेसाणुभागविसय-बंधोदयसंकमाणं समयं पडि पवुत्तिविसेसस्स सत्थाणप्पाबहुअविहिणा परूवणट्ठमोइण्णा। तत्कथमिति चेत् ? इदमेव विवृण्महे—'बंधो व संकमो वा' एवं भणिदे बंध-संकमोदया पदेसाणुभागविसया समयं पडि कथं पयट्टंति, किं ताव पदेसविसये असंखेज्जगुणवड्ढी-हाणिसरूवेण अण्णहा वा पयट्टंति, अणुभागविसये वि किमणंतगुण-हाणीए वड्ढीए अण्णहा वा त्ति गाहापुव्वद्धे सुत्तत्थसंबंधो। संपहि एवं पुच्छिदत्थविसये णिण्णयकरणट्ठं गाहापच्छद्धो समोइण्णो 'बहुगं ते थोवं ते' इच्चादि। बहुत्ते वा

---

§ १७१ इस प्रकार इस चौथी भाष्यगाथाके अर्थकी विभाषाका उपसंहार करके अब यथाव-सर प्राप्त पाँचवीं भाष्यगाथाके अर्थकी विभाषा करते हुए उसका अवसर [प्रारम्भ] करनेके लिये इस सूत्रको प्रारम्भ करते हैं—

* इससे आगे पाँचवीं भाष्यगाथा आई है ।

§ १७२ यह सूत्र सुगम है ।

* (१७०) कृष्टिवेदकके प्रदेश और अनुभागविषयक बन्ध, संक्रम और उदय इनका बहुत्व या स्तोकत्व जिसप्रकार पहले अर्थात् संक्रामक-प्रस्थापकके कहा है उसी प्रकार इस समय कहना चाहिये ॥ २२३ ॥

§ १७३ यह पाँचवीं भाष्यगाथा कृष्टिवेदक क्षपकके प्रदेश और अनुभागविषयक बन्ध, उदय और संक्रमसम्बन्धी प्रवृत्तिविशेषकी प्रतिसमय स्वस्थान अल्पबहुत्वविधिसे प्ररूपणा करनेके लिये आई है।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—आगे इसका विवरण प्रस्तुत करते हैं—'बंधो व संकमो वा' ऐसा कहने पर प्रदेश और अनुभागविषयक बन्ध, संक्रम और उदय प्रतिसमय किस प्रकार प्रवृत्त होते हैं क्या प्रदेशोंके विषयमें असंख्यात गुणवृद्धिरूपसे प्रवृत्त होते हैं या असंख्यात गुणहानिरूपसे प्रवृत्त होते हैं या अन्यथा प्रवृत्त होते हैं ? अनुभागके विषयमें भी क्या अनन्तगुणहानिरूपसे प्रवृत्त होते हैं या अनन्तगुणवृद्धिरूपसे प्रवृत्त होते हैं या अन्यथा प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार गाथाके पूर्वार्धमें सूत्रका

---

१. तहेवेहिं आ० ।

स्तोकत्वे वा निर्द्धार्य्ये यथापूर्वं तथैवेदानीमपि बंधोदयसंक्रमाः प्रदेशानुभागविषयाः प्रतिपत्तव्या इत्युक्तं भवति ।

§ १७४ एदस्स भावत्थो-किट्टीकरणादो पुव्वावत्थाए जहा संकामणपट्ठवग-चउत्थमूलगाहमस्सियूण तीहिं भासगाहाहिं पदेसाणुभागविसयाणं बंधोदयसंकमाणं सत्थाणविसेसिदं थोवबहुत्तमणुमग्गिदं तहेव एण्हि पि अणुमग्गियव्वं, ण एत्थ कोवि विसेससंभवो अत्थि त्ति वुत्तं होइ। संपहि एदस्सेव सुत्तत्थस्स फुडीकरणट्ठमुवरिमं विहासागंथमाढवेइ—

* विहासा ।

§ १७५ सुगमं ।

* तं जहा ।

§ १७६ सुगमं ।

* संकमणे च चत्तारि मूलगाहाओ, तत्थ जा चउत्थी मूलगाहा, तिस्से तिण्णि भासगाहाओ तासिं जो अत्थो सो इमिस्से वि पंचमीए गाहाए अत्थो कायव्वो ।

अर्थके साथ सम्बन्ध है। अब इसी प्रकार पूछे गये अर्थके विषयमें निश्चयको उत्पन्न करनेके लिये गाथाका उत्तरार्ध अवतीर्ण हुआ है—'बहुअं ते थोवं ते' इत्यादि। बहुत्वका या स्तोकत्वका निर्धारण करने पर जिस प्रकार पहले प्रदेश और अनुभागविषयक बन्ध, उदय और संक्रमका कथन कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ जानना चाहिये, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

§ १७४ इसका भावार्थ—कृष्टिकरणसे पहलेकी अवस्थामें जिसप्रकार संक्रामण प्रस्थापकके चौथी मूलगाथा (९४-१४७) का आश्रयकर तीन भाष्यगाथाओंके द्वारा प्रदेश और अनुभागविषयक बन्ध, उदय और संक्रमका स्वस्थान विशेषतासे युक्त अर्थात् स्वस्थान-सम्बन्धी अल्पबहुत्वका अनुमार्गण किया उसी प्रकार इस समय भी अनुमार्गण कर लेना चाहिये। यहाँ पर उक्त स्थानसे कोई विशेष सम्भव नहीं है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इसी सूत्रके स्पष्टीकरणके लिये विभाषाग्रन्थको आरम्भ करते हैं—

* अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा करते हैं।

§ १७५ यह सूत्र सुगम है।

* वह जैसे।

§ १७६ यह सूत्र सुगम है।

* संक्रामक प्रस्थापकके विषयमें चार मूल गाथायें हैं। उनमें जो चौथी मूल-गाथा है उसकी तीन भाष्यगाथायें हैं। उनका जो अर्थ है वह इस पाँचवीं गाथाका भी अर्थ करना चाहिये।

§ १७७ एदस्स सुत्तस्सत्थो—'बंधो व संकमो वा उदओ वा किं सगे सगे ट्ठाणे' एसा संकमणपट्ठवगस्स चउत्थी मूलगाहा। एदिस्से तिण्णि भासगाहाओ। ताओ कदमाओ त्ति वुत्ते 'बंधोदयेहिं णियमा' एसा पढमा भासगाहा, 'गुणसेढि-असंखेज्जा च पदेसग्गेण' एसा बिदियभासगाहा, 'गुणदो अणंतगुणहीणं वेदयदे' एसा तदियभासगाहा। एवमेदासिं तिण्हं भासगाहाणं संकामगे जो अत्थो पुव्वं परूविदो सो चेव णिरवसेसो इमिस्से पंचमीए भासगाहाए अत्थो कायव्वो। जहा तत्थ अणुभागं पदेसग्गं च समस्सियूण बंधोदयसंकमाणमप्पाबहुअं भणिदं, तहा चेव एत्थ वि णिरवयवं वत्तव्वमिदि वुत्तं होइ। तदो पंचमीए भासगाहाए अत्थविहासा समत्ता।

---

§ १७७ अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं—'बंधो व संकमो वा उदओ वा किं सगे सगे ट्ठाणे। (९४-१४७) यह संक्रमण प्रस्थापककी चौथी मूलगाथा है। इसकी तीन भाष्यगाथाएँ हैं। वे कौन हैं? ऐसा कहने पर 'बंधोदयेहिं णियमा (९५-१४८) यह प्रथम भाष्यगाथा है; 'गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण' यह दूसरी भाष्यगाथा है तथा 'गुणदो अणंतगुणहीणं वेदयदे' यह तीसरी भाष्यगाथा है। इस प्रकार इन तीनों भाष्यगाथाओंका संक्रमकप्रस्थापकके विषयमें जो अर्थ पहले प्ररूपितकर आये हैं वही पूरा इस पाँचवी भाष्यगाथाका अर्थ करना चाहिये। तथा जिस प्रकार अनुभाग और प्रदेश-पुंजका आश्रय करके बन्ध, उदय और संक्रमका अल्पबहुत्व कहा है उसी प्रकार यहाँ पर भी भेदके बिना कहना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है। तत्पश्चात् पाँचवीं भाष्यगाथाको अर्थसम्बन्धी विभाषा समाप्त हुई।

विशेषार्थ—संक्रामक प्रस्थापकके बन्ध, संक्रम और उदय अपने-अपने स्थानमें अनन्तर-अनन्तर कालकी अपेक्षा क्या अधिक हैं, हीन हैं या समान हैं? यह मूल गाथा (९४-१४७) में जाननेकी पृच्छा की गई है। आगे इन तीन भाष्यगाथाओं द्वारा उक्त पृच्छाका समाधान किया गया है। इसका समाधान करते हुए प्रथम भाष्यगाथा (९५-१४८) में बतलाया है कि संक्रामक-प्रस्थापकके प्रथम समयमें जो अनुभागबन्ध होता है तदनन्तर समयमें वह अनन्तगुणाहीन होता है। इसी प्रकार प्रतिसमय जानना चाहिये। उदयके विषयमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये। संक्रमके विषयमें यह व्यवस्था है कि जितने कालमें एक अनुभागकाण्डकका उत्कीरण करता है तब-तक वह उतने उतने ही अनुभागका संक्रम करता है। उसके बाद अन्य अनुभागकाण्डकका प्रारम्भ करने पर उसके काल तक उसे भी प्रतिसमय समानरूपसे अनन्तगुणेहीन-अनन्तगुणेहीन अनुभागका संक्रम करता है। आगे दूसरी भाष्यगाथा (९६-१४९) में बतलाया है कि प्रथम समयमें जितना प्रदेश उदय होता है, उससे दूसरे समयमें असंख्यातगुणे प्रदेशोंका उदय होता है। इसीप्रकार आगे-आगेके समयोंमें जानना चाहिये। प्रदेश-उदयके समान संक्रमकी भी प्ररूपणा जाननी चाहिये। प्रदेश बन्धके विषयमें यह नियम है कि वह चार वृद्धि, चार हानि और अवस्थानरूपसे भजनीय है। तीसरी भाष्यगाथा (९७-१५०) में जो बात कही गई है वह प्रथम भाष्यगाथामें ही प्ररूपित की जा चुकी है, इसलिये उस सम्बन्धमें कोई विशेष व्याख्यान नहीं है। संक्रामकप्रस्थापककी अपेक्षा यह जितना भी कथन है वह सब कृष्टियोंकी क्षपणामें प्रवृत्त हुए जीवके भी जानना चाहिये, यह इस पाँचवीं भाष्यगाथाका समुच्चयरूप अर्थ है।

§ १७८ संपहि जहावसरपत्ताए छट्ठभासगाहाए[1] अत्थविहासणट्ठमिदमाह—

* एत्तो छट्ठी भासगाहा।

§ १७९ सुगमं।

* (१७१) जो कम्मंसो पविसदि पओगसा तेण णियमसा अहिओ।
पविसदि ठिदिक्खएण दु गुणेण गणणादियंतेण ॥ २२४ ॥

§ १८० एसा छट्ठभासगाहा एदस्स किट्टीवेदगक्खवगस्स पदेसुदीरणादो पदेसोदयस्स असंखेज्जगुणत्तं णियमपदुप्पायणट्ठमोइण्णा। तं जहा—'जो कम्मंसो पविसदि' जं खलु कम्मपदेसग्गमुदयं पविसदि। कधं पविसदि त्ति वुत्ते 'पयोगसा' पओगवसेण परिणामविसेसकारणेणुदीरिज्जदि त्ति वुत्तं होइ। 'तेण णियमसा अधिगो' तत्तो णिच्छयेणेव बहुवयरो होदि। को सो पविसदि ? ट्ठिदिक्खयेण दु' ट्ठिदिक्खएण कम्मोदयेण पविसमाणो पदेसपिंडो त्ति भणिदं होदि। सो वुण केण गुणगारेण अहिओ त्ति पुच्छिदे 'गुणेण गणणादियंतेण' असंखेज्जगुणब्भहिओ होदि त्ति वुत्तं होदि। एदस्स भावत्थो—अंतरकरणादो हेट्ठा चेव असंखेज्जाणं समयपबद्धाण-

---

§ १७८ अब यथावसर प्राप्त छठी भाष्यगाथाके अर्थकी विभाषा करनेके लिये यह सूत्र कहते हैं—

* इससे आगे छठी भाष्यगाथा है।

§ १७९ यह सूत्र सुगम है।

* १७१ जो कर्मपुंज प्रयोगवश उदीरणाद्वारा उदयमें प्रविष्ट होता है उससे स्थितिक्षयद्वारा उदयमें प्रविष्ट होनेवाला कर्मपुंज नियमसे असंख्यातगुणा होता है॥ २२४ ॥

§ १८० यह छठी भाष्यगाथा, इस कृष्टिवेदक क्षपकके प्रदेशों की उदीरणासे प्रदेशोंका उदय असंख्यातगुणा होता है, इस नियमके प्रतिपादनके लिये अवतीर्ण हुई है। वह जैसे—'जो कम्मंसो पविसदि, जो कर्मप्रदेशपुंज नियमसे उदयमें प्रवेश करता है। कैसे प्रवेश करता है ? ऐसा कहने पर 'पओगसा' प्रयोगवश अर्थात् परिणामविशेषके कारणसे उदीरित होता है यह उक्त कथन का तात्पर्य है। 'तेण णियमसा अधिगो' उसको अपेक्षा निश्चयसे ही अधिकतर होता है।

शंका—वह कौन प्रवेश करता है जो अधिकतर होता है ?

समाधान—'ट्ठिदिक्खयेण दु' जो स्थिति-क्षयसे अर्थात् कर्मके उदयसे प्रविष्ट होने वाला प्रदेशपिण्ड है वह अधिक होता है।

शंका—परन्तु वह किस गुणकार से गुणा करने पर अधिक होता है ?

समाधान—ऐसा पूछने पर कहते हैं—'गुणेण गणणादियंतेण' अर्थात् असंख्यातसे गुणा

---

१. छट्ठमासगाहाए आ०।

मुदीरणमाढविय पवेसेमाणो जं पदेसग्गमुदीरणासरूवेण समयं पडि पवेसेदि तं पेक्खि-यूण जं ट्ठिदिक्खयेणुदयं पविसदि गुणसेढिसरूवेण रचिददव्वं तं णियमा असंखेज्ज-गुणमेव दट्ठव्वं, गुणसेढिमाहप्पेण तत्थ तहाभावसिद्धीए णिप्पडिबंधमुवलंभादो त्ति। संपहि इममेव अत्थविसेसं फुडीकरेमाणो विहासागंथमुवरिममाढवेइ।

* विहासा।

§ १८१ सुगमं।

* जत्तो पाए असंखेज्जाणं समयपबद्धाणमुदीरगो तत्तो पाए जमु-दीरिज्जदि पदेसग्गं तं थोवं।

§ १८२ सुगमं।

* जमधट्ठिदिगं पविसदि तमसंखेज्जगुणं।

§ १८३ गयत्थमेदं पि सुत्तं। संपहि ण केवलमेदम्मियेव विसये[2] उदीरिज्जमा-णदव्वादो अधट्ठिदिगलणेण उदयं पविसमाणदव्वमसंखेज्जगुणं; किंतु हेट्ठा वि सव्वत्थ असंखेज्जलोगपडिभागेणुदीरिज्जमाणदव्वं पेक्खियूण कम्मोदयेण पविसमाणगुणसेढि-

करने पर अधिक होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसका भावार्थ—अन्तरकरण प्रारम्भ करनेके पूर्व ही असंख्यात समयप्रबद्धोंकी उदीरणाका आरम्भ करके प्रवेश कराने वाला जिस प्रदेशपुंज-को उदीरणारूपसे प्रत्येक समयमें उदयमें प्रवेश करता है उसे देखते हुए जो कर्मपुंज स्थिति-क्षयसे गुणश्रेणिस्वरूपसे रचा गया द्रव्य उदयमें प्रविष्ट होता है उसे नियमसे असंख्यातगुणा ही जानना चाहिये, क्योंकि गुणश्रेणिके माहात्म्यवश उसके उस प्रकारसे सिद्ध होनेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं उप-लब्ध होता। अब इसी अर्थविशेषको स्पष्ट करते हुये आगेके विभाषाग्रन्थको आरम्भ करते हैं—

* अब उक्त भाष्यगाथा की विभाषा की जाती है।

§ १८१ यह सूत्र सुगम है।

* जिस स्थान से असंख्यात समयप्रबद्धों का उदीरक होता है उस स्थानसे लेकर जिस प्रदेशपुंज की उदीरणा करता है वह प्रदेशपुंज थोड़ा होता है।

§ १८२ यह सूत्र सुगम है।

* उससे जो अधःस्थिति को प्राप्त होकर उदयमें प्रवेश करता है वह असं-ख्यातगुणा होता है।

§ १८३ यह सूत्र भी गतार्थ है। अब इसी स्थानमें उदीरित होनेवाले द्रव्यसे अधःस्थिति-गलनाकेद्वारा उदयमें प्रवेश करने वाला द्रव्य मात्र असंख्यातगुणा नहीं होता है, किन्तु इसके पूर्व भी सर्वत्र असंख्यात लोकप्रमाण प्रतिभागके अनुसार उदीरणाको प्राप्त होनेवाले द्रव्यको देख-

१. कमेण आ०।

२. मेदम्मि विसये आ०।

गोवुच्छदव्वविसेसगोवुच्छदव्वं वा असंखेज्जगुणमेव होइ; परिप्फुडमेव तत्थ तहाभावो-वलंभादो। एवं च समुवलब्भमाणे किं कारणमेत्थेव विसेसियूण उदीरणादव्वादो उदयं पविसमाणदव्वस्सासंखेज्जगुणत्तपरूवणमाढविज्जदि त्ति आसंकाए णिरारेगीकरणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

* असंखेज्जलोगभागे उदीरणा अणुत्तसिद्धी।

§ १८४ एतदुक्तं भवति—जम्मि विसये उदीरिज्जमाणदव्वमुदयं पविसमाणदव्वं च असंखेज्जसमयपबद्धमेत्तं चेव होइ, तत्थ किं थोवं, किं वा बहुगमिदि जाणावणट्ठं थोवबहुत्तपरूवणं कायव्वं, अण्णहा तव्विसयविसेसणिण्णयाणुप्पत्तीदो। हेट्ठा पुण असंखेज्जलोगपडिभागेण उदीरिज्जमाणदव्वादो कम्मोदएण उदयं पविसमाणदव्वस्सासंखेज्जगुणत्तमविप्पडिवत्तिसिद्धं, तत्थ मंदबुद्धीणं पि संदेहाभावादो। तम्हा असंखेज्जलोगपडिभागेण उदीरिज्जमाणदव्वादो जा उदीरणा सा अणुत्तसिद्धा त्ति ण तव्विसयं परूवणंतरमाढवेयव्वमिदि। अत्रेदमाशंक्यते—बिदियट्ठिदीदो णिरुद्धसंगहकिट्टीए पदेसग्गमोकड्डियूण पढमट्ठिदिं करेमाणो उदयट्ठिदिमादिं कादूण जाव

कर कर्मोदयसे प्रवेश करनेवाला गुणश्रेणिसम्बन्धी गोपुच्छा-द्रव्य तथा इतर गोपुच्छा-द्रव्य असंख्यातगुणा ही होता है, क्योंकि वहाँ पर स्पष्टरूपसे उस प्रकारके द्रव्यकी उपलब्धि होती है। और इस प्रकारसे उपलब्धि होनेपर इसका क्या कारण है कि इसी स्थान पर ही विशेषरूपसे उदीरणाद्रव्यसे उदयमे प्रविष्ट होने वाला द्रव्य असंख्यातगुणा होता है ऐसी प्ररूपणाको यहाँ आरम्भ किया जा रहा है ऐसी आशंका होनेपर निःशंक करनेके लिए आगेका सूत्र अवतीर्ण हुआ है—

* उक्त स्थान से पूर्व भी असंख्यात लोक के प्रतिभागसे उदीरणा होती है, यह अनुक्त सिद्ध है।

§ १८४ इसका यह तात्पर्य है कि जिस स्थानमें उदीर्यमाण द्रव्य और उदयमें प्रवेश करनेवाला द्रव्य असंख्यात समयप्रबद्धप्रमाण होता है वहाँ क्या वह अल्प है और क्या बहुत है ? इस बातका ज्ञान करानेके लिये अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा करनी चाहिये, अन्यथा तद्विषयक विशेषका अर्थात् इन दोनोंमें क्या अन्तर है इस बातका निर्णय नहीं हो पाता। परन्तु इसके पूर्व असंख्यात लोकके प्रतिभागके अनुसार उदोर्यमाण द्रव्यसे कर्मोदयद्वारा उदयमें प्रवेश करनेवाला द्रव्य असंख्यातगुणा होता है यह बिना विवादके सिद्ध है, क्योंकि उसमें मन्दबुद्धि जीवोंको भी सन्देह नहीं होता, इसलिये असंख्यात लोकके प्रतिभागके अनुसार उदीर्यमाण द्रव्यमेसे जो उदीरणा होती है वह अनुक्तसिद्ध है, इसलिये तद्विषयक दूसरी प्ररूपणाके आरम्भ करनेकी आवश्यकता नहीं है।

शंका—यहाँ पर कोई ऐसी आशंका करता है कि द्वितीय स्थितिमेंसे विवक्षित संग्रह कृष्टिके लिये प्रदेशपुंजका अपकर्षण करके प्रथम स्थितिको करनेवाला क्षपक उसे उदयस्थितिसे लेकर प्रथम स्थितिकी अन्तिम स्थिति तक असंख्यात श्रेणिरूपसे निक्षिप्त करता है। अब प्रथम समयमें गुणश्रेणिरूपसे निक्षिप्त किए गए प्रदेशपिण्डसे दूसरे समयमें अपकर्षण करके गुणश्रेणीरूपसे निक्षिप्त किया

पढमट्ठिदीए चरिमट्ठिदि त्ति ताव असंखेज्जसेढिसरूवेण णिक्खिवदि। संपहि पढमसमयम्मि गुणसेढिसरूवेण णिसित्तपदेसपिंडादो विदियसमयम्मि ओकड्डियूण गुणसेढिसरूवेण णिसिंचमाणपदेसपिंडो असंखेज्जगुणो भवदि परिणामपाहम्मादो। तेण विदियसमये उदयादो तम्मि चेव समए उदीरणादव्वमसंखेज्जगुणं किं ण होदि त्ति एवं भणिदे ण होदि। किं कारणं, पढमसमयम्मि उदयट्ठिदीदो अणंतरोवरिमट्ठिदिविसेसम्मि णिसित्तपदेसपिंडादो विदियसमये तम्मि चेव ट्ठिदिविसेसे उदीरणासरूवेण णिबदमाणपदेसपिंडमसंखेज्जदिभागमेत्त होदि। एदं पुण असंखेज्जदिभागमेत्तदव्वं पढमसमये उदयम्मि पदिदपदेसग्गादो असंखेज्जगुण भवदि। तेण कारणेण उदीरणासरूवेण णिवदमाणपदेसपिंडादो ट्ठिदिक्खयेण पविसमाणपदेसपिंडो सव्वत्थासंखेज्जगुणो चेव होदि त्ति णिच्छओ कायव्वो। संपहि एदेण विहाणेण पढमसमयम्मि णिसित्तपदेसपिंडस्सुवरि विदियसमयम्मि णिसिंचमाणपदेसग्गं ट्ठिदिं पडि असंखेज्जदिभागमेत्तं चेव जदि भवदि तो गुणसेढिपदेसग्गमसंखेज्जगुणं कधं होदि त्ति भणिदे वुच्चदे—विदियसमयम्मि असंखेज्जगुणकमेण गुणसेढिं करेमाणस्स पढमट्ठिदीए चरिमट्ठिदीदो तदणंतरउवरिमट्ठिदी संपहि गुणसेढीए चरिमा भवदि। तिस्से ट्ठिदीए पदेसपिंडो पढमसमयम्मि कदगुणसेढिचरिमपदेसग्गादो असंखेज्जगुणो भवदि। एस विधी जत्थ अवट्ठिदगुणसेढीणिक्खेवो तत्थ दट्ठव्वो।

जानेवाला प्रदेशपिण्ड परिणामोंके माहात्म्यवश असंख्यातगुणा होता है। इस कारण दूसरे समयमें उदयसे उसी समयमें उदीरणाको प्राप्त हुआ द्रव्य असंख्यातगुणा क्यों नहीं होता ?

समाधान—ऐसे कहनेपर असंख्यातगुणा नहीं होता है, क्योंकि प्रथम समयमें उदयस्थितिसे अनन्तर उपरिम स्थितिविशेषमें निक्षिप्त हुए प्रदेशपिण्डसे दूसरे समयमें उसी स्थितिविशेषमें उदीरणारूपसे निक्षिप्त होनेवाला प्रदेशपिण्ड असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। परन्तु यह असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्य प्रथम समयमें उदयमें प्राप्त हुए प्रदेशपुंजसे असंख्यातगुणा होता है। इसकारण उदीरणारूपसे निक्षिप्त होनेवाले प्रदेशपिण्डसे स्थितिक्षयसे प्रवेश करनेवाला प्रदेशपिण्ड सर्वत्र असंख्यातगुणा ही होता है ऐसा निश्चय करना चाहिये।

शंका—अब इस विधि से प्रथम समयमें निक्षिप्त हुए प्रदेशपिण्डके ऊपर दूसरे समयमें निक्षिप्त किया जाने वाला प्रदेशपुंज प्रत्येक स्थितिके प्रति असंख्यातवेंभाग प्रमाण हो यदि होता है तो गुणश्रेणि प्रदेशपुंज असंख्यातगुणा कैसे होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका होनेपर कहते हैं—दूसरे समयमें असंख्यातगुणेक्रमसे गुणश्रेणि करनेवाले जीवके प्रथम स्थितिकी अन्तिम स्थितिसे तदनन्तर उपरिम स्थिति वर्तमान गुणश्रेणिमें अन्तिम होती है। उस स्थितिका प्रदेशपिण्ड प्रथम समयमें की गई गुणश्रेणिके अन्तिम प्रदेशपुंजसे असंख्यातगुणा होता है। यह विधि, जहाँ अवस्थित गुणश्रेणिनिक्षेप होता है, वहाँ जानना चाहिये।

§ १८५ एत्थ पुण गलिदसेसो चेव गुणसेढिणिक्खेवो, तेणुवरिमट्ठिदिम्मि सिंचिज्जमाणामसंखेज्जगुणपदेसग्गं पुव्विल्लगुणसेढिसीसगे चेव णिक्खिवदि। उवरिमट्ठिदीए पुण ण भवदि, अंतरं चेव तत्थ भवदि। अत्थपबोधणट्ठमेत्र उवरिमट्ठिदिपदेसग्गमिदि भणिदं। एवं चेव समयं पडि गुणसेढिविण्णासकमो अणुगंतव्वो। तदो सिद्धं उदीरिज्जमाणपदेसग्गादो कम्मोदएण पविसमाणदव्वमसंखेज्जगुणमेव, णाण्णारिसमिदि।

§ १८६ एवमेत्तिएण पबंधेण छट्ठमासगाहाए अत्थविहासणं समाणिय संपहि जहावसरपत्ताए सत्तमीए भासगाहाए अत्थविहासणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो।

* एत्तो सत्तमा भासगाहा।

---

§ १८५ परन्तु यहाँ पर गलितशेष ही गुणश्रेणिनिक्षेप है, इस कारण उपरिम स्थितिमें सींचे जाने वाले असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको पहलेके गुणश्रेणोशीर्षमें ही निक्षिप्त करता है। परन्तु उपरिम स्थितिमें वह नहीं पाया जाता, क्योंकि उस स्थितिमें अन्तर ही होता है। यहाँ पर अर्थका ज्ञान करानेकेलिए ही 'उवरिमट्ठिदिपदेसग्ग' यह कहा है। इसी प्रकार प्रत्येक समयमें गुणश्रेणि की रचनाका क्रम जान लेना चाहिये। इस कारण सिद्ध हुआ कि उदीरित होने वाले प्रदेशपुंजसे कर्मके उदयसे उदयमें प्रवेश करनेवाला द्रव्य असंख्यातगुणा ही होता है, अन्य प्रकारका नहीं होता।

विशेषार्थ-पूर्वमें अन्तरकरण-क्रिया सम्पन्न करनेके पहले यह बतला आये हैं कि यह क्षपक जीव असंख्यात समयप्रबद्धोंका उदीरणाद्वारा क्षपणा करता है। अब यहाँ यह सवाल है कि ऐसे जीवके उदय कितने समयप्रबद्धों का होता है? इसी प्रश्न का उत्तर इस गाथा द्वारा दिया गया है। इस सूत्रगाथा में बतलाया है कि जितने द्रव्य की यह जोव उदीरणाद्वारा क्षपणा करता है उनसे भी असंख्यातगुणे द्रव्यका इस जीवके उदय होता है, क्योंकि इस जीवके प्रतिसमय जितने द्रव्यका अपकर्षण होता है उसमें असंख्यातलोकका भाग देनेपर जो एक भाग लब्ध आता है उससे उदयमें आनेवाला द्रव्य असंख्यातगुणा होता है, क्योंकि इसमें गुणश्रेणिका द्रव्य भी है और अन्य द्रव्य भी है, ऐसा यहाँ जानना चाहिये। यहाँ प्रत्येक समयमें उदोरणा-द्रव्यसे उदय-द्रव्य असंख्यातगुणा कैसे होता है? इसके कारणका निर्देश करते हुए वहाँ बतलाया है कि प्रथम समयमें जो उदयस्थिति होती है उससे अनन्तर उपरिम समयमें जो प्रदेशपुंज निक्षिप्त हुए उस प्रदेशपुंजसे उसी दूसरे समयमें उसी स्थितिविशेषमें उदीरणा होकर जो प्रदेशपुंज निक्षिप्त होता है वह असंख्यातवें भागप्रमाण ही होता है, इसीलिये यहाँ उदयस्थिति में प्राप्त हुये प्रदेशपुंजको उदोरणाकेद्वारा प्राप्त हुये प्रदेशपुंजसे असंख्यातगुणा बतलाया है।

§ १८६ इस प्रकार इतने प्रबन्धद्वारा छठी भाष्यगाथाके अर्थकी विभाषा समाप्तकर अब यथावसरप्राप्त सातवीं भाष्यगाथाके अर्थकी विभाषा करनेकेलिये आगेका सूत्रप्रबन्ध आया है—

* इससे आगे सातवीं भाष्यगाथाका कथन करते हैं।

§ १८७ सुगमं ।

* तं जहा ।

§ १८८ सुगमं ।

* (१७२) आवलियं च पविट्ठं पओगसा णियमसा च उदयादी ।
उदयादि पदेसग्गं गुणेण गणणादियंतेण ॥२२५॥

§ १८९ पुव्विल्लभासगाहाए उदये दिस्समाणदिज्जमाणपदेसग्गाणं सण्णियासविही भणिदो । एदीए पुण उदयावलियपविट्ठस्स पदेसग्गस्स उदयादिट्ठिदीसु एदेण सरूवेण समवट्ठाणं होदि त्ति एवंविहो अत्थविसेसो णिद्दिट्ठो, परिप्फुडमेवेत्थ तहाविहत्थणिद्दे सदंसणादो । ण च मूलगाहाए एवंविहो अत्थणिद्दे सो ण पडिबद्धो त्ति आसंकणिज्जं; देसामासयभावेण तत्थेवंविहत्थस्स पडिबद्धत्तब्भुवगमादो । तत्थ णिद्दिट्ठोदीरणसंबंधेण पयदत्थविहासणाए विरोहाभावादो च ।

§ १९० संपहि एदिस्से भासगाहाए किंचि अवयवत्थपरामरसं कस्सामो । तं जहा—'उदयादि' उदयविसेसणा जा आवलिया उदयावलिया त्ति वुत्तं होदि । तं पविट्ठं जं पदेसग्गं पयोगसा पयोगवसेण ओकड्डणापरिणामवसेणे त्ति वुत्तं होदि । 'णियमसा' णिच्छयेणेव 'उदयादि पदेसग्गं' उदयादो पहुडि तं पदेसग्गं 'गुणेण गणणादि-

---

§ १८७ यह सूत्र सुगम है ।

* वह जैसे ।

§ १८८ यह सूत्र सुगम है ।

* (१७२) अपकर्षणके कारणभूत परिणामोंके वशसे उदयावलिमें जो प्रदेशपुंज प्रविष्ट होता है वह प्रदेशपुंज उदयसमयसे लेकर उदयावलिके अन्तिम समयतक नियमसे असंख्यातगुणा होता है ।। २२५ ।।

§ १८९ पहली भाष्यगाथाके द्वारा उदयमें दिखनेवाले ओर दिये जानेवाले प्रदेशपुंजकी सन्निकर्षविधि कही । परन्तु इस गाथाद्वारा उदयावलिमें प्रविष्ट हुए प्रदेशपुंजका उदयसे लेकर स्थितियोंमें इसरूपसे अवस्थान होता है, इसप्रकार ऐसा अर्थविशेष यहाँ कहा गया है क्योंकि उक्त भाष्यगाथामें स्पष्टरूपसे उस प्रकारके अर्थका निर्देश देखा जाता है । मूलगाथामें इस प्रकारका अर्थविशेष प्रतिबद्ध नहीं है ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है क्योंकि देशामर्षकरूपसे उक्त गाथामें इस प्रकारका अर्थ प्रतिबद्ध है यह स्वीकार किया गया है तथा उक्त गाथामें निर्दिष्टकी गई उदीरणाके सम्बन्धसे प्रकृत अर्थकी विभाषा (विशेष व्याख्यान) करनेमें विरोधका अभाव है ।

§ १९० अब इस भाष्यगाथाके अवयवोंके अर्थका किंचित् परामर्श करेंगे । वह जैसे—उदयसे लेकर उदयरूप विशेषणसे युक्त जो आवलि है उसे उदयावलि कहते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है उसमें जो प्रदेशपुंज 'पयोगसा' प्रयोगवश अर्थात् अपकर्षणरूप परिणाम विशेषके वश प्रविष्ट हुए

यंतेण' असंखेज्जगुणाए सेढीए दट्ठव्वं। एतदुक्तं भवति किट्टीवेदगस्स खवगस्स उदयावलियब्भंतरे जं पदेसग्गमुवलब्भदि तमुदयट्ठिदीए थोवं होदूण तत्तो जहाकममसंखेज्जगुणाए सेढीए दट्ठव्वं जाव चरिमावलियउदयट्ठिदि त्ति। किं कारणं? उदयादि गुणसेढीए ओकड्डियूण णिसित्तस्स तस्स तहाभावसिद्धीए णिप्पडिबंधमुवलंभादो त्ति उदयावलियबाहिरे वि जाव गुणसेढीसीसयं ताव असंखेज्जगुणाए सेढीए पदेसग्गमुवलब्भदे। किंतु तमेत्थ ण विवक्खियं; उदयावलियपविट्ठं चेव पदेसग्गमहिकिच्च पयदप्पाबहुअपरूवणाए अवयारिदत्तादो। एत्थ गाहापुव्वद्धे दोण्हं च सद्दाणं पओगो पादपूरणट्ठो दट्ठव्वो, तव्वदिरेगेण तस्स पओजणंतराणुवलंभादो। संपहि एवंविहमेदस्स गाहासुत्तस्स अत्थं विहासेमाणो उवरिमं विहासागंथमाढवेइ—

* विहासा।

§ १९१ सुगमं।

* तं जहा।

§ १९२ सुगमं।

*** जमावलियपविट्ठं पदेसग्गं तमुदये थोवं, बिदियट्ठिदीए असंखेज्जगुणं; एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए जाव सव्विस्से आवलियाए।**

हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। 'णियमसा' निश्चयसे ही 'उदयादिपदेसग्गं' उदयसे लेकर वह प्रदेशपुंज 'गुणेण गणणादियंतेण' असंख्यातगुणोसे श्रेणिरूपसे जानना चाहिये। इस कथनका यह तात्पर्य है—कृष्टिवेदक क्षपकके उदयावलिके भीतर जो प्रदेशपुंज उपलब्ध होता है वह उदय स्थितिमें सबसे थोड़ा होकर वहाँसे आवलिकी अन्तिम उदयस्थितितक यथाक्रम असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे जानना चाहिये, क्योंकि उदयादिगुणश्रेणिमें अपकर्षण करके निक्षिप्त हुए प्रदेशपुंजका उस प्रकारसे सिद्धि होनेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं पाया जाता। उदयावलि बाहर भी गुणश्रेणिशीर्षतक असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे प्रदेशपुंज उपलब्ध होता है। किन्तु उसकी यहाँ पर विवक्षा नहीं है क्योंकि उदयावलिमें प्रविष्ट हुए प्रदेशपुंजको ही अधिकृत कर यहाँ पर प्रकृत अल्पबहुत्वका अवतार हुआ है। यहाँ इस गाथाके पूर्वार्धमें दो 'च' शब्दोंका प्रयोग पादपूरणके लिये जानना चाहिये क्योंकि उसके सिवाय उन दोनों 'च' शब्दोंका दूसरा प्रयोजन नहीं पाया जाता। अब इस गाथासूत्रके इस प्रकारके अर्थकी विभाषा करते हुए आगेके विभाषाग्रन्थको आरम्भ करते हैं—

*** अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा करते हैं।**

§ १९१ यह सूत्र सुगम है।

*** वह जैसे।**

§ १९२ यह सूत्र सुगम है।

*** जो प्रदेशपुंज उदयावलिमें प्रविष्ट हुआ है वह उदय (स्थिति) में सबसे थोड़ा है। द्वितीय स्थितिमें प्रविष्ट हुआ प्रदेशपुंज असंख्यातगुणा है। इस प्रकार उत्तरोत्तर असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे सम्पूर्ण आवलिमें जानना चाहिये।**

§ १९३ गतार्थत्वान्नात्र किंचिद् व्याख्येयमस्ति। एवमेत्तिय पबंधेण 'जं जं खवेदि किट्टिं० से काले' त्ति एदेसिं मूलगाहाए पदाणमत्थो सत्तहिं भासगाहाहिं णिद्दिट्ठो दट्ठव्वो; तत्थ 'उदीरेदि' त्ति एदेण पदेण ट्ठिदि-अणुभागाणमुदीरणा घेत्तव्वा। 'संछुहदि' त्ति वि एदेण पदेण संकमो गहेयव्वो। पुणो 'संछुहदि उदीरेदि' त्ति इमेसिं(-हिं) चेव पदेहिं ओकड्डुक्कड्डणाविहाणमणुभागपवेसमस्सियूण बंधोदयसंकमाणमप्पाबहुअं च भणिदमिदि णिच्छेयव्वं।

§ १९४ संपहि मूलगाहाए 'तासु अण्णासु' त्ति एदेण पच्छिमपदेण सूचिदमणुभागोदयविहिं तीहिं उवरिमभासगाहाहिं भणिहिदि। तत्थ ताव अट्ठमीए भासगाहाए अवयारं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* एत्तो अट्ठमी भासगाहा।

§ १९५ सुगमं।

* तं जहा।

---

§ १९३ यह सूत्र गतार्थ होनेसे इस विषयमें कुछ व्याख्यान करने योग्य नहीं है। इस प्रकार इतने प्रबन्धद्वारा मूलगाथाके 'जं जं खवेदि किट्टिं० से काले' इन पदोंका अर्थ सात भाष्यगाथाओं-द्वारा निर्दिष्ट किया गया जानना चाहिये क्योंकि वहाँ पर 'उदीरेदि' इस पदद्वारा स्थिति और अनुभागको उदीरणा ग्रहण करनी चाहिये। तथा 'संछुहदि' इस पदद्वारा भी संक्रमको ग्रहण करना चाहिये। पुनः 'संछुहदि उदीरेदि' इस प्रकार इन्ही पदोंद्वारा अपकर्षणविधान और उत्कर्षण-विधानका और अनुभाग तथा प्रदेशोंका आश्रय करके बन्ध, उदय और संक्रमका अल्पबहुत्व कहा गया है ऐसा यहाँ निश्चय करना चाहिये।

विशेषार्थ—इस सातवीं भाष्यगाथामें उदीरणा होकर जो प्रदेशप्रचय संचित होता है वह किस विधिसे संचित होता है इस विशेषताका विवरण प्रस्तुत करते हुए बतलाया है कि उपरिम स्थितिमेसे उदयादि गुणश्रेणिमें अपकर्षण द्वारा निक्षिप्त होनेवाला प्रदेशपुंज उदयस्थितिमें सबसे थोड़ा निक्षिप्त होता है। उससे उपरिम स्थिति (द्वितीय स्थिति) में उससे असंख्यातगुणा प्रदेशपुंज निक्षिप्त होता है। उससे उपरिम तीसरी स्थितिमें दूसरी स्थितिमें निक्षिप्त हुए प्रदेशपुंजसे असंख्यातगुणा प्रदेशपुंज निक्षिप्त होता है। इसी क्रमसे उदयावलीके अन्तिम समय तक जानना चाहिये। यद्यपि उदयावलिके बाहर भी गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर असंख्यातगुणा श्रेणिक्रमसे प्रदेशपुंज उपलब्ध होता है, परन्तु उसकी यहाँ विवक्षा नहीं की है। शेष कथन स्पष्ट ही है।

§ १९४ अब मूलगाथाके 'तासु अण्णासु' इस अन्तिम पदद्वारा सूचित हुई अनुभागके उदयकी विधिको अगली तीन भाष्यगाथाओंद्वारा कहेंगे। उनमेंसे सर्वप्रथम आठवीं भाष्यगाथाका अवतार करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* इससे आगे आठवीं भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते है।

§ १९५ यह सूत्र सुगम है।

* वह जैसे।

§ १९६ सुगमं ।

* (१७३) जा वग्गणा उदीरेदि अणंता तासु संकमदि एक्का ।
पुव्वपविट्ठा णियमा एक्किस्से होंति च अणंता ॥२२६॥

§ १९७ एसा अट्ठमी भासगाहा णिरुद्धसंगहकिट्टीए वेदिज्जमाणमज्झिमबहुभागकिट्टीसुहेट्ठिमोवरिमासंखेज्जदिभागविसयाणमवेदिज्जमाणकिट्टीणमेदेण विहाणेण परिणमणं होदि त्ति एदस्स अत्थविसेसस्स णिण्णयविहाणट्ठमोइण्णा । तत्थ ताव गाहापुव्वद्धे उदीरणासरूवेण वेदिज्जमाणासु अणंतासु मज्झिमकिट्टीसु एक्केक्किस्से अणुदीरिज्जमाणहेट्ठिमोवरिमकिट्टीए परिणमणविही णिद्दिट्ठो । जाओ वग्गणाओ उदीरेदि अणंताओ तासु एक्केक्का अणुदीरिज्जमाणकिट्टी संकमदि त्ति पदसंबंधवसेण तत्थ तहाविहत्थणिद्देसोवलंभादो ।

§ १९८ गाहापच्छद्धेण वि एक्केक्किस्से वेदिज्जमाणकिट्टीए सरूवेण अणंताणमवेदिज्जमाणकिट्टीणं ट्ठिदिक्खयेणुदयं पविसमाणाणं परिणमणविही परूविदो त्ति घेत्तव्वो । संपहि एदिस्से गाहाए किंचि अवयवत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहा—'जा वग्गणा उदीरेदि' एवं भणिदे जाओ वग्गणाओ उदीरेदि त्ति एवं विदियाबहुवयणप्पओगे पसत्ते पुणो एत्थ गाहाए छंदो भंगो होदि त्ति भएण ओकारलोवं कादूण

---

§ १९६ यह सूत्र सुगम है ।

* १७३ यह क्षपक जिन अनन्त वर्गणाओं (कृष्टियों)की उदीरणा करता है उनमें अनुदीर्यमाण एक-एक कृष्टि संक्रमण करती है । तथा पहले जो कृष्टियां स्थितिक्षयसे उदयावलिमें प्रविष्ट होकर उदयको नहीं प्राप्त हुई हैं वे अनन्त कृष्टियां एक-एक करके स्थितिक्षयसे वेद्यमान मध्यम कृष्टिरूप होकर परिणमन करती हैं ॥ २२६ ॥

§ १९७ यह आठवीं भाष्यगाथा, विवक्षित संग्रह कृष्टिकी वेद्यमान बहुभागप्रमाण मध्यम कृष्टियोंमें अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागको विषय करनेवाली अवेद्यमान कृष्टियोंका इस विधिसे परिणमन होता है, इस प्रकार इस अर्थविशेषका निर्णय करनेकेलिये अवतीर्ण हुई है । यहाँ पर सर्वप्रथम गाथाके पूर्वार्धमें उदीरणारूपसे वेदो जानेवाली अनन्त मध्यम कृष्टियोंमें अनुदीर्यमाण अधस्तन और उपरिम एक-एक कृष्टिके परिणमन करनेकी विधि कही है । जिन अनन्त वर्गणाओं (कृष्टियों) की उदीरणा होती है उनमें अनुदीर्यमाण एक-एक कृष्टि संक्रमित होती है, इस प्रकार पदोंके सम्बन्धसे उक्त गाथामें उस प्रकारके अर्थका निर्देश उपलब्ध होता है ।

§ १९८ गाथाके उत्तरार्धद्वारा भी एक-एक वेद्यमान कृष्टिरूपसे स्थितिक्षयसे उदयमें प्रवेश करने वाली अनन्त अवेद्यमान कृष्टियोंकी परिणमन करनेकी विधि कही, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये । अब इस गाथाके अवयवोंके अर्थकी किंचित् प्ररूपणा करेंगे । यथा—'जा वग्गणा उदीरेदि' जिन वर्गणाओंकी उदीरणा करता है, इस प्रकार द्वितीया विभक्तिके बहुवचनरूप प्रयोगके प्रसक्त

णिद्दिट्ठं, तदो 'जाओ वग्गणाओ उदीरेदि त्ति भणिदे जाओ किट्टीओ उदीरेदि त्ति अत्थो घेत्तव्वो; एदम्मि विसए किट्टीणं चेव वग्गणववएससारिहत्तदंसणादो। ताओ च अणंताओ त्ति जाणावणट्ठं 'अणंता' इदि भणिदं। एदं पि विदियाबहुवयणंतत्तेण घेत्तव्वं।

§ १९९ 'तासु संकमदि[1] एक्का' एवं भणिदे तासु उदीरिज्जमाणकिट्टीसु अणंतभेयभिण्णासु एक्केक्का अवेदिज्जमाणकिट्टी हेट्ठिमा उवरिमा वा परिणमदि त्ति वुत्तं होदि, सगसरूवपरिच्चागेण मज्झिमकिट्टीसरूवपरिणामस्सेव संकमभावेणेह विवक्खियत्तादो। तदो एक्केक्का अणुदीरिज्जमाणहेट्ठिमोवरिमकिट्टी सव्वासु चेव उदीरिज्जमाणमज्झिमकिट्टीसु अणंतसंखावच्छिण्णासु संकमियूण परसरूवेण विपच्चदि त्ति एसो एत्थ गाहापुव्वद्धे सुत्तत्थसंगहो। ण च एक्किस्से किट्टीए अणंताणं कीट्टीणं सरूवेण परिणामो विरुद्धो त्ति आसंकणिज्जं; अणंतसरिसधणियपरमाणुसमूहप्पियाए एक्किस्से वि किट्टीए अणंतासु किट्टीसु समयाविरोहेण परिणमणसिद्धीए बाहाणुवलंभादो।

§ २०० संपहि एक्किस्से च वेदिज्जमाणकिट्टीए अणंताणमवेदिज्जमाणकिट्टीणं संकमणसंभवो अत्थि त्ति जाणावणट्ठं गाहापच्छद्धमोइण्णं 'पुव्वपविट्ठा णियमा'

होने पर तो प्रकृतमें गाथाका छन्द भंग होता है; इस भयसे ओकारका लोप करके उक्त वचन निर्दिष्ट किया है, तदनुसार 'जाओ वग्गणाओ उदीरेदि' ऐसा कहने पर जिन कृष्टियोंकी उदीरणा करता है, [उक्तपदोंका] ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि इस स्थानमें कृष्टियोंको ही वर्गणा संज्ञाके योग्य देखा जाता है। और वे कृष्टियाँ अनन्त हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिये गाथामें 'अणंता' यह वचन कहा है। यह वचन भी द्वितीया विभक्ति बहुवचनान्त ही ग्रहण करना चाहिये।

§ १९९ 'तासु संकमदि एक्का' ऐसा कहने पर 'तासु' अर्थात् अनन्त भेदसे भेदको प्राप्त हुई उन उदीर्यमान कृष्टियोंके रूपसे अवेद्यमान अधस्तन और उपरिम कृष्टि परिणमती है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है क्योंकि ये अधस्तन और उपरिम कृष्टि अपने स्वरूपका त्याग करके मध्यम कृष्टिरूपसे परिणम जाती है, यही यहाँ संक्रम का अर्थ विवक्षित है। इसलिये अनुदीर्यमान अधस्तन और उपरिम एक-एक कृष्टि अनन्त संख्यासे युक्त उदीर्यमान सभी मध्यम कृष्टियोंमें संक्रमित होकर पररूपसे फल देती है। इस प्रकार इस गाथाके पूर्वार्धमें सूत्रका यह समुच्चयरूप अर्थ है।

शंका—एक कृष्टिका अनन्त कृष्टिरूपसे परिणमना विरुद्ध है।

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वह एक कृष्टि है; सदृश धनवाले अनन्त परमाणुओंसे बनी है; इसलिये उस एकका भी अनन्त कृष्टियोंमें समयके अविरोधपूर्वक परिणमनकी सिद्धिमें कोई बाधा नहीं पाई जाती।

§ २०० अब एक वेद्यमान कृष्टिमें अवेद्यमान अनन्त कृष्टियोंका संक्रमण सम्भव है। इस प्रकार इस अर्थ का ज्ञान करानेके लिये गाथाका उत्तरार्ध अवतीर्ण हुआ है—'पुव्वपविट्ठा णियमा'

---

1 संकमओ ता०, आ०।

ढुक्कदि । जाओ पुव्वपविट्ठाओ उदयावलियाओ अणंताओ अवेदिज्जमाणकिट्टीओ णिरुद्धसंगहकिट्टीए हेट्ठिमोवरिमासंखेज्जभागविसयपडिबद्धाओ ताओ सव्वाओ वि पादेक्कमेक्केक्किस्से वेदिज्जमाणमज्झिमकिट्टीए सरूवेण परिणमंति त्ति वुत्तं होइ । संपहि एदस्सेव गाहासुत्तत्थस्स फुडीकरणट्ठमुवरिमं विहासागंथमाढवेइ ।

* विहासा ।

§ २०१ सुगमं ।

* तं जहा ।

§ २०२ सुगमं ।

* जा संगहकिट्टी उदिण्णा तिस्से उवरि असंखेज्जदिभागो हेट्ठा वि असंखेज्जदिभागो किट्टीणमणुदिण्णो ।

§ २०३ णिरुद्धवेदिज्जमाणसंगहकिट्टीए हेट्ठिमोवरिमासंखेज्जदिभागविसयाओ किट्टीओ सगसरूवेण सव्वत्थ उदयं ण पविसंति त्ति एसो एदस्स भावत्थो ।

* मज्झागारे असंखेज्जा भागा किट्टीणमुदिण्णा ।

§ २०४ णिरुद्धसंगहकिट्टीए मज्झिमबहुभागा सगसरूवेणेव उदयं पविसंति त्ति भणिदं होदि ।

इत्यादि । जो नियमसे उदयावलिमें पहले प्रविष्ट हुई विवक्षित संग्रह कृष्टिसम्बन्धी अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागको विषय करनेवाली अनन्त अवेद्यमान् कृष्टियाँ वेद्यमान मध्यम कृष्टि-रूपसे परिणमती हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इसी गाथासूत्रको स्पष्ट करनेके लिये आगेके विभाषाग्रन्थको आरम्भ करते हैं—

* अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा करते हैं ।

§ २०१ यह सूत्र सुगम है ।

* वह जैसे ।

§ २०२ यह सूत्र सुगम है ।

* जो संग्रहकृष्टि उदीर्ण होती है अर्थात् उदीरणाद्वारा उदयको प्राप्त होती है तत्सम्बन्धी अन्तरकृष्टियोंका उपरिम असंख्यातवाँ भाग और अन्तरकृष्टियोंका अधस्तन भी असंख्यातवाँ भाग अनुदीर्ण रहता है ।

§ २०३ विवक्षित वेद्यमान संग्रहकृष्टिका अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागको विषय करने वाली कृष्टियाँ सर्वत्र अपने रूपसे उदयमें प्रवेश नहीं करती हैं; यह इस सूत्रका भावार्थ है ।

* अन्तरकृष्टियोंमेंसे मध्यके आकारसे अर्थात् मध्यकी असंख्यात बहुभाग-प्रमाण कृष्टियाँ उदीर्ण होती हैं ।

§ २०४ विवक्षित संग्रहकृष्टिकी मध्यम बहुभागप्रमाण कृष्टियाँ अपने स्वरूपसे ही उदयमें प्रवेश करती हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** तत्थ जाओ अणुदिण्णाओ किट्टीओ तदो एक्केक्का किट्टी सव्वासु उदिण्णासु किट्टीसु संकमेदि ।**

§ २०५ एतदुक्तं भवति—वेदिज्जमाणसंगहकिट्टीए जहण्णकिट्टिप्पहुडि जाव उक्कस्सकिट्टि त्ति ओकड्डियूणुदये संछुहमाणस्स तत्थ मज्झिमा असंखेज्जा भागा अप्पणो सरूवेणेव उदयं पविट्ठा । पुणो तिस्से हेट्ठिमोवरिमासंखेज्जदिभागे एक्केक्का अंतरकिट्टी अप्पप्पणो सरूवेणुदयं ण पविसदि ? तव्वेदमुवरिमभागकिट्टी सव्वासिमेव सरूवेण परिणमिय उदयं पविसदि परिणामविसेसमस्सियूण तत्थ तहा परिणमणसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो त्ति । एवमेदेण सुत्तेण गाहापुव्वद्धमस्सियूण ओकड्डियूणुदये णिसिंचमाणपदेसपिंडस्स अणुभागोदयविही परूविदो । संपहिमिममेवत्थमुवसंहारमुहेण पदुप्पाएमाणो सुत्तमुत्तरं भणई ।

*** एदेण कारणेण 'जा वग्गणा उदीरेदि अणंता तासु संकमदि एक्का' त्ति भण्णदि ।**

§ २०६ गयत्थमेदं सुत्तं । एवं गाहापुव्वद्धं विहासिय संपहि गाहापच्छद्धविहासणट्ठमिदमाह—

*** एक्किस्से वि उदिण्णाए किट्टीए केत्तियाओ किट्टीओ संकमंति ?**

---

* उस संग्रह कृष्टिमेंसे जो अनुदीर्ण असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तरकृष्टियाँ हैं उनमेंसे एक-एक कृष्टि उदीर्ण होनेवाली सब कृष्टियोंमें संक्रमित होती है ।

§ २०५ उक्त कथनका यह तात्पर्य है—वेदी जानेवाली संग्रहकृष्टिकी जघन्य अन्तरकृष्टिसे लेकर उत्कृष्ट अन्तरकृष्टि तककी कृष्टियोंका अपकर्षण करके उदयमें निक्षिप्त करने वाले क्षपकके उनमेंसे मध्यम असंख्यात बहुभागप्रमाण कृष्टियाँ अपने स्वरूपसे ही उदयमें प्रवेश करती हैं । पुनः उक्त संग्रहकृष्टिक अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागमेंसे एक-एक अन्तरकृष्टि अपने-अपने स्वरूपसे उदयमें प्रवेश नहीं करती हैं, और यह अधस्तन तथा उपरिम भागप्रमाण कृष्टियाँ उदीर्ण होनेवाली सभी कृष्टियोंके रूपसे परिणमकर उदयमें प्रवेश करती हैं, क्योंकि परिणामविशेषका आश्रय करके वहाँ उस प्रकारकी परिणामकी सिद्धि होनेमें कोई बाधा नहीं पाई जाती । इस प्रकार इस सूत्रद्वारा गाथाके पूर्वार्धका आश्रय करके अपकर्षण करके उदयमें सींचे जाने वाले प्रदेशपुंजकी अनुभागसम्बन्धी उदयकी विधि प्ररूपित की है । अब इसी अर्थके उपसंहारमुखसे प्रतिपादन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** इस कारणसे जिन अनन्त वर्गणाओं (कृष्टियों) को उदीर्ण करता है उनमें एक-एक [वर्गणा] अन्तरकृष्टि संक्रमण करती है ।**

§ २०६ यह सूत्र गतार्थ है । इस प्रकार गाथाके पूर्वार्धकी विभाषा करके अब गाथाके उत्तरार्धकी विभाषा करनेके लिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** एक भी उदीर्ण कृष्टिपर कितनी कृष्टियाँ संक्रमण करती हैं ?**

२०७ पुच्छावक्कमेदं सुगमं ।

* जाओ आवलियपुव्वपविट्ठाओ उदयेण अधट्ठिदिगं विपच्चंति ताओ सव्वाओ एक्किस्से उदिण्णाए किट्टीए संकमंति ।

§ २०८ उदीरणासरूवेणुदयम्मि वट्टमाणाओ अणंताओ किट्टीओ अत्थि, पुणो तासु एगकिट्टीए सरिसधणियसरूवेण कमेणुदयं पविसमाणाणं तक्किट्टीणं सरिसधणियाणि परिणमंति । एवं पादेक्कं जत्तियाओ किट्टीओ उदिण्णाओ तासिं सव्वासिं पि सरिसधणियाणि होदूण मज्झिमकिट्टीसरूवेणेव उदयं पविसंति त्ति भणिदं होदि । एवमेदेण सुत्तेण कमोदएण उदयं पविसमाणा उवरिमट्ठिदि-अणुभागस्स मज्झिमकिट्टीसरूवेण परिणमणविही परूविदो त्ति घेत्तव्वो । संपहि इममेव गाहापच्छद्धपडिबद्धमत्थमुवसंहारमुहेण पदंसेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* एदेण कारणेण पुव्वपविट्ठा एक्किस्से अणंता त्ति भण्णंति ।

§ २०९ गयत्थमेदं सुत्तं । एवमट्ठमीए भासगाहाए अत्थविहासणं समाणिय संपहि एत्थेव गाहापच्छद्धणिद्दिट्ठत्थविसये पुणो वि विसेसणिण्णयजणणट्ठं णवमभासगाहाए अवयारो कीरदे ।

---

§ २०७ यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

* जो कृष्टियां उदयावलिमें पहले प्रविष्ट हुई हैं वे अधःस्थितिगलन होकर अर्थात् एक-एक स्थिति गलकर उदयद्वारा विपाकको प्राप्त होती हैं; वे सब एक-एक उदीर्ण कृष्टिपर संक्रमण करती हैं ।

§ २०८ उदीरणास्वरूपसे उदयमे वर्तमान अनन्त कृष्टियां है, पुन. उनमेसे एक कृष्टि सदृश धनरूपसे क्रमसे उदयमे प्रवेश करनेवाली अनन्त कृष्टियोंके सदृश धनरूप होकर परिणमती हैं । इस प्रकार अलग-अलग जितनी कृष्टियाँ उदीर्ण होती है व सभी कृष्टियाँ सदृश धनरूप होकर मध्यम कृष्टिरूपसे ही उदयमे प्रवेश करती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार इस सूत्रद्वारा क्रमसे उदयद्वारा उदयमे प्रवेश करती हुई उपरिम स्थिति अनुभागकी मध्यम कृष्टिरूपसे परिणमन करनेकी विधि कही ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये । अब गाथाके उत्तरार्धसे सम्बन्ध रखनेवाले इसी अर्थका उपसंहारद्वारा प्रदर्शन करते हुए उत्तर सूत्रको कहते हैं—

* इस कारणसे पहले प्रविष्ट हुई अनन्त कृष्टियाँ एक-एक कृष्टिपर संक्रमण करती हुई कही जाती हैं ।

§ २०९ यह सूत्र गतार्थ है । इस प्रकार आठवीं भाष्यगाथाके अर्थकी विभाषा समाप्त करके अब यहीं पर गाथाके उत्तरार्धमें कहे गये अर्थके विषयमें फिर भी विशेष निर्णयको उत्पन्न करनेकेलिये नौवीं भाष्यगाथाका अवतार करते है—

* एत्तो णवमी भासगाहा ।

§ २१० सुगमं ।

* (१७४) जे चावि य अणुभागा उदीरिदा णियमसा पओगेण ।
ते यप्पा[1] अणुभागा पुव्वपविट्ठा परिणमंति ॥ २२७ ॥

§ २११ जाओ खलु अणुभागकिट्टीओ परिणामविसेसेण उदीरिज्जंति ताओ समस्सियूण जाओ ट्ठिदिक्खएण उदयं पविसंति पुव्वमुदयावलियब्भंतरं पविट्ठाणुभागकिट्टीओ ताओ वि तदायारेण परिणमंति, तत्थतणहेट्ठिमोवरिमासंखेज्जभागविसयाओ अणंताओ किट्टीओ उदीरिज्जमाणमज्झिमकिट्टीसरूवेण परिणमिय विपच्चंति त्ति भणिदं होदि । ण च अण्णसरूवेणावट्ठिदाणं पोग्गलक्खंधाणमण्णसरूवेण विपरिणामो विरुद्धो, बज्झंतरंगकारणविसेसमासेज्ज कम्मपोग्गलाणं विचित्तसत्तसरूवेण परिणमणसिद्धीए पडिसेहाभावादो । संपहि एदस्सेव सुत्तत्थस्स फुडीकरणट्ठमुवरिमो विहासागंथो ।

* विहासा ।

§ २१२ सुगमं ।

* जाओ किट्टीओ उदिण्णाओ ताओ पडुच्च अणुदीरिज्जमाणिगाओ

---

* इससे आगे नौवीं भाष्यगाथा है ।

§ २१० यह सूत्र सुगम है ।

* [१७४] जितनी भी अनुभागकृष्टियाँ नियमसे प्रयोगवश उदीरित होती हैं उनरूप होकर पहले उदयावलिमें प्रविष्ट हुई अनुभागकृष्टियाँ परिणमती हैं ॥२२७॥

§ २११ जो नियमसे अनुभागकृष्टियाँ परिणामविशेषके कारण उदीरित होती हैं उन्हें मिलाकर जो अनुभागकृष्टियाँ स्थितिक्षयसे उदयमें प्रवेश करती हैं अर्थात् पहले उदयावलिमें प्रविष्ट हुई जो अनुभागकृष्टियाँ हैं वे भी उसरूपसे परिणमती हैं, क्योंकि अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागप्रमाण अनन्तकृष्टियाँ उदीर्ण होनेवाली मध्यम कृष्टिरूपसे परिणमकर फलित होती हैं; यह उक्त कथन का तात्पर्य है । और अन्यरूपसे अवस्थित पुद्गलस्कन्धोंका अन्यरूपसे विपरिणमना विरोधको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि बाह्य और अन्तरंग कारणविशेषका आश्रय करके कर्मपुद्गलोंका विचित्र सत्तारूपसे परिणमनरूप सिद्धिका प्रतिषेध नहीं है । अब इसी सूत्रके अर्थको स्पष्ट करनेके लिये आगे का विभाषाग्रन्थ आया है—

* अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा करते हैं ।

§ २१२ यह सूत्र सुगम है ।

* जो कृष्टियाँ उदीर्ण हुई हैं उनकी अपेक्षा अनुदीर्यमाण भी कृष्टियाँ हैं

---

1 ते तप्पा प्र० ।

वि किट्टीओ जाओ अधट्ठिदिगमुदयं पविसंति ताओ उदीरिज्जमाणियाणं किट्टीणं सरिसाओ भवंति ।

§ २१३ उदीरणासरूवेणुदयं पत्ताओ मज्झिमकिट्टीओ चेव सुद्धा भवंति । पुणो उदयट्ठिदिं मोत्तूण उवरिमट्ठिदिप्पहुडि उदयावलियपविट्ठपदेसपिंडो जाव उदयं ण पविसदि ताव सव्वकिट्टी विसेससंजुत्तो होदूण उदयं पविसमाणावत्थाए उवरिमहेट्ठिमासंखेज्जभागकिट्टीणं सरूवमुज्झियूणमज्झिमबहुभागमरूवेणट्ठिद उदयकिट्टीणं सरूवे परिणमिय विपच्चदि त्ति वुत्तं होदि । एवमेदीए भासगाहाए कमोदयेणुदयं पविसमाणीणुदीरिज्जमाणकिट्टीणमुदीरिज्जमाणमज्झिमकिट्टीआयारेण परिणामो सकारणो णिद्दिट्ठोदट्ठव्वो । एवं णवमभासगाहाए अत्थविहासा समत्ता ।

* एत्तो दसमी भासगाहा ।

जो एक-एक अधःस्थितिका गलन होकर उदयमें प्रवेश करती हैं; वे उदीर्यमाण कृष्टियोंके सदृश होती हैं ।

§ २१३ उदीरणारूपसे उदयको प्राप्त हुई मध्यम कृष्टियाँ ही शुद्ध होती हैं । पुन: उदयस्थितिको छोड़कर उपरिम स्थितिसे लेकर उदयावलिमें प्रविष्ट हुआ प्रदेशपुंज जब तक उदयमें प्रवेश नहीं करता तब तक सब कृष्टिविशेषसे संयुक्त होकर उदयमें प्रवेश करनेकी अवस्थामें उपरिम और अधस्तन कृष्टियोंके स्वरूपको छोड़कर मध्यम बहुभागरूपसे उदयकृष्टियोंके स्वरूपसे परिणमकर फल देती हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार इस भाष्यगाथाद्वारा क्रमसे उदयरूपसे उदयमें प्रवेश करनेवाली उदीर्यमाण कृष्टियोंके उदीर्यमाण मध्यम कृष्टिरूपसे कारणसहित परिणाम कहा है ऐसा यहाँ जानना चाहिये । इस प्रकार नौवीं गाथाकी अर्थविभाषा समाप्त हुई ।

विशेषार्थ—२२६ संख्याक भाष्यगाथाके पूर्वार्धमें यह सिद्ध करके बतलाया गया है कि जो प्रतिसमय मध्यम कृष्टियाँ उदीरित होती हैं उनमें अधस्तन और उपरिम एक-एक अनुदीर्यमाण कृष्टिसंक्रमण करती है । तथा इसी भाष्यगाथाके उत्तरार्धमें यह बतलाया गया है कि विवक्षित संग्रह कृष्टिके जो अधस्तन असंख्यातवें भागप्रमाण और उपरिम असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियाँ पहले उदयावलिमें प्रविष्ट हुई हैं वे सब वेदी जानेवाली एक-एक मध्यम कृष्टिरूपसे परिणमती हैं अर्थात् वे सब कृष्टियाँ एक-एक मध्यम कृष्टिरूपसे संक्रमण करती हैं । इसी बातका समर्थन करते हुए समुच्चयरूपमें अगली २२७ वीं भाष्यगाथामें यह बतलाया गया है कि जो विवक्षित संग्रहकृष्टिकी अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियाँ क्रमसे उदयावलिमें पहले प्रविष्ट हुई हैं वे उसी संग्रहकृष्टिकी उदीरित होनेवाली मध्यमकृष्टियोंके रूपमें संक्रमित होकर उदयरूपसे परिणत होती हैं । यहाँ इन दोनों भाष्यगाथाओंमें अधस्तन और उपरिम कृष्टियोंके मध्यम बहुभागप्रमाण कृष्टियोंमें संक्रमण करके उदयमें आनेकी जो बात कही गई है उस कथनको थिउक्क संक्रमणकी अपेक्षा जानना चाहिये ।

* इससे आगे दसवीं भाष्यगाथा आई है ।

§ २१४ णवमभासगाहाविहासणाणंतरमेत्तो दसमभासगाहा जहावसरपत्ता विहासेयव्वा त्ति वुत्तं होइ।

* (१७५) पच्छिम आवलियाए समयूणाए दु जे य अणुभागा।
उक्कस्स हेट्ठिमा मज्झिमासु णियमा परिणमंति ॥२२८॥

§ २१५ एसा दसमी भासगाहा उदयावलियपविट्ठाणमणुभागकिट्टीणं मज्झिमकिट्टीसरूवेणुदयसंपत्तीए सुट्ठु परिप्फुडीकरणट्ठमोइण्णा। संपहि एदिस्से अवयवत्थो वुच्चदे। तं जहा—पच्छिमा आवलिया पच्छिमावलिया उदयावलिया त्ति वुत्तं होदि। तिस्से पच्छिमावलियाए समयूणाए उदयसमयवज्जाए 'जे अणुभागा' जे खलु अणुभागा किट्टीसरूवा 'उक्कस्स हेट्ठिमा' हेट्ठिमोवरिमासंखेज्जदिभागविसयपडिबद्धत्तेण उक्कस्स जहण्णववएसमवलंबमाणा 'मज्झिमासु' मज्झिमबहुभागकिट्टीसु णियमा णिच्छयेणेव परिणमंति। किमुक्तं भवति? उदयावलियपविट्ठस्स सव्वकिट्टीओ जाव उदयसमयं ण ढुक्कंति ताव अप्पप्पणो सरूवेण णिव्वाहमच्छियूण तदो जहाकममुदयट्ठिदिमणुपाविय तक्काले चेव हेट्ठिमोवरिमासंखेज्जदिभागकिट्टीसरूवमुज्झियूण मज्झिमेसु असंखेज्जेसु भागेसु जाओ किट्टीओ तदायारेण परिणमिय फलं दादूण

---

§ २१४ नौवीं भाष्यगाथाकी विभाषा करनेके अनन्तर आगे यथावसरप्राप्त दसवीं भाष्यगाथाकी विभाषा करनी चाहिये, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** (१७५) एक समय कम अन्तिम आवलि (उदयावलि) की उत्कृष्ट और जघन्य असंख्यातवें भागप्रमाण जो अनुभागकृष्टियाँ हैं वे सब असंख्यात बहुभागप्रमाण मध्यम कृष्टियोंके रूपसे नियमसे परिणम जाती हैं ॥२२८॥**

§ २१५ यह दसवीं भाष्यगाथा, उदयावलिमें प्रविष्ट हुई अनुभागकृष्टियोंके मध्यमकृष्टिरूपसे उदयसम्पत्तिको अच्छी तरहसे करनेके लिये, अवतीर्ण हुई है। अब इसके अवयवोंका अर्थ कहते हैं। वह जैसे—पश्चिम जो आवलि वह पश्चिमावलि है। पश्चिम आवलि अर्थात् उदयावलि यह उक्त कथनका तात्पर्य है। एक समय कम अर्थात् उदयसमयसे रहित उस पश्चिम आवलिको 'उक्कस्सहेट्ठिमा' अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागरूप विषयके सम्बन्धसे उत्कृष्ट और जघन्य संज्ञाका अवलम्बन करनेवाले 'जे 'अणुभागा' कृष्टिस्वरूप जो अनुभाग हैं वे बहुभागप्रमाण मध्यम कृष्टियोंरूपसे 'णियमा' निश्चयसे ही परिणम जाते हैं।

शंका—यहाँ क्या कहा गया है?

समाधान—यहाँ यह कहा गया है कि उदयावलिमें प्रविष्ठ हुई सभी कृष्टियाँ जब तक उदयसमयको नहीं प्राप्त होती हैं तब तक अपने-अपने स्वरूपसे निर्बाधरूपसे रहकर तदनन्तर यथाक्रम उदयरूप स्थितिको प्राप्तकरके उसी समय 'अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियोंके

गच्छंति त्ति वुत्तं होइ। ण च एवंविहो परिणामो तासिमसिद्धो; परमागमोवएसबलेण सिद्धत्तादो। एवमेसा गाहा उदयावलियपविट्ठाणुभागं पहाणं कादूण तत्थतणकिट्टीण-मुदयं पविसमाणावत्थाए उदीरिज्जमाणमज्झिमकिट्टीसरूवेण परिणमणविहाणं पदुप्पा-एदि त्ति पुव्विल्लदोगाहाहिंतो एदिस्से गाहाए कथंचि अपुणरुत्तभावो वक्खाणेयव्वो। संपहि एवंविहमेदिस्से गाहाए अत्थं फुडीकरेमाणो उवरिमं विहासागंथमाढवेइ—

* विहासा।

§ २१६ सुगमं।

* पच्छिम आवलिया त्ति का सण्णा।

§ २१७ सुगमं।

* जा उदयावलिया सा पच्छिमावलिया।

§ २१८ कुदो? सव्वपच्छिमाए तिस्से तव्ववएसोववत्तीए णिव्वाहमुवलंभादो।

* तदो तिस्से उदयावलियाए उदयसमयं मोत्तूण सेसेसु समएसु जा संगहकिट्टी वेदिज्जमाणिगा, तिस्से अंतरकिट्टीओ सव्वाओ ताव धरिज्जंति जाव ण उदयं पविट्ठाओ त्ति।

स्वरूपको छोड़कर असंख्यात बहुभागप्रमाण मध्यकी जो कृष्टियाँ हैं उस रूपसे परिणमकर फल देकर निकल जाती हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। और उनका इस प्रकारका परिणमन करना असिद्ध नहीं है, क्योंकि परमागमके उपदेशके बलसे यह बात सिद्ध है। इस प्रकार यह गाथा उदयावलिमें प्रविष्ट हुए अनुभागको प्रधान करके उसमें रहनेवाली कृष्टियोंके, उदयमें प्रवेश करनेकी अवस्थामें, उदीर्यमाण मध्यम कृष्टियोंरूपसे परिणमन करनेकी विधिका प्रतिपादन करती है। इस प्रकार पहलेकी दो गाथाओंसे इस गाथामें कथंचित् अपुनरुक्तपना है, इस बातका व्याख्यान करना चाहिये। अब इस प्रकार इस गाथाके अर्थको स्पष्ट करते हुए आगेके विभाषा ग्रन्थको आरम्भ करते हैं—

* अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा करते हैं।

§ २१६ यह सूत्र सुगम है।

* पश्चिम आवलि यह किसकी संज्ञा है?

§ २१७ यह सूत्र सुगम है।

* जो उदयावलि है उसे ही पश्चिमावलि कहते हैं।

§ २१८ क्योंकि वह सबसे अन्तिम है, इसलिये उसकी उस प्रकारसे उपपत्ति निर्बाधरूपसे बन जाती है।

* इसलिये उस उदयावलिके उदय समयको छोड़कर शेष रहे समयोंमें जो संग्रहकृष्टि वेदी जा रही है उसकी सभी अन्तरकृष्टियाँ तब तक उसी रूप रहती हैं जब तक वे उदयमें प्रवेश नहीं करती हैं।

§ २१९ सुगमं ।

* उदयं जाधे पविट्ठाओ ताधे चेव तिस्से संगहकिट्टीए अग्गकिट्टिमादिं कादूण उवरि असंखेज्जदिभागो जहण्णियं किट्टिमादिं कादूण हेट्ठा असंखेज्जदिभागो च मज्झिमकिट्टीसु परिणमदि ।

§ २२० गयत्थमेदं पि सुत्तं । एवमेदाओ तिण्णि वि अणंतरभासगाहाओ अणुभागोदयमेव जहाकममुदीरणापहाणं कम्मोदयपहाणमुदयावलियपविट्ठाणुभागपहाणं च कादूण परूवेंति त्ति घेत्तव्वं ।

§ २२१ एवमेदाहिं दसहिं भासगाहाहिं किट्टीखवगस्स तदियमूलगाहाए अत्थविहासणं समाणिय संपहि जहावसरपत्ताए चउत्थमूलगाहाए अवयारकरणट्ठमुवरिमं पबंधमाढवेइ—

* खवणाए चउत्थीए मूलगाहाए समुक्कित्तणा ।

---

§ २१९ यह सूत्र सुगम है ।

* किन्तु जिस समय वे उदयमें प्रविष्ट होती हैं उसी समय उस संग्रह कृष्टिकी अग्र अन्तरकृष्टिसे लेकर उपरितन असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तरकृष्टियाँ तथा जघन्य अन्तरकृष्टिसे लेकर अधस्तन असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तरकृष्टियाँ मध्यम कृष्टियोंरूपसे परिणम जाती हैं ।

§ २२० यह सूत्र भी गतार्थ है । इस प्रकार अनन्तर कही गईं ये तीनों ही भाष्यगाथाएँ यथाक्रम उदीरणाप्रधान अनुभागोदयका तथा उदयावलिमें प्रविष्ट हुए अनुभागप्रधान कर्मोंके उदयकी प्रधानताका ही कथन करती हैं, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये ।

विशेषार्थ—जो पहले ८-९वीं भाष्यगाथाओंमें कौन कृष्टियाँ उदीरणाको प्राप्त होती हैं और कौन कृष्टियाँ अधःस्थितिकी गलनाद्वारा क्रमसे उदयावलिमें प्रविष्ट होकर उदय समयमें उदीरणा रूप कृष्टियोंमें संक्रमित होकर उदयको प्राप्त होती हैं इस बातका स्पष्टीकरण कर आये हैं । इस भाष्यगाथामें यह बतलाया गया है कि उदयावलिमें प्रविष्ट हुईं वे अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियाँ एक समय कम उदयावलिप्रमाण काल तक तदवस्थ रहती हैं तथा अन्तिम समयमें क्रमसे वे कृष्टियाँ बहुभागप्रमाण मध्यम कृष्टियोंरूपसे संक्रमण करके उदयको प्राप्त होती हैं ।

§ २२१ इस प्रकार इन दस भाष्यगाथाओंद्वारा कृष्टिक्षपकके तीसरी मूलगाथाके अर्थकी विभाषा समाप्त करके अब यथावसरप्राप्त चौथी मूलगाथाका अवतार करनेकेलिये आगेके प्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

§ २२२ सुगमं ।

* (१७६) किट्टीदो किट्टिं पुण संकमदि खएण किं पयोगेण ।
किं सेसगम्हि किट्टीय संकमो होदि अण्णिस्से ॥ २२९॥

§ २२३ एसा चउत्थमूलगाहा एगसंगहकिट्टिं वेदेदूण पुणो अण्णसंगहकिट्टिमोकड्डियूण वेदेमाणस्स किट्टीखवगस्स तम्मि संधिविसये जो परूवणाभेदो तण्णिण्णयविहाणट्ठमोइण्णा । तं जहा—'किट्टीदो किट्टिं पुण०' एवं भणिवे[1] एगसंगहकिट्टिं वेदेदूण पुणो तत्तो अण्णसंगहकिट्टिं वेदेमाणो तिस्से पुव्ववेदिदकिट्टीए सेसगं कधं खवेदि ? किं तिस्से उदएण आहो पओगेणेत्ति एवविहा पुच्छा गाहापुव्वद्धे णिबद्धा । एदस्स भावत्थो—किं वेदेमाणो खवेदि । आहो परपयडिसंकमेण संकामेंतो खवेदि त्ति भणिदं होदि । कधं ? एत्थ क्खएणे त्ति भणिदे उदयस्स गहणं होदि त्ति णासंकणिज्जं, खयाहिमुहस्स उदयस्सेव खयव्ववएससिद्धीए णाइयत्तादो । 'किं सेसगम्हि किट्टीय' एवं

---

§ २२२ यह सूत्र सुगम है ।

* (१७६) विवक्षित संग्रहकृष्टिका वेदन करनेके बाद अन्य संग्रहकृष्टिका अपकर्षण करके वेदन करता हुआ क्षपक उस पूर्ववेदित् संग्रहकृष्टिके शेष रहे भागको वेदन करता हुआ क्षय करता है या अन्य प्रकृतिरूप संक्रमण करके क्षय करता है ॥२२९॥

§ २२३ यह चौथी मूलगाथा एक संग्रह कृष्टिका वेदन करके पुनः अन्य संग्रह कृष्टिका अपकर्षण करके वेदन करनेवाले कृष्टिक्षपकके उस सन्धिस्थानमें जो प्ररूपणा भेद होता है उसका निर्णय करनेके लिये अवतीर्ण हुई है। यथा—'किट्टीदो किट्टि पुण' ऐसा कहने पर एक संग्रह कृष्टिका वेदन करके पुनः उससे अन्य संग्रह कृष्टिका वेदन करता हुआ उसे पूर्वमें वेदनको गई कृष्टिके शेष भागको किस प्रकार क्षय करता है ?—क्या उदयसे क्षय करता है या प्रयोगसे क्षय करता है ? इस प्रकार यह पृच्छा गाथाके पूर्वार्धमें निबद्ध है। अब इसका भावार्थ इस प्रकार है कि क्या वेदन करता हुआ क्षय करता है या परप्रकृति संक्रमके द्वारा सक्रम करता हुआ क्षय करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—यहाँ गाथामें 'क्खएण' ऐसा कहने पर क्या उससे उदयका ग्रहण होता है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि क्षयके सन्मुख हुए उदयकी ही क्षय संज्ञा है, यह बात न्यायसे सिद्ध है ।

'कि सेसगम्हि किट्टीय' ऐसा कहने पर पहले वेदी गई संग्रहकृष्टिके कितने ही भागके अवशिष्ट रहने पर अन्य कृष्टिमें संक्रम होता है, इस प्रकार गाथाके उत्तरार्धमें सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध करना चाहिये। परन्तु यह पृच्छा दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध और उच्छिष्टा-

---

१. भणिदो आ० ।

अणिवे पुव्ववेदिदसंगहकिट्टीए केत्तियमेत्तावसेसे संते अण्णकिट्टीए संकमो होइ त्ति गाहापच्छद्धे सुत्तत्थसंबंधो। एसा पुण पुच्छा दुसमयूणदोआवलियमेत्तणवकबद्धाण-मुच्छिट्टावलियाए च सेसभावमुवेक्खदे। एवमेसा मूलगाहा किट्टीदो किट्टीअंतरं संकम-माणस्स, तम्मि संधिविसेसे दुसमयूणदोआवलियमेत्ते कालम्मि बद्धणवकबंधसमयपबद्धा-णमुच्छिट्टावलियाए च खवणाविहिं पदुप्पाएदि त्ति सिद्धं।

§ २२४ संपहि एवंविहमेदिस्से गाहाए अत्थविसेसं दोहिं भासगाहाहिं विहासे-माणो उवरिमं पबंधमाढवेइ—

* एदिस्से बे भासगाहाओ।

§ २२५ सुगमं। तत्थ ताव पढमभासगाहाए समुक्कित्तणं कुणमाणो इदमाह—

* (१७७) किट्टीदो किट्टिं पुण संकमदे णियमसा पओगेण।
किट्टीए सेसगं पुण दो आवलियाए[1] जं बद्धं ॥२३०॥

वलिकी अपेक्षा करती है। इस प्रकार यह मूलगाथा एक संग्रहकृष्टिसे दूसरी संग्रहकृष्टिमें संक्रम करनेवाले क्षपक जीव उस सन्धि विशेषमें दो समय कम दो आवलिप्रमाणकालके भीतर उस कालमें बन्धको प्राप्त हुए नवकबन्ध समय प्रबद्धोंकी तथा उच्छिष्टावलिप्रमाण समयप्रबद्धोंकी क्षपणा करने-की विधिका प्रतिपादन करती है, यह सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ—इस मूलगाथामें यह पृच्छाकी गई है कि अगली संग्रह कृष्टिका वेदन करते समय पिछली संग्रह कृष्टिका जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवकबन्ध सत्तामें शेष रहता है तथा उसके साथ ही जो उच्छिष्टावलिप्रमाण समयप्रबद्ध शेष रहता है उसका क्या उदयद्वारा वेदन होता है या वेदी जानेवाली संग्रहकृष्टिमें संक्रमण होकर उसका वेदन होता है।

§ २२४ अब इस गाथाके इस प्रकारके अर्थविशेषकी दो भाष्यगाथाओंद्वारा विभाषा करते हुए आगेके प्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

* इस चौथी मूलगाथाकी दो भाष्यगाथाएँ हैं।

§ २२५ यह सूत्र सुगम है। उसमें सर्वप्रथम प्रथमभाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हुए इस प्रथम भाष्यगाथाको कहते हैं—

*** (१७७) पिछली संग्रहकृष्टिके वेदन करनेके बाद जो भाग शेष बचता है उसे अन्य संग्रहकृष्टिमें नियमसे प्रयोगद्वारा संक्रमण करता है। परन्तु पिछली संग्रह कृष्टिका दो समय कम दो आवलिप्रमाण नवक-बन्धरूप जो द्रव्य है तथा उच्छिष्टावलि प्रमाण जो द्रव्य है वह शेषका प्रमाण है ॥२३०॥**

---

१. आवलियासु ता०।

§ २२६ एदस्स सुत्तस्सत्थो—एगकिट्टीदो वेदिदसेसगं पदेसग्गं अण्णं किट्टिं संकामेमाणो 'णियमसा' णिच्छएणेव 'पयोगेण' परपयडी संकामेंतो चेव खवेइ, पुव्ववेदिदसंगहकिट्टीए सेसस्स पयारंतरेण णिल्लेवणासंभवादो। तत्थ पुण सेसपमाणं केत्तियमिदि भणिदे 'किट्टीए सेसयं पुण दो आवलियासु जं बद्धमिदि' णिद्दिट्ठं। एत्थ दो आवलियबद्धाणं दुसमयूणत्तं सुत्ते जइ वि ण णिद्दिट्ठं तो वि वक्खाणादो तहाविहविसेसपडिवत्ती एत्थ दट्ठव्वा, चरिमावलियाए संपुण्णाए दुचरिमावलियाए च दुसमयूणाए बद्धाणं णवकबद्धसमयपबद्धाणं एत्थ सेसभावेण संभवदंसणादो। उच्छिट्ठावलियपदेसग्गस्स च एत्थ सेसभावो अणुत्तसिद्धो दट्ठव्वो। संपहि एदस्सेवत्थस्स फुडीकरणट्ठमुवरिमं विहासागंथमाढवेइ—

* विहासा।

§ २२७ सुगमं।

* जं संगहकिट्टिं वेदेदूण तदो से काले अण्णसंगहकिट्टिं पवेदयदि, तदो तिस्से पुव्वसमयवेदिदाए संगहकिट्टीए जे दोआवलियबद्धा[1]

---

§ २२६ इस भाष्यगाथासूत्रका अर्थ है—एक संग्रह कृष्टिके वेदे जानेके बाद शेष रहे प्रदेशपुंजको अन्य संग्रहकृष्टिमें संक्रमण करता हुआ 'णियमसा' निश्चयसे ही प्रयोगसे परप्रकृतिरूप संक्रमण करता हुआ क्षय करता है, क्योंकि पहले वेदी गई संग्रहकृष्टिके शेष रहे भागका अन्य प्रकारसे निर्लेपित होना सम्भव नहीं है। परन्तु उसमें शेषका प्रमाण कितना रहता है ऐसा पूछनेपर 'किट्टीए सेसयं पुण दोआवलियासु जं बद्धं' पिछली संग्रहकृष्टिके दो आवलिप्रमाण कालके भीतर जो बाँधा गया वह शेषका प्रमाण है, यह कहा गया है। यहाँ इस भाष्यगाथामें यद्यपि दो आवलियोंमें दो समय कम करके निर्देश नहीं किया गया है तो भी व्याख्यानसे इस प्रकारकी विशेषताका ज्ञान यहाँ पर कर लेना चाहिये, क्योंकि पूरी अन्तिम आवलिमें और दो समय कम द्विचरम आवलिमें बाँधे गये नवकबद्ध समयप्रबद्धोंका यहाँ शेषपनेसे सम्भव दिखाई देता है। तथा उच्छिष्टावलिप्रमाण प्रदेशपुंज यहाँ पर शेष रहता है यह बात यहाँ अनुक्तसिद्ध जाननी चाहिये। अब इसी अर्थको स्पष्ट करनेकेलिये आगेके विभाषाग्रन्थको आरम्भ करते हैं—

* अब इस भाष्यगाथाकी विभाषा की जाती है।

§ २२७ यह सूत्र सुगम है।

* जिस संग्रहकृष्टिका वेदन करके अनन्तर समयमें अन्य संग्रहकृष्टिका वेदन करता है उस समय उस पूर्व समयमें वेदी गई संग्रह कृष्टिके जो दो समय कम

---

१. बंधा ता०।

दुसमयूणा आवलियपविट्ठा च अस्सिं समए वेदिज्जमाणिगाए संगहकिट्टीए पओगसा संकमंति ।

§ २२८ गयत्थमेदं सुत्तं । णवरि पओगसा संकमंति त्ति एवं भणिदे उच्छिट्ठावलियपविट्ठपदेससंतकम्मं थिवुकसंकमेण उदये पविसदि, सेससंतकम्मं पि अधापवत्तसंकमेण संकामिज्जदि त्ति एसो पओगो णाम । एदेण पओगेण किट्टीसेसस्स किट्टीअंतरसंकंती होदि त्ति भणिदं होइ । एवमेसो पढमभासगाहाए अत्थो विहासिदो त्ति जाणावणट्ठमुवसंहारवक्कमाह—

*** एसो पढमभासगाहाए अत्थो ।**

२२९ एवमेदमुवसंहरिय संपहि बिदियभासगाहाए अत्थविहासणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

*** एत्तो बिदियभासगाहाए समुक्कित्तणा ।**

§ २३० सुगमं ।

दो आवलिबद्ध नवक समयप्रबद्ध हैं वे इस समय वेदी जानेवाली संग्रहकृष्टिमें प्रयोगसे संक्रमित होते हैं ।

§ २२८ यह सूत्र गतार्थ है । इतनी विशेषता है कि 'प्रयोगसे संक्रमित होते हैं' ऐसा कहनेपर उच्छिष्टावलिप्रविष्ट प्रदेशसत्कर्म स्तिवुकसंक्रमसे उदयमें प्रविष्ट होते है तथा शेषसत्कर्मको भी अधःप्रवृत्त संक्रमकेद्वारा संक्रमित करता है । इस प्रकार यह यहाँ प्रयोग शब्दका अर्थ है । इस प्रयोगसे संग्रह कृष्टि शेषकी कृष्टि अन्तरमें संक्रान्ति होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार यह प्रथम भाष्यगाथाके अर्थकी विभाषा की । इस प्रकार इस बातका ज्ञान करनेके लिए उपसंहार वाक्यको कहते हैं—

*** यह प्रथम भाष्यगाथाका अर्थ है ।**

§ २२९ इस प्रकार इस भाष्यगाथाका उपसंहार करके अब दूसरी भाष्यगाथाके अर्थकी विभाषा करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** इससे आगे दूसरी भाष्यगाथाकी समुत्कीर्तना करते हैं ।**

§ २३० यह सूत्र सुगम है ।

*** (१७८) समयूणा च पविट्ठा आवलिया होदि पढमकिट्टीए ।
पुण्णा जं वेदयदे एवं दो संकमे होंति ॥२३१॥**

§ २३१ एसा बिदियभासगाहा किट्टीदो किट्टीअंतरं संकममाणस्स संधिविसये पुव्वुत्तरसंगहकिट्टीणमावलियपविट्ठस्स पवेसगस्स पमाणावहारणट्ठमोइण्णा । तत्थ ताव गाहापुव्वद्धेण पुव्ववेदिदाए किट्टीए समयूणावलियमेत्ताणमुच्छिट्ठावलियसंबंधीणं गुणसेढिगोवुच्छाणं संभवो णिद्दिट्ठो । पच्छद्धेणवि एण्हिमोकड्डियूण वेदिज्जमाणाए संपुण्णावलियमेत्ताणं गोवुच्छाणमुदयावलियब्भंतरे संभवो पदुप्पाइदो दट्ठव्वो । संपहि एदिस्से गाहाए किंचि अवयवत्थपरूवणं कस्सामो । तं जहा—'समयूणा च पविट्ठा' एवं भणिदे समयूणा आवलिया उदयावलियब्भंतरं पविट्ठा त्ति पुव्ववेदिदकिट्टीए संपुण्णा च आवलिया पविट्ठा भवदि जं संगहकिट्टिमेण्हिमोकड्डियूण वेदयदि तिस्से 'एवं दो संकमे होंति' एवं भणिदे एवमेदाओ दो आवलियाओ संकमे भवंति, एगकिट्टिं वेदेदूण पुणो अण्णकिट्टिमोकड्डियूण वेदेमाणस्स तम्मि संधीए दोआवलियाओ भवंति, णाण्णत्थे त्ति वुत्तं होइ । अथवा संकमे किट्टीणं खवणाए एदम्मि संधिविसेसे एदाओ दो

*** (१७८) पूर्वमें वेदी गई संग्रह कृष्टिके और तत्काल वेदी जानेवाली संग्रहकृष्टिके सन्धिस्थानमें प्रथम संग्रहकृष्टिकी एक समय कम एक आवली उदयावलिमें प्रविष्ट होती है तथा जिस संग्रहकृष्टिका अपकर्षण करके इस समय वेदन करता है उसकी पूरी आवली उदयावलिमें प्रविष्ट होती है इस प्रकार दो आवलियाँ संक्रममें होती हैं ॥२३१॥**

§ २३१ यह दूसरी भाष्यगाथा एक संग्रहकृष्टिसे दूसरी संग्रहकृष्टिके अन्तरमें संक्रम करनेवाले जीवके सन्धिस्थानमें पूर्व और उत्तर संग्रहकृष्टियोंके आवलिमें प्रविष्ट हुए प्रवेशक जीवके प्रमाणका अवधारण करनेकेलिये आई है । उसमें सर्वप्रथम गाथाके पूर्वार्धद्वारा पहले वेदी गई संग्रह कृष्टिके एक समय कम आवलिप्रमाण उच्छिष्टावलिसे सम्बन्ध रखनेवाली गुणश्रेणि गोपुच्छाएँ सम्भव हैं, यह निर्देश किया गया है । तथा उत्तरार्ध द्वारा भी इस समय अपकर्षण करके वेदी जानेवाली सम्पूर्ण आवलिप्रमाण गोपुच्छाएँ उदयावलिके भीतर सम्भव हैं यह प्रतिपादन किया गया जानना चाहिये । अब इस गाथाके अवयवोंके अर्थकी थोड़ेमें प्ररूपणा करेंगे । यथा—'समयूणा च पविट्ठा' ऐसा कहने पर पहले वेदी गई संग्रह कृष्टिकी एक समय कम आवलि उदयावलिके भीतर प्रविष्ट हुई तथा जिस संग्रहकृष्टिको इस समय अपकर्षण करके वेदन करता है सम्पूर्ण आवलि उदयावलिमें प्रविष्ट होती है, इस प्रकार 'एवं दो संकमे होंति' ऐसा कहने पर इस प्रकार ये दो आवलियाँ संक्रममें होती हैं । इस प्रकार एक संग्रह कृष्टिको वेदन करके पुनः अन्य संग्रह कृष्टिका अपकर्षण करके वेदन करने वालेके उस सन्धिमें दो आवलियाँ होती हैं, अन्यत्र नहीं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अथवा संक्रममें अर्थात् कृष्टियोंकी क्षपणासम्बन्धी इस सन्धि विशेषमें

आवलियाओ होंति त्ति वक्खाणेयव्वं। संपहि एदस्सेवत्थस्स फुडीकरणट्ठमुवरिमं विहासागंथमाढवेइ¹—

* विहासा।

§ २३२ सुगमं।

* तं जहा।

§ २३३ सुगमं।

* अण्णं किट्टिं संकममाणस्स पुव्ववेदिदाए समयूणा उदयावलिया वेदिज्जमाणिगाए किट्टीए पडिवुण्णा उदयावलिया एवं किट्टीवेदगस्स उक्कस्सेण दो आवलियाओ।

§ २३४ किट्टीदो किट्टीअंतरं संकममाणस्स तम्मि अवत्थंतरे उदयावलियब्भंतरे दोण्हं संगहकिट्टीणं पढमट्ठिदी अत्थि त्ति भणिदं होदि। ताओ पुण दो वि आवलियाओ किट्टीदो किट्टिसंकममाणस्स समयूणावलियमेत्तकालं संभवंति। पुणो सेसकालम्हि सव्वम्हि चेव एक्का उदयावलिया भवदि, उच्छिट्ठावलियाए गालिदाए तत्थ पयारंतरस्स संभवाणुवलंभादो त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

ये दो आवलियाँ होती हैं ऐसा व्याख्यान करना चाहिये। अब इसी अर्थको स्पष्ट करनेके लिये आगेके विभाषाग्रन्थको आरम्भ करते हैं—

* अब इस गाथाकी विभाषा की जाती है।

§ २३२ यह सूत्र सुगम है।

* वह जैसे।

§ २३३ यह सूत्र सुगम है।

* एक संग्रह कृष्टिके बाद दूसरी संग्रह कृष्टिका संक्रमण करनेवाले क्षपकके पूर्वमें वेदी गई संग्रह कृष्टिकी एक समय कम उदयावलि और वर्तमानमें वेदी जानेवाली संग्रह कृष्टिकी पूरी उदयावलि। इस प्रकार कृष्टि वेदकको उत्कृष्टसे दो आवलियाँ एक साथ पायी जाती हैं।

§ २३४ एक संग्रहकृष्टिसे दुसरी संग्रहकृष्टिमें संक्रमण करनेवाले क्षपकके उस दूसरी अवस्थामें उदयावलिके भीतर दो संग्रह कृष्टियोंकी प्रथम स्थिति होती है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। परन्तु वे दोनों ही आवलियाँ एक संग्रह कृष्टिसे दूसरी संग्रह कृष्टिमें संक्रमण करनेवाले जीवके एक समय कम एक आवलि कालतक सम्भव हैं, पुनः शेषकालमें सर्वत्र ही (वेदी जानेवाली संग्रह कृष्टिके वेदन कालतक) एक उदयावलि होती है, क्योंकि उच्छिष्टावलिके गल जाने पर वहाँ दूसरा प्रकार सम्भव नहीं उपलब्ध होता। इस प्रकार इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

---

१. विहासागंथमाह आ०।

* ताओ वि किट्टीदो किट्टिं संकममाणस्स से काले एक्का उदयावलिया भवदि ।

§ २३५ गयत्थमेदं सुत्तं । णवरि एत्थ 'से काले एगा उदयावलिया' त्ति भणिदे समयूणावलियमेत्तगोवुच्छेसु त्थिवुक्कसंकमेण वेदिज्जमाणकिट्टीए उवरि संकंतेसु तदणंतरसमयप्पहुडि एक्का चेव उदयावलिया होदि त्ति घेत्तव्वा । एसो च अत्थो सव्वासिं किट्टीणं वेदगस्स संधीए पादेक्कं जोजेयव्वो । एवं बिदियभासगाहाए अत्थो समत्तो । तदो किट्टीखवणाए चउत्थी मूलगाहा समप्पदि त्ति जाणावणफलमुवसंहारवक्कमाह—

* चउत्थी मूलगाहा खवणाए समत्ता ।

§ (२३६) सुगममेदमुवसंहारवक्कं । एवमेत्तिएण पबंधेण सुहुमसांपराइयगुणट्ठाणमवहिं कादूण चरित्तमोहक्खवणाए किट्टीवेदगस्स परूवणाविहासणं तत्थेव सुत्तप्फासं च कादूण संपहि एसा सव्वा वि परूवणा पुरिसवेदस्स कोहसंजलणोदयेण सेढिमारूढस्स खवगस्स परूविदा त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

* एसा परूवणा पुरिसवेदगस्स कोहेण उवट्ठिदस्स ।

---

* वे दोनों आवलियाँ भी एक संग्रह कृष्टिसे दूसरी संग्रह कृष्टिमें संक्रमण करनेवाले क्षपकके तदनन्तर समयमें अर्थात् एक समय कम उच्छिष्टावलिके गल जानेपर एक उदयावलिमात्र रह जाती है ।

§ २३५ यह सूत्र गतार्थ है । इतनी विशेषता है कि इस सूत्रमें 'से काले एगा उदयावलिया' ऐसा कहने पर उसका अर्थ है कि एक समय कम उदयावलि प्रमाण गोपुच्छाओंके स्तिवुक संक्रमद्वारा वेदी जानेवाली संग्रह कृष्टिमें संक्रान्त होने पर तदनन्तर समयसे लेकर एक ही उदयावलि होती है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये । और यह अर्थ सभी संग्रह कृष्टियोंका वेदन करनेवाले क्षपकके सन्धिकालमें प्रत्येकके योजित करना चाहिये । इस प्रकार दूसरी भाष्यगाथाका अर्थ समाप्त हुआ । तत्पश्चात् कृष्टिक्षपकको चौथी मूल गाथा समाप्त होती है इस बातका ज्ञान करानेके फलस्वरूप उपसंहार वाक्य कहते हैं—

* इस प्रकार क्षपणामें चौथी मूल गाथा समाप्त हुई ।

§ २३६ यह उपसंहारवाक्य सुगम है । इस प्रकार इतने प्रबन्धद्वारा सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानको मर्यादा करके चारित्रमोहनीयको क्षपणामें संग्रह कृष्टिवेदकके प्ररूपणासम्बन्धी-विभाषा और उसी प्रसंगसे सूत्रस्पर्श करके अब यह सभी प्ररूपणा क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपक श्रेणिपर चढ़े हुए पुरुषवेदीके कही है, इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* यह प्ररूपणा क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए पुरुषवेदी क्षपकके जाननी चाहिये ।

§ २३७ एसा सव्वा वि अणंतरपरूविदा सुहुमसांपराइयगुणट्ठाणपज्जंता परूवणा पुरिसवेदोदयक्खवगस्स कोहसंजलणोदयेण खवगसेढिमुवट्ठिदस्स परूविदा त्ति वुत्तं होइ।

§ २३८ संपहि पुरिसवेदोदयस्स चेव माणोदयेण सेढिमारूढस्स केरिसी परूवणा होदि त्ति आसंकाए तव्विसयणाणत्तगवेसणमुवरिमं पबंधमाह—

* पुरिसवेदयस्स[1] चेव माणेण उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो।

§ २३७ यह अनन्तर पूर्व सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान पर्यन्त कही गई सभी प्ररूपणा क्रोध संज्वलन कषायके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए पुरुषवेदके उदयवाले क्षपक जीवके कही गई है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

विशेषार्थ—चौथी मूल गाथामें जो कहा गया है उसका भाव यह है कि एक संग्रहकृष्टिका वेदन करके जब अन्य संग्रहकृष्टिका अपकर्षण करके वेदन करनेवाले क्षपकके सन्धिस्थानमें पूर्वमें वेदी गई संग्रहकृष्टिका जो भाग शेष बचता है उसकी क्षपणा कैसे होती है? क्या उदयद्वारा उसकी क्षपणा होती है या पर प्रकृतिसंक्रमद्वारा संक्रमण करके उसकी क्षपणा होती है तथा एक समयकम उच्छिष्टावलिप्रमाण जो गोपुच्छा शेष रहती है उसकी क्षपणा कैसे होती है? यहाँ शेष पदद्वारा दो समय कम दो आवलि प्रमाण नवकबन्ध और एक समय कम एक आवलिप्रमाण उच्छिष्टावलिका ग्रहण किया गया है। इस प्रकार यह मूलगाथा पृच्छासूत्र है। आगे इसका स्पष्टीकरण करनेके लिये दो भाष्यगाथाएँ आई हैं। उनमेंसे पहली भाष्यगाथामें यह बतलाया गया है कि जो दो समय कम दो आवलिप्रमाण शेष बचता है तथा एक समय कम उच्छिष्टावलि प्रमाण जो शेष बचता है उसमेंसे एक समय कम उच्छिष्टावलिप्रमाण गोपुच्छाको तो स्तिवुक संक्रमणद्वारा उदयमें निक्षेप करके निर्जीर्ण करता है तथा दो समय कम दो आवलि प्रमाण जो नवकबन्ध प्रमाण गोपुच्छा शेष रहती है उसको अधःप्रवृत्तसंक्रमद्वारा दूसरी संग्रहकृष्टिमें संक्रमित करके क्षपणा करता है। तथा दूसरी भाष्यगाथामें यह बतलाया गया है कि जब यह क्षपक एक संग्रहकृष्टिका वेदन करके दूसरी संग्रह कृष्टिका वेदन करता है तब इसके एक तो जो एक समय कम उच्छिष्टावलिप्रमाण गोपुच्छा शेष बचती है उसकी एक उदयावलि होती है। दूसरे जो इस समय अपकर्षण करके वेदी जाने वाली संग्रहकृष्टि है उसकी उदयावलि होती है। इस प्रकार संग्रहकृष्टियोंके सब सन्धि स्थानोंमें दो उदयावलियाँ होती हैं। मात्र जब एक समय कम उच्छिष्टावलिप्रमाण गोपुच्छाका स्तिवुक संक्रमद्वारा उदय हो जाता है तब एक ही उदयावलि शेष बचती है ऐसा यहाँ समझना चाहिये।

§ २३८ अब मानसंज्वलन कषायके उदयसे श्रेणि पर चढ़े हुए पुरुषवेदके उदयवाले क्षपक जीवके कैसी प्ररूपणा होती है? ऐसी आशंका होनेपर उस विषयमें नानापन (भेद) का अनुसन्धान करनेकेलिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

* अब मान-संज्वलनके उदयसे श्रेणि पर चढ़नेवाले पुरुषवेदी क्षपकके जो विभिन्नता होती है उसे बतलावेंगे।

1. पुरिसवेदस्स ता०।

§ २३९ सुगमं ।

* तं जहा ।

§ २४० सुगमं ।

* अंतरे अकदे णत्थि णाणत्तं ।

§ २४१ एत्थ णाणत्तमिदि वुत्ते भेदो विसेसो पुधभावो त्ति एयट्ठो । तदो अंतरकरणादो पुव्वावत्थाए वट्टमाणाणं कोह-माणोदयक्खवयाणं ण कोत्थि भेदसंभवो त्ति वुत्तं होइ ।

* अंतरे कदे णाणत्तं ।

§ २४२ अंतरकरणे पुण समाणिदे तत्तो प्पहुडि केत्तिओ वि णाणत्तसंभवो अत्थि तमिदाणिं भणिस्सामो त्ति वुत्तं होदि । संपहि को सो विसेससंभवो त्ति आसंकाए इदमाह—

* अंतरे कदे कोहस्स पढमट्ठिदी णत्थि, माणस्स अत्थि ।

§ २४३ पुव्विल्लक्खवगो पुरिसवेदेण सह कोहसंजलणस्स पढमट्ठिदिमंतोमुहुत्तायामेण ठवेदि । एसो पुण पुरिसवेदेण सह माणसंजलणस्स पढमट्ठिदिं ठवेदि त्ति एद-

---

§ २३९ यह सूत्र सुगम है ।

* वह जैसे ।

§ २४० यह सूत्र सुगम है ।

* अन्तरकरण द्वारा अन्तर नहीं करने तक कोई विभिन्नता नहीं है ।

§ २४१ इस सूत्रमें 'णाणत्त' ऐसा कहनेपर भेद, विशेष और पृथग्भाव ये तीनों एकार्थक हैं । अतएव अन्तरकरणसे पूर्व अवस्थामें विद्यमान क्षपक जीवोंके क्रोधसंज्वलन और मानसंज्वलनके क्षपणाके समय कोई भेद सम्भव नहीं है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* अन्तरक्रियाके सम्पन्न करने पर विभिन्नता है ।

§ २४२ परन्तु अन्तरकरण क्रियाके सम्पन्न होने पर वहाँसे लेकर कितनी ही विभिन्नता सम्भव है उसे इस समय कहेंगे, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब वह कौन सा विशेष सम्भव है ऐसी आशंका होनेपर इस सूत्रको कहते हैं—

* अन्तरक्रियाके सम्पन्न करनेके बाद क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थिति नहीं होती, मानसंज्वलनकी प्रथम स्थिति होती है ।

§ २४३ पहलेके क्षपक जीव अर्थात् क्रोधसंज्वलनके उदयके साथ क्षपक श्रेणिपर चढ़नेवाला क्षपक जीव पुरुषवेदके साथ क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थितिको अन्तर्मुहूर्त आयाम रूपसे

मेत्थ णाणत्तं सुत्तणिद्दिट्ठमवहारेयव्वं । कुदो एवमिदि चे ? णिरुद्धवेदसंजलणाणमण्णहा वेदगभावाणुववत्तीदो । संपहि एसा माणसंजलणपढमट्ठिदी किंपमाणा होदि, किं कोहसंजलणपढमट्ठिदीए सरिसा अहियूणा वा त्ति आसंकाए णिण्णयविहाणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

*** सा केम्महंती ।**

§ २४४ सा माणसंजलणपढमट्ठिदी 'केम्महंती', कियन्महती, किं प्रमाणेति ? प्रश्नः कृतो भवति । अत्रोत्तरमाह—

*** जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स कोहस्स पढमट्ठिदी कोहस्स चेव खवणद्धा तद्देही चेव एम्महंती[1] माणेण उवट्ठिदस्स माणस्स पढमट्ठिदी ।**

§ २४५ जद्देही जत्तियमेत्ती कोहोदएण चढिदस्स खवगस्स कोहस्स पढमट्ठिदी किट्टीकरणद्धा पज्जन्ता पुणो कोहस्स चेव तिण्हं संगहकिट्टीणं खवणद्धा च तद्देही तप्पमाणा चेव माणोदयक्खवगस्स माणसंजलणपढमट्ठिदी वत्तव्वा । एम्महंतीए पढम-

---

स्थापित करता है । परन्तु यह क्षपक अर्थात् मानसंज्वलनके उदयके साथ क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाला क्षपक पुरुषवेदके साथ मानसंज्वलनकी प्रथम स्थिति स्थापित करता है, इस प्रकार यह भेद यहाँ पर सूत्रमें कहा गया जानना चाहिये ।

शंका—इस प्रकार किस कारणसे है ?

समाधान—पुरुषवेदके साथ विवक्षित संज्वलनका अन्यथा वेदकपना नहीं बन सकता है ।

अब मानसंज्वलनकी प्रथम स्थिति कितनी बड़ी होती है, क्या क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थितिके समान होती है या अधिक होती है या कम होती है ? ऐसी आशंकायें होनेपर निर्णय करनेकेलिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** वह कितनी बड़ी होती है ?**

§ २४४ वह मानसंज्वलनकी प्रथम स्थिति 'केम्महती' कितनी बड़ी अर्थात् कितनी प्रमाण वाली होती है ? इस प्रकार यह प्रश्न किया गया है । अब यहाँपर इस प्रश्नका उत्तर कहते हैं—

*** क्रोधसंज्वलनसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीवकी क्रोधसंज्वलनकी जिस प्रमाण में प्रथम स्थिति होती है और जितने प्रमाणमें क्रोधसंज्वलनका क्षपणाकाल है, मानसंज्वलनसे क्षपक श्रेणिपर चढ़े हुए जीवके तत्प्रमाणमें मानसंज्वलनकी प्रथम स्थिति होती है ।**

§ २४५ क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए जीवके क्रोधसंज्वलनकी कृष्टिकरणपर्यन्त तथा क्रोधसंज्वलनसम्बन्धी तीन संग्रह कृष्टियोंका क्षपणाकाल है 'तद्देही' तत्प्रमाण ही मान-

---

१. एवं महंती आ० ।

ट्ठिदीए विणा तव्विसयाणमावासयाणं संपुण्णभावाणुववत्तीदो। एवं पढमट्ठिदिपमाण-विसये दोण्हं खवगाणं णाणत्तभेदं पदुप्पाइय संपहि एदिस्से पढमट्ठिदीए अब्भंतरे कीरमाणाणं आवासयाणं णाणत्तगवेसणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

*** जम्हि कोहेण उवट्ठिदो अस्सकण्णकरणं करेदि, माणेण उवट्ठिदो तम्हि काले कोहं खवेदि।**

§ २४६ कोहोदएण चडिदो खवगो जम्मि उद्देसे चउण्हं संजलणाणमस्सकण्ण-करणमपुव्वफद्दयविहाणं च करेदि तम्हि उद्देसे एसो माणोदयक्खवगो कोहसंजलणं फद्दयसरूवेणेव खवेदि; तत्थ पयारंतरासंभवादो त्ति वुत्तं होदि। कुदो एवमेत्थ किरिया-विवज्जासो जादो त्ति णासंकणिज्जं, माणोदयक्खवगम्मि कोहसंजलणस्स उदयाभावेण फद्दयगदस्सेव विणाससिद्धीए विरोहाभावादो। ण चाणियट्टिगुणट्ठाणे परिणामभेदा-संभवमस्सियूण पयदणाणत्तविहाणं[1] समंजसं करणपरिणामाणमभिण्णसहावत्ते वि

संज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपक जीवकी मानसंज्वलनकी प्रथम स्थिति जानना चाहिये, क्योंकि इतनी बड़ी प्रथम स्थितिके बिना तद्विषयक आवश्यकोंका पूरा होना नहीं बन सकता। इस प्रकार प्रथम स्थितिसम्बन्धी प्रमाणके विषयमें दोनों क्षपकोंके मध्य जो विभिन्नता है उसका कथन करके अब इस प्रथम स्थितिके भीतर किये जाने वाले आवश्यकोंकी विभिन्नताका कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपक श्रेणि पर चढ़ा हुआ क्षपक जिस कालमें अश्वकर्णकरण करता है, मानसंज्वलनसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक उस कालमें क्रोधसंज्वलनकी क्षपणा करता है।**

§ २४६ क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपक श्रेणीपर चढ़ा हुआ क्षपक जिस स्थानपर चारों संज्वलनोंकी अश्वकर्णकरणक्रिया और अपूर्वस्पर्धकविधिको सम्पन्न करता है उस स्थान पर मान-संज्वलनके उदयसे क्षपक श्रेणिपर चढ़ा हुआ यह क्षपक क्रोधसंज्वलनको स्पर्धकरूपसे मात्र क्षय करता है, क्योंकि वहाँ पर अन्य कोई प्रकार सम्भव नहीं है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—यहाँ पर इस प्रकारका क्रिया-विपर्यास कैसे हो गया है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि मानसंज्वलनके उदयसे क्षपक श्रेणि-पर चढ़नेवाले क्षपकके क्रोधसंज्वलनका उदय न होनेके कारण स्पर्धक अवस्थामें रहते हुए ही क्रोध संज्वलनका विनाश सिद्ध होता है, इसलिए इसमें कोई विरोध नहीं है। और अनिवृत्तिकरण गुण-स्थानमें परिणामोंका भेद सम्भव नहीं है, इसलिये इस अपेक्षा प्रकृतमें भेदका कथन करना ठीक नहीं है, क्योंकि इस गुणस्थानके करणपरिणामोंके अभिन्न स्वभाव होने पर भी भिन्न कषायोंके उदयके

१. आ० ता० प्रत्योः विहयावणं इति पाठः।

भिण्णकसायोदयसहकारिकारणसण्णिहाणवसेण पयदणाणत्तसिद्धीए बाहाणुवलंभादो। तदो तदियभेदं णाणत्तमिदि सिद्धमविरुद्धं।

* कोहेण उवट्ठिदस्स जा किट्टीकरणद्धा माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि काले अस्सकण्णकरणद्धा।

§ २४७ पुव्विल्लखवगस्स जम्मि उद्देसे चदुण्हं संजलणाणं किट्टीकरणद्धा पयट्टदि तम्हि एदस्स माणोदयक्खवगस्स तिण्हं संजलणाणमस्सकण्णकरणद्धा पयट्टदि, तत्थ तिस्से जहावसरपत्तत्तादो त्ति वुत्तं होइ। तदो चउत्थभेदं णाणत्तमेदस्स माणोदयक्खवगस्स जादमिदि सिद्धं।

* कोहेण उवट्ठिदस्स जा कोहस्स खवणद्धा माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि काले किट्टीकरणद्धा।

§ २४८ पुव्विल्लखवगस्स जम्मि उद्देसे कोहस्स तिण्हं संगहकिट्टीणं खवणकालो जादो तम्हि एदस्स खवगस्स तिण्हं संजलणाणं किट्टीकरणद्धा भवदि, पुव्वमेव णिस्संतीकयकोहसंजलणसव्वद्ध-माण-माया-लोहसंजलणपडिबद्धाणं णवण्हं संगहकिट्टीणं परिप्फुडमेव णिव्वत्तणोवलंभादो त्ति पंचमभेदं णाणत्तमवहारेयव्वं।

सहकारी कारणोंके सन्निधानके वशसे प्रकृतमें नानापनकी सिद्धिमें कोई बाधा नहीं पाई जाती। इसलिये यह तीसरा नानापन है, यह अविरोधरूपसे सिद्ध हो जाता है।

क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके जो कृष्टिकरणका काल है, मानसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके उस कालमें अश्वकर्णकरण काल होता है।

§ २४७ पिछले क्षपकके जिस स्थानमें चारों संज्वलनोंका कृष्टिकरणकाल प्रवृत्त होता है उसी स्थान पर मानसंज्वलनके उदयसे क्षपक श्रेणिपर चढ़े हुए इस क्षपकके तीन संज्वलनोंका अश्वकर्णकरणकाल प्रवृत्त होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि वहाँ वह यथावसरप्राप्त है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस कारण मानसंज्वलनके उदयसे क्षपक श्रेणिपर चढ़े हुए इस क्षपकके यह चौथा भेद हो गया है, यह सिद्ध हुआ।

* क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके जो क्रोधसंज्वलनका क्षपणा-काल है, मानसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके उस कालमें कृष्टिकरण-काल होता है।

§ २४८ पिछले क्षपकके जिस स्थानमें क्रोध संज्वलनकी तीन संग्रह कृष्टियोंका जो क्षपणा काल हो गया है उसी स्थानमें इस क्षपकके तीन संज्वलनोंका कृष्टिकरणकाल होता है, क्योंकि जिसने पहले ही क्रोध संज्वलनको निःसत्त्व कर दिया है उसके उस सब कालके भीतर मान, माया और लोभ संज्वलनसे सम्बन्ध रखनेवाली नौ संग्रह कृष्टियोंकी स्पष्टरूपसे ही रचना पाई जाती है, इस प्रकार यह इन दोनोंमें पाँचवाँ भेद जानना चाहिये।

* कोहेण उवट्ठिदस्स जा माणस्स खवणद्धा, माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि चेव काले माणस्स खवणद्धा ।

§ २४९ कोहोदएण चढिदस्स खवगस्स जा माणस्स तिण्हं संगहकिट्टीण खवणद्धा तम्हि चेव काले एसो माणवेदगखवगो अप्पणो तिण्हं संगहकिट्टीणं खवणाए पयट्टदि, ण तत्थ किंचि णाणत्तमत्थि त्ति भणिदं होदि । एत्तो उवरिमसव्वत्थेव दोण्हं खवगाणं णाणत्तेण विणा सव्वा परूवणा पयट्टदि त्ति । जाणावणफलो उवरिमसुत्तणिद्देसो—

* एत्तो पाये जहा कोहेण उवट्ठिदस्स विही तहा माणेण उवट्ठिदस्स ।

§ २५० गयत्थमेदं सुत्तं । एवमेत्तिएण पबंधेण पुरिसवेदोदयक्खवगस्स णिरुंभणं कादूण तत्थ कोहोदयक्खवगादो माणोदयक्खवगस्स णाणत्तमणुमग्गिय संपहि तस्सेव पुरिसवेदक्खवगस्स मायोदयेण सेढिमारूढस्स जो णाणत्तविचारो तण्णिण्णयविहाणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाह—

---

* क्रोध संज्वलनके उदयसे क्षपक श्रेणि पर चढे हुए क्षपकके जो मान संज्वलन का क्षपणा काल है, मानसंज्वलनसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके उसी कालमें मानसंज्वलनका क्षपणाकाल है ।

§ २४९ क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपक श्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके जो मानसंज्वलनकी तीन संग्रह कृष्टियोंका जो क्षपणा काल है उसी कालमें यह मान संज्वलनका वेदन करनेवाला क्षपक अपनी तीन संग्रह कृष्टियोंकी क्षपणामें प्रवृत्त होता है। इस प्रकार इसमें कोई विभिन्नता नहीं है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इससे आगे सर्वत्र ही दोनों क्षपकोंके भेदके बिना समस्त प्ररूपणा प्रवृत्त होती है, यह ज्ञान करानेके फलस्वरूप आगेके सूत्रका निर्देश करते हैं—

* इससे आगे जिस प्रकार क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकको क्षपणाकी विधि कही है उसी प्रकार मानसंज्वलनके उदयसे क्षपक श्रेणिपर चढ़े हुए क्षपककी क्षपणाकी विधि जाननी चाहिये ।

§ २५० यह सूत्र गतार्थ है । इस प्रकार इतने प्रबन्ध द्वारा पुरुषवेदके उदयसे क्षपक श्रेणि पर चढ़े हुए क्षपकको विवक्षित कर वहाँ क्रोध सज्वलनके उदयसे क्षपक श्रेणि पर चढ़े हुए क्षपकसे मानसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए क्षपकको विभिन्नताका अनुसन्धान करके अब पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए उसी पुरुषवेदी क्षपकके मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके जो विभिन्नताका विचार है उसका निर्णय करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* पुरिसवेदयस्स मायाए उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो ।

§ २५१ सुगमं ।

* तं जहा ।

§ २५२ सुगमं ।

* कोहेण उवट्ठिदस्स जम्महंती कोहस्स पढमट्ठिदी कोहस्स चेव खवणद्धा माणस्स च खवणद्धा मायाए उवट्ठिदस्स एम्महंती मायाए पढमट्ठिदी ।

§ २५३ एत्थ वि अंतरे अकदे णत्थि णाणत्तं; अंतरे कदे णाणत्तमिदि अहियारवसेणाहिसंबंधो कायव्वो । तदो अंतरं करेमाणो मायोदयक्खवगो सेससंजलणपरिहारेण मायासंजलणस्सेव पढमट्ठिदिमंतोमुहुत्तायामेण ट्ठवेदि । सा च केम्महंती होदि त्ति पुच्छिदे कोहोदयेणोवट्ठिदस्स खवगस्स जम्महंती कोहस्स पढमट्ठिदी सगंतोक्खित्तअस्सकण्णकरणकिट्टीकरणद्धा कोहस्स चेव तिण्हं किट्टीणं खवणद्धा माणस्स च तिण्हं संगहकिट्टीणं खवणद्धा संपिंडिदा एम्महंती एत्तियमेत्तपमाणविसेसोवलक्खिया मायाए

---

* अब माया संज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके पुरुषवेदकी विभिन्नताको बतलावेंगे ।

§ २५१ यह सूत्र सुगम है ।

* वह जसे ।

§ २५२ यह सूत्र सुगम है ।

* क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके जितनी बड़ी क्रोधसंज्वलनकी प्रथमस्थिति, क्रोधसंज्वलनका ही क्षपणाकाल और मानसंज्वलनका क्षपणाकाल होता है, मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके मायासंज्वलनकी उतनी बड़ी प्रथमस्थिति होती है ।

§ २५३ यहाँ पर भी अन्तर नहीं करनेके पहले तक विभिन्नता नहीं है । अन्तर करलेनेपर विभिन्नता है, ऐसा अधिकारवश सम्बन्ध कर लेना चाहिये । अतः अन्तर करके माया संज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाला क्षपक शेष संज्वलनोंको छोड़कर माया संज्वलनकी ही अन्तर्मुहूर्त प्रमाण प्रथम स्थिति स्थापित करता है । किन्तु वह कितनी बड़ी होती है ? ऐसा पूछने पर क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपककी जितनी बड़ी क्रोधसंज्वलनकी प्रथमस्थिति होती है, जिसके भीतर अश्वकर्णकरणकाल, कृष्टिकरणकाल तथा क्रोधसंज्वलनकी तीनों संग्रहकृष्टियोंका क्षपणा काल तथा मान संज्वलनकी ही तीनों संग्रहकृष्टियोंका क्षपणा काल मिलकर गर्भित है उतनी बड़ी अर्थात् इतने बड़े प्रमाण विशेषसे उपलक्षित माया संज्वलनके उदयसे क्षपक-

समवट्ठिदस्सेदस्स खवगस्स पढमट्ठिदी होदि त्ति तप्पमाणावच्छेदो एदेण सुत्तेण कदो दट्ठव्वो। किं पुण कारणमेम्महंती एदस्स पढमट्ठिदी जादा त्ति णासंकणिज्जं, एदिस्से पढमट्ठिदीए अब्भंतरे कीरमाणकज्जभेदाणमेत्तियमेत्तकालेण विणा संपुण्णभावाणुववत्तीदो। संपहि एत्थ कीरमाणकज्जभेदाणं णाणत्तगवेसणं कुणमाणो उवरिमं पबंधमाह।

*** कोहेण उवट्ठिदो जम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि मायाए उवट्ठिदो तम्हि कोहं खवेदि।**

§ २५४ सुगमं।

*** कोहेण उवट्ठिदो जम्हि किट्टीओ करेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि माणं खवेदि।**

§ २५५ सुगममेदं पि सुत्तं। कोह-माण-संजलणाणमेत्थ फद्दयसरूवेणेव कोहोदयखवगस्स अस्सकण्णकरण-किट्टीकरणद्धासु जहाकमं खवणसिद्धीए परमागमुज्जोवबलेण सुपरिणिच्छिदत्तादो।

श्रेणिपर चढ़े हुए इस क्षपककी प्रथम स्थिति होती है। इस प्रकार उस अर्थात् मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपककी प्रथमस्थितिके प्रमाणका इस सूत्रद्वारा कथन किया गया जानना चाहिये।

शंका—परतु मायासंज्वलनकी इतनी बड़ी प्रथमस्थिति हो गई, इसका क्या कारण है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि इस प्रथम स्थितिके भीतर किये जानेवाले कार्यभेद इतने कालके बिना पूर्णताको नहीं प्राप्त हो सकते।

अब यहाँ पर किये जानेवाले कार्य-भेदोंकी विभिन्नताका अनुसन्धान करते हुए आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाला क्षपक जिस कालमें अश्वकर्णकरण करता है, मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाला क्षपक उस कालमें क्रोधसंज्वलनका क्षय करता है।**

§ २५४ यह सूत्र सुगम है।

*** क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाला क्षपक जिस कालमें कृष्टियोंको करता है, मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाला क्षपक उस कालमें मानसंज्वलनका क्षय करता है।**

§ २५५ यह सूत्र भी सुगम है। क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़े हुए जीवके अश्वकर्णकरण और कृष्टिकरण इन दोनों में जितना समय लगता है; मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके उतने कालमें क्रमसे क्रोधसंज्वलन और मानसंज्वलनका स्पर्धकरूपसे क्षय सिद्ध होता है यह परमागमके उद्योतके बलसे अच्छी तरह निश्चित होता है।

*** कोहेण उवट्ठिदो जम्हि कोधं खवेदि मायाए उवट्ठिदो तम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि ।**

§ २५६ कोहोदयक्खवगस्स कोहतिण्णिसंगहकिट्टीणं खवणद्धाए एसो मायोदयक्खवगो दोण्हं संजलणाणमस्सकण्णकरणविहाणमपुव्वफद्दयेहिं सह पयट्टावेदि त्ति वुत्तं होइ । कुदो एवंविहो किरियाविवज्जासो एत्थ जादो त्ति णासंका कायव्वा, णाणाजीवविसयाणमणियट्टिपरिणामाणमभिण्णसरूवत्ते वि कसायोदयभेदसहकारिकारणवसेण तहाविहभेदसिद्धीए बाहाणुवलंभादो । तदो चउत्थभेदं णाणत्तमवहारेयव्वमिदि सिद्धं ।

*** कोहेण उवट्ठिदो जम्हि माणं खवेदि मायाए उवट्ठिदो तम्हि किट्टीओ करेदि ।**

§ २५७ कोहोदयक्खवगस्स माणतिण्णिसंगहकिट्टीणं खवणद्धाए एदस्स खवगस्स माया-लोभसंजलणविसयाणं छण्हं संगहकिट्टीणं णिव्वत्तणसिद्धीए णिप्पडिबंधमुवलंभादो । तदो पंचमभेदं णाणत्तमिदि सिद्धं ।

*** क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ जिस कालमें क्रोधका क्षय करता है, मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणीपर चढ़ा हुआ क्षपक उस कालमें अश्वकर्णकरण करता है ।**

§ २५६ क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके क्रोधसंज्वलनकी तीन संग्रहकृष्टियोंकी क्षपणाके कालमें यह मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाला क्षपक क्रोधसंज्वलन और मानसंज्वलनके अश्वकर्णकरणकी विधिको अपूर्वस्पर्धकोंके साथ प्रवर्ताता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—यहाँ पर इस प्रकारकी क्रियाकी विपरीतता कैसे हो गई ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये क्योंकि नाना जीवोंविषयक अनिवृत्तिकरणके सम्बन्धी परिणामोंके अभिन्नस्वरूप होनेपर भी कषायोंके उदयमें भेदसम्बन्धी सहकारी कारणोंके वशसे उस प्रकारके भेदकी सिद्धिमें कोई बाधा नहीं पायी जाती । इस कारण चौथा भेद नाना रूप जानना चाहिये, यह सिद्ध होता है ।

*** क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक जिस कालमें मानसंज्वलनका क्षय करता है, मायासंज्वलनसे क्षपक श्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक उस कालमें कृष्टियोंको करता है ।**

§ २५७ क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके मानसंज्वलनकी तीन संग्रहकृष्टिकी क्षपणाके कालमें इस क्षपकके माया और लोभसंज्वलनविषयक छह संग्रहकृष्टियोंके रचनाकी सिद्धि बिना बाधाके उपलब्ध होती है । इसलिये यह पाँचवीं विभिन्नता है, यह सिद्ध हुआ ।

*** कोहेण उवट्ठिदो जम्हि मायं खवेदि तम्हि चेव मायाए उवट्ठिदो मायं खवेदि ।**

§ २५८ दोण्हं पि खवगाणं माया-खवणद्धाए[1] णाणत्तेण विणा पवुत्तिदंसणादो; ण तत्थ किंचि णाणत्तमिदि वुत्तं होइ । एत्तो प्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयकिट्टीखवणद्धा ताव णत्थि चेव णाणत्तमिदि पदुप्पायणट्ठमिदमाह—

*** एत्तो पाए लोभं खवेमाणस्स णत्थि णाणत्तं ।**

§ २५९ गयत्थमेदं सुत्तं, एदम्मि विसये दोण्हं पि खवगाणं णाणत्तेण विणा पवुत्तिदंसणादो । एवमेत्तिएण पबंधेण मायोदयक्खवगस्स णाणत्तपरूवणं कादूण संपहि लोभोदयक्खवगं घेत्तूण कोहोदयक्खवगेण सह सण्णियासं कुणमाणो उवरिमं पबंधमाढवेइ ।

*** पुरिसवेदयस्स लोभेण उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो ।**

§ २६० सुगमं ।

*** क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक जिस समय माया का क्षय करता है उसी समय मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक मायासंज्वलनका क्षय करता है ।**

§ २५८ दोनों ही क्षपकोंके मायासंज्वलनके क्षपणासम्बन्धी कालमें विभिन्नताके बिना प्रवृत्ति देखी जाती है, वहाँ कुछ भी भेद नहीं है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । तथा यहाँसे लेकर जब तक सूक्ष्मसाम्परायिक कृष्टिका काल है तब तक कोई भेद नही है, इस बातका कथन करनेकेलिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** इससे आगे लोभ-संज्वलनकी क्षपणा करनेवालेके कोई भेद नहीं है ।**

§ २५९ यह सूत्र गतार्थ है, क्योंकि इस स्थानमें दोनों ही क्षपकोंके भेदके बिना प्रवृत्ति देखी जाती है । इस प्रकार इतने प्रबन्धद्वारा मायासंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपककी विभिन्नताकी प्ररूपणा करके अब लोभसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकको ग्रहणकर क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके साथ सन्निकर्षको करते हुए आगेके प्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

*** लोभसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए पुरुषवेदी क्षपककी विभिन्नताको बतलावेंगे ।**

§ २६० यह सूत्र सुगम है ।

---

१. खवगाणं खवणद्धाए आ० ।

* जाव अंतरं ण करेदि ताव णत्थि णाणत्तं ।

§ २६१ सुगमं ।

* अंतरं करेमाणो लोभस्स पढमट्ठिदिं ठवेदि ।

§ २६२ एदं ताव पढमं णाणत्तं । पुव्विल्लक्खवगो कोहसंजलणस्स पढमट्ठिदिमंतोमुहुत्तायामेण ठवेदि । एसो पुण तप्परिहारेण लोहसंजलणस्स अंतोमुहुत्तमेत्तिं पढमट्ठिदिं ठवेदि त्ति । संपहि एदिस्से पढमट्ठिदीए पमाणविसेसावहारणट्ठमिदमाह—

* सा केम्महंती ?

§ २६३ सा कियन्महत्ती ? किं प्रमाणेति प्रश्नः कृतो भवति ।

* जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स कोहस्स पढमट्ठिदी कोहस्स माणस्स मायाए च खवणद्धा तद्देही लोभेण उवट्ठिदस्स पढमट्ठिदी ।

§ २६४ कोहोदयक्खवगस्स कोहपढमट्ठिदीए कोह–माण–मायाणं खवणद्धाए च संपिंडिदाए जं पमाणमुप्पज्जदि तत्तियमेत्ती एदस्स पढमट्ठिदी होदि त्ति वुत्तं होइ ।

---

* जब तक अन्तर नहीं करता है तब तक भेद नहीं है ।

§ २६१ यह सूत्र सुगम है ।

* अन्तर करनेवाला क्षपक लोभसंज्वलनकी प्रथमस्थिति स्थापित करता है ।

§ २६२ यह प्रथम भेद-विशेषता है। पहलेका क्षपक क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थिति अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण स्थापित करता है। परन्तु यह क्षपक उसके परिहाररूपसे लोभसंज्वलनकी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्रथम स्थिति स्थापित करता है। अब इस प्रथम स्थितिके प्रमाणविशेषका अवधारण करनेकेलिये इस सूत्र को कहते हैं—

* वह लोभसंज्वलनके उदय से क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके प्रथम स्थिति कितनी बड़ी होती है ?

§ २६३ वह कितनी बड़ी होती है अर्थात् कितने प्रमाणवाली होती है ? यह प्रश्न किया गया है।

* क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके जितनी बड़ी क्रोध-संज्वलनकी प्रथम स्थिति तथा क्रोध, मान और माया संज्वलनका क्षपणाकाल है उतनी बड़ी लोभसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके प्रथम स्थिति होती है ।

§ २६४ क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके क्रोधसंज्वलनकी प्रथम स्थिति तथा क्रोध, मान और मायासंज्वलनके क्षपणाकालको एकत्रित करनेपर जितना प्रमाण उत्पन्न होता है उतनी बड़ी इसकी प्रथम स्थिति होती है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। और इस प्रकारकी

ण च एवंविहा पढमट्ठिदी एत्थ णिरत्थिया, एदिस्से चेव पढमट्ठिदीए अब्भंतरे कोह-माण-मायाणं खवणद्धाओ अस्सकण्णकरणकिट्टीकरणद्धाओ च जहाकममणुपालेमाणस्सेदस्स एम्महंतीए पढमट्ठिदीए सप्पओजणत्तदंसणादो। संपहि एदिस्से पढमट्ठिदीए अब्भंतरे कीरमाणकज्जभेदाणं णिण्णयविहाणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

*** कोहेण उवट्ठिदो जम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि कोहं खवेदि।**

*** कोहेण उवट्ठिदो जम्हि किट्टीओ करेदि लोभेण उवट्ठिदो तम्हि माणं खवेदि।**

*** कोहेण उवट्ठिदो जम्हि कोहं खवेदि लोभेण उवट्ठिदो तम्हि मायं खवेदि।**

*** कोहेण उवट्ठिदो जम्हि माणं खवेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि।**

प्रथम स्थिति यहाँ पर निरर्थक नहीं है क्योंकि इसी प्रथम स्थितिके भीतर क्रोध, मान और माया-संज्वलनोंके क्षपणाकालों, अश्वकर्णकरणकाल तथा कृष्टिकरणकालोंको क्रमसे पालन करनेवाले इस क्षपकके इतनी बड़ी प्रथम स्थिति सप्रयोजन देखी जाती है। अब इस प्रथम स्थितिके भीतर किये जानेवाले कार्योंके भेदोंका निर्णय करनेकेलिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं—

*** क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक जिस कालमें अश्वकर्णकरण करता है, लोभसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक उस कालमें क्रोधसंज्वलनकी क्षपणा करता है।**

*** क्रोध संज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक जिस कालमें कृष्टियोंको करता है, लोभसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक उस कालमें मानसंज्वलनका क्षय करता है।**

*** क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक जिस कालमें क्रोध-संज्वलनका क्षय करता है, लोभसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक उस कालमें मायासंज्वलनका क्षय करता है।**

*** क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक जिस समय मान-संज्वलनका क्षय करता है, लोभसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक उस समय अश्वकर्णकरण करता है।**

*** कोहेण उवट्ठिदो जम्हि मायं खवेदि लोभेण उवट्ठिदो तम्हि किट्टीओ करेदि ।**

*** कोहेण उवट्ठिदो जम्हि लोभं खवेदि, तम्हि चेव लोभेण उवट्ठिदो लोभं खवेदि ।**

§ २६५ एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि । णवरि एत्थ अस्सकण्णकरणमिदि वुत्ते जइ वि लोभसंजलणस्स एक्कस्स अस्सकण्णकरणायारेण अणुभागविण्णासो ण संभवदि तो वि अणुभागविसेसघादमपुव्वफद्दयविहाणं च पेक्खियूण अस्सकण्णकरणद्धाए संभवो एत्थ ण विरुज्झदि त्ति घेत्तव्वं । किट्टीकरणद्धाए च लोभसंजलणस्सेव पुव्वापुव्वफद्दयाणि ओवट्टियूण तिण्णि बादरसंगहकिट्टीओ णिव्वत्तेदि त्ति दट्ठव्वं, सेसकसायाणमेत्थ संभवाणुवलंभादो एसा सव्वा वि णाणत्तपरूवणा पुरिसवेदोदयं धुवं कादूण कोहोदयक्खवगादो माण-माया-लोभोदयक्खवगाणं परूविदा त्ति जाणावणट्ठमुवसंहारवक्कमाह—

*** एसा सव्वा सण्णिकासणा पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स ।**

*** क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक जिस समय मायासंज्वलनका क्षय करता है, लोभसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक उस समय कृष्टियोंको करता है ।**

*** क्रोधसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक जिस समय लोभका क्षय करता है, लोभसंज्वलनके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ा हुआ क्षपक उसी समय लोभसंज्वलनका क्षय करता है ।**

§ २६५ ये सूत्र सुगम हैं । इतनी विशेषता है कि एक सूत्रमें अश्वकर्णकरण ऐसा कहनेपर यद्यपि एक लोभसंज्वलनका अश्वकर्णकरणरूपसे अनुभाग का विन्यास सम्भव नहीं है, तो भी अनुभागके विशेषघात और अपूर्वस्पर्धकविधानको देखकर अश्वकर्णकरणकी सम्भावना यहाँपर विरोधको प्राप्त नहीं होती, ऐसा ग्रहण करना चाहिये । तथा कृष्टिकरण कालमें लोभसंज्वलनकी ही पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंका अपवर्तन करके तीन बादर संग्रहकृष्टियोंकी रचना करता है, ऐसा जानना चाहिये, क्योंकि शेष कषायें यहाँपर सम्भव नहीं हैं । यह सभी विविधतारूप प्ररूपणा पुरुषवेदके उदय को ध्रुव करके क्रोधसंज्वलनके उदयकी क्षपणाके साथ मान, माया और लोभसंज्वलनके उदययुक्त क्षपकोंके कही गई है । इस प्रकार इस बातका ज्ञान करानेकेलिये उपसंहारवाक्यको कहते हैं—

*** यह सब सन्निकर्ष-प्ररूपणा पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपककी कही गई है ।**

§ २६६ सुगमं । संपहि इत्थीवेदेण उवट्ठिदस्स खवगस्स णाणत्ताणुगमणं कुणमाणो उवरिमं सुत्तपबंधमाढवेइ—

*** इत्थिवेदेण उवट्ठिदस्स खवगस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो ।**

§ २६७ सुगमं ।

*** तं जहा ।**

§ २६८ सुगमं ।

*** जाव अंतरं ण करेदि ताव णत्थि णाणत्तं ।**

§ २६९ कुदो ? अंतरकरणादो हेट्ठिमाणं किरियाविसेसाणं दोसु वि खवगेसु णाणत्तेण विणा पवुत्तीए णिब्बाहमुवलंभादो । अंतरकरणे कदे पुण केत्तिओ वि भेदो अत्थि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुतमाह—

*** अंतरं करेमाणो इत्थीवेदस्स पढमट्ठिदिं ठवेदि ।**

§ कुदो एवमिदि चे ? जस्स वेदस्स संजलणस्स वा उदएण सेढिमारुहदि तस्सेव पढमट्ठिदिमंतोमुहुत्तायामेसो[1] ठवेदि, ण सेसाणमिदि णियमदंसणादो । संपहि एदिस्से इत्थिवेदपढमट्ठिदीए पमाणविसेसावहारणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो ।

---

§ २६६ यह सूत्र सुगम है । अब स्त्रीवेदके उदयके साथ क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपककी विभिन्नताका अनुगमन करते हुए आगेके सूत्रप्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

*** स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके भेदको बतलावेंगे ।**

§ २६७ यह सूत्र सुगम है ।

*** वह जैसे ।**

§ २६८ यह सूत्र सुगम है ।

*** जबतक अन्तर नहीं करता है तबतक भेद नहीं है ।**

§ २६९ क्योंकि अन्तरकरण के पहले दोनों ही क्षपकोंमें भेदके बिना प्रकृति निर्बाध पायी जाती है । अन्तरकरण करनेपर तो कितना ही भेद पाया जाता है, इसका विशेष ज्ञान करानेकेलिये आगेका कथन करते हैं—

*** अन्तर करनेवाला जीव स्त्रीवेदकी प्रथम स्थिति स्थापित करता है ।**

शंका—ऐसा किस कारणसे होता है ?

समाधान—जिस वेद और संज्वलन कषायके उदयसे श्रेणिपर आरोहण करता है उसीकी प्रथम स्थितिको यह जीव अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थापित करता है, शेष प्रकृतियोंकी नहीं, ऐसा नियम देखा जाता है ।

अब इस स्त्रीवेदकी प्रथम स्थितिके प्रमाण-विशेषका अवधारण करनेकेलिये उत्तर सूत्रको आरम्भ करते हैं—

---

१. ता० प्रतौ मेसा इति पाठः ।

* जद्देही पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स खवणद्धा तद्देही इत्थीवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स पढमट्ठिदी ।

§ २७० पुरिसवेदोदयक्खवगस्स णवुंसयवेदक्खवणद्धा सहगदा इत्थीवेदक्खवणद्धा जम्महंती तत्तियमेत्ती चेव एदस्स इत्थीवेदपढमट्ठिदी होदि त्ति भणिदं होदि । संपहि इमिस्से पढमट्ठिदीए अब्भंतरे णवुंसयवेदमित्थीवेदं च जहाकममेव खवेमाणस्स ण किंचि णाणत्तमत्थि त्ति पदुप्पायणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

* णवुंसयवेदं खवेमाणस्स णत्थि णाणत्तं ।

§ २७१ सुगमं ।

* णवुंसयवेदे खीणे इत्थीवेदं खवेइ ।

§ २७२ सुगममेदं पि सुत्तमिदि ण एत्थ किं पि वक्खाणेयव्वमत्थि ।

* जम्महंती पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदक्खवणद्धा तम्महंती इत्थीवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स खवणद्धा ।

---

* पुरुष वेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए जीवके जितने प्रमाणवाला स्त्रीवेदका क्षपणाकाल होता है, स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके उतने प्रमाणवाली स्त्रीवेदकी प्रथम स्थिति होती है ।

§ २७० पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके नपुंसकवेदके क्षपणाकालके साथ स्त्रीवेदका क्षपणाकाल जितना बड़ा होता है उतनी बड़ी ही इस क्षपकके स्त्रीवेदकी प्रथम स्थिति होती है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इस प्रथम स्थितिके भीतर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदको क्रमसे क्षय करनेवालेके कोई नानापन नहीं है; इस बातका कथन करनेकेलिये आगेके प्रबन्धको कहते हैं ।

* नपुंसकवेदका क्षय करनेवाले उक्त क्षपकके कोई विभिन्नता नहीं है ।

§ २७१ यह सूत्र सुगम है ।

* उक्त क्षपक नपुंसकवेदका क्षय होनेपर स्त्रीवेदका क्षय करता है ।

§ २७२ यह सूत्र भी सुगम है, इसमें कोई बात व्याख्यान-करनेयोग्य नहीं है ।

* पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाले जीवके जितना बड़ा स्त्रीवेदका क्षपणाकाल है, स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके उतना बड़ा स्त्रीवेदका क्षपणाकाल है ।

§ २७३ पुरिसवेदोदयक्खवगस्स इत्थीवेदक्खवणद्धादो एदस्स इत्थीवेदोदयक्खवगस्स तक्खवणद्धाए पमाणादो उद्देसदो च णाणत्तसंभवाणुवलंभादो ।

* तदो अवगदवेदो सत्तकम्मंसे खवेदि ।

§ २७४ इत्थीवेदपढमट्ठिदीए ज्झीणाए अवगदवेदभावेण पुरिसवेदछण्णोकसाये खवेदि त्ति एदमेत्थ णाणत्तमवहारेयव्वं, पुरिसवेदोदयक्खवगस्स सवेदभावेणेव छण्णोकसायपुरिसवेदाणं चिराणसंतकम्मस्स णिल्लेवणदंसणादो । अण्णं च थोवयरं णाणत्तमेत्थ संभवदि त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

* सत्तण्हं पि कम्माणं तुल्ला खवणद्धा ।

§ २७५ तत्थ छण्णोकसाएसु पुरिसवेदचिराणसंतकम्मेण सह णिल्लेविदेसु पुणो समयूण-दोआवलियमेत्तकालेण पुरिसवेदेण णवकबंधाणं[1] णिल्लेवणा होदि, एत्थ पुण ण तहा संभवो अत्थि, अवगदवेदभावे वट्टमाणस्स पुरिसवेदबंधासंभवेण तत्थ णवकबद्धसमयपबद्धाणमच्चंतासंभवादो ।

---

§ २७३ पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके स्त्रीवेदके क्षपणाकालसे, स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए इस क्षपकके उस (स्त्रीवेद) के क्षपणाकालमें प्रमाणकी अपेक्षा और उद्देश्यकी अपेक्षा किसी प्रकारकी विभिन्नताकी सम्भावना नहीं पायी जाती ।

* वह जीव तदनन्तर अपगतवेदी होकर सात कर्मोंका क्षय करता है ।

§ २७४ स्त्रीवेदकी प्रथम स्थितिके समाप्त होनेपर वह क्षपक अपगतवेदी होकर पुरुषवेद और छह नोकषायोंका क्षय करता है, इस प्रकार यहाँपर यह विशेषता जान लेना चाहिये, क्योंकि पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाले जीवके सवेदपनेके साथ ही छह नोकषाय और पुरुषवेदके चिरकालीन सत्कर्मका निर्लेपन देखा जाता है । तथा यहाँपर अन्य भी थोड़ी विशेषता सम्भव है, इसलिये उस विशेषताका ज्ञान करानेके लिये आगे इस सूत्रको कहते हैं—

* किन्तु उसके सातों कर्मोंका क्षपणाकाल तुल्य है ।

§ २७५ उसके पुरुषवेदके चिरकालीन सत्कर्मके साथ छह नोकषायोंके निर्लेपित हो जानेपर पुनः एक समय कम दो आवलिप्रमाणकाल द्वारा पुरुषके नवकसमयप्रबद्धोंकी निर्लेपता होती है, क्योंकि यहाँपर उनका पुनः उस तरहसे रहना सम्भव नहीं है । उसका कारण नहीं है कि अपवेदवेदरूपसे विद्यमान उस क्षपकके पुरुषवेदका बन्ध सम्भव नहीं होनेसे वहाँ पर नवक समयप्रबद्धोंका रहना अत्यन्त असम्भव है ।

---

१. णवकबद्धाणं प्रेसकापीप्रतौ ।

* सेसेसु पदेसु णत्थि णाणत्तं ।

* कुदो ?

§ २७६ एत्तो उवरिमासेसपदेसु णाणत्तलेसस्स वि संभवाणुवलंभादो । एवमेत्ति-एण सुत्तपबंधेण इत्थीवेदोदयक्खवगस्स णाणत्तविचारं परिसमाणिय संपहि णवुंसय-वेदोदयक्खवगं घेत्तूण तत्थ पयदपरूवणाए णाणत्तगवेसणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाढवेइ ।

* एत्तो णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स खवगस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो ।

§ २७७ सुगमं ।

* जाव अंतरं ण करेदि ताव णत्थि णाणत्तं ।

§ २७८ सुगमं ।

* अंतरं करेमाणो णवुंसयवेदस्स पढमट्ठिदिं ट्ठवेदि ।

§ २७९ एदमेगं णाणत्तमेत्थ दट्ठव्वं, इत्थि-पुरिसवेदपरिहारेण णवुंसयवेदस्सेव पढमट्ठिदिं ठवेदि त्ति । संपहि एदिस्से णवुंसयवेदपढमट्ठिदीए पमाणविसेसावहारणट्ठ-मिदमाह—

---

* शेष पदों में विभिन्नता नहीं है ।

* कैसे ?

§ २७६ क्योंकि इससे आगेके शेष पदों में विभिन्नताका लेश भी सम्भव नहीं है । इस प्रकार इतने सूत्रप्रबन्धद्वारा स्त्रीवेदके उदय से क्षपक श्रेणिपर चढ़नेवाले क्षपकके विभिन्नताके विचारको समाप्त-कर अब नपुंसक वेदके उदयसे क्षपक श्रेणिपर चढ़नेवाले क्षपकको स्वीकार कर वहाँ प्रकृत प्ररूपणा-की विभिन्नताका अनुसन्धान करनेकेलिये आगेके सूत्र प्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

* इससे आगे नपुंसकवेदके उदयसे क्षपक श्रेणिपर चढ़े हुए क्षपककी विभिन्नताको बतलावेंगे ।

§ २७७ यह सूत्र सुगम है ।

* जब तक अन्तर नहीं करता है तब तक कोई विभिन्नता नहीं है ।

§ २७८ यह सूत्र सुगम है ।

* अन्तर करने वाला क्षपक नपुंसकवेदकी प्रथम स्थिति स्थापित करता है ।

§ २७९ यह एक विभिन्नता यहाँपर जानना चाहिये, क्योंकि यहाँपर स्त्रीवेद और पुरुषवेदको छोड़कर एक नपुंसकवेदकी ही प्रथम स्थिति स्थापित करता है । अब इस नपुंसक-वेदकी प्रथम स्थितिके प्रमाणविशेषका अवधारण करनेकेलिये इस सूत्रको कहते हैं—

* जम्महंती इत्थिवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स पढमट्ठिदी तम्महंती णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स पढमट्ठिदी।

§ २८० इत्थीवेदोदयक्खवगस्स इत्थीवेदपढमट्ठिदीए सह णवुंसयवेदोदयक्खवगस्स णवुंसयवेदपढमट्ठिदी सरिसपमाणा चेव होदि, णाण्णारिसि त्ति वुत्तं होइ। संपहि एदिस्से पढमट्ठिदीए अब्भंतरे णवुंसयवेदमित्थीवेदं च खवेमाणो किमक्कमेण खवेदि, आहो कमेणेत्ति आसंकाए णिरारेगीकरणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो—

* तदो अंतरदुसमयकदे णवुंसयवेदं खवेदुमाढत्तो।

§ २८१ सुगमं।

* जद्देही पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स खवणद्धा तद्देही णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स खवणद्धा गदा; ण ताव णवुंसयवेदो खीयदि।

§ २८२ पुरिसवेदोदयक्खवगस्स णवुंसयवेदक्खवणद्धामेत्ते काले गदे वि एदस्स णवुंसयवेदोदयक्खवगस्स णवुंसयवेदो ण ताव खीयदि, अप्पणो पढमट्ठिदीए

---

* स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकको स्त्रीवेदकी जितनी बड़ी प्रथम स्थिति होती है; नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके नपुंसकवेदकी उतनी बड़ी प्रथम स्थिति होती है।

§ २८० स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके स्त्रीवेदकी प्रथम स्थितिके साथ नपुंसकवेदके उदयसे क्षपक श्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके नपुंसकवेदकी प्रथम स्थिति सदृश प्रमाणवाली ही होती है, अन्य प्रकारकी नहीं; यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इस प्रथमस्थितिके भीतर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका क्षय करनेवाला क्या अक्रमसे क्षय करता है या क्या क्रमसे क्षय करता है? ऐसी आशंका होनेपर निःशंक करनेकेलिये आगेका सूत्रप्रबन्ध आया है—

* तदनन्तर अन्तर करनेके दूसरे समयमें नपुंसकवेदका क्षय करनेकेलिये आरम्भ करता है।

§ २८१ यह सूत्र सुगम है।

* पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाले क्षपकके नपुंसकवेदका क्षपणाकाल जितना बड़ा होता है, नपुंसकवेदके उदयसे क्षपक श्रेणिपर चढ़नेवाले क्षपकके नपुंसकवेदका उतना बड़ा क्षपणाकाल व्यतीत हो जाता है तो भी नपुंसकवेदका क्षय नहीं होता है।

§ २८२ पुरुषवेदके उदयसे क्षपक श्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके नपुंसकवेदके क्षपणाकालप्रमाण कालके बीत जानेपर भी इस नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाले क्षपकके नपुंसक-

अज्ज वि अंतोमुहुत्तमेत्तीए उवरि संभवादो त्ति वुत्तं होदि। एत्तो परमित्थीवेदस्स वि खवणमाढविय दो वि खवेमाणो अप्पणो पढमट्ठिदीए चरिमसमये जुगवमेव दोण्हं वि चरिमफालीओ खवेदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

* तदो से काले इत्थीवेदं खवेदुमाढत्तो णवुंसयवेदं पि खवेदि।

* पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स जम्हि इत्थीवेदो खीणो तम्हि चेव णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेद-णवुंसयवेदा च दो वि सह खिज्जंति[1]।

* तदो अवगदवेदो सत्तकम्मंसे खवेदि।

* सत्तण्हं कम्माणं तुल्ला खवणद्धा।

* सेसेसु पदेसु जधा पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स अहीणमदिरित्तं तत्थ णाणत्तं।

§ २८३ गतार्थत्वान्नात्र किंचिद् व्याख्येयमस्ति, अनिवृत्तिकरणपरिणमनान्नाना-जीवविषयाणां त्रिष्वपि कालेषु विलक्षणभावासंभवे कथमयं नानात्वविचाराभिनिवेशो

वेदका तो क्षय होता नहीं, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अपनी प्रथम स्थिति अभी भी आगे सम्भव है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इससे आगे स्त्रीवेदकी भी क्षपणाका आरम्भ कर दोनोंका ही क्षय करता हुआ अपनी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें एकसाथ ही दोनों की भी अन्तिम फालियों को क्षपणा करता है; इस बातका ज्ञान करानेकेलिये आगेके सूत्रको प्रारम्भ करते हैं—

* पश्चात् अनन्तर समयमें जब स्त्रीवेदका क्षय करनेकेलिये आरम्भ करता है तब नपुंसकवेदका भी क्षय करता है।

* पुरुषवेदके उदयसे क्षपक श्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके जिस समय स्त्रीवेद क्षीण होता है नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपकके उसी समय स्त्रीवेद और नपुंसकवेद दोनों ही एक साथ क्षयको प्राप्त होते हैं।

* तत्पश्चात् अपगतवेदी होकर सात नोकषायोंरूप कर्मोंको क्षय करता है।

* सात कर्मोंका क्षपणाकाल तुल्य है।

* शेष पदोंमें जैसी विधि पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेवाले क्षपककी कह आये हैं वैसी ही विधि हीनता और अधिकतासे रहित यहाँ भी जाननी चाहिये।

§ २८३ गतार्थ होनेसे यहां पर कुछ भी व्याख्येय नहीं है, क्योंकि नानाजीव विषयक अनि-वृत्तिकरण परिणामोंके तीनों ही कालोंमें विलक्षणपना असम्भव होनेपर यह नानापनेके विचारका

---

1. खविज्जंति आ०।

घटत इत्याशंकायां दत्तमुत्तरं। वेदकषायोदयभेदमाश्रित्य करणपरिणामानामभिन्नस्वभावानामपि यथोक्तं नानात्वविशिष्टकार्यनिर्वर्तने व्यापाराविरोधादिति । एवमेतावताप्रबंधेन सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानपर्यंतं चारित्रमोहक्षपणाविधिं प्रपंचेन प्ररूप्य साम्प्रतं सूक्ष्मसांपरायचरिमसमयविषयं प्ररूपणावशेषं निरूपयितुमुत्तरं सूत्रप्रबन्धमाचष्टे ।

* जाधे चरिमसमयसुहुमसांपराइयो जादो ताधे णामागोदाणं ट्ठिदिबंधो अट्ठ मुहुत्ता ।

* वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो बारस मुहुत्ता ।

* तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं ।

* तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं अंतोमुहुत्तं ।

* णामागोदवेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममसंखेज्जाणि वस्साणि ।

§ २८४ गतार्थत्वान्नात्र किंचिद् व्याख्येयमस्ति ।

* मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं णस्सदि ।

अभिनिवेश कैसे घटित होता है ? ऐसी आशंका होनेपर उत्तर दे आये हैं कि वेदों और कषायोंके उदय-सम्बन्धी भेदका आश्रय करके करणपरिणामोंके अभिन्नस्वभाववाला होनेपर भी यथोक्तरूपसे नानारूप कार्योंके रचनारूप व्यापारके होनेसे विरोध नहीं आता । इस प्रकार इतने प्रबन्धद्वारा सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान पर्यन्त विस्तारके साथ चारित्रमोह के विषयमें क्षपणाविधिका प्ररूपण करके अब सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समय विषयक प्ररूपणासम्बन्धी अवशेष कथनका निरूपण करनेके लिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* जब अन्तिम समयवर्ती सूक्ष्मसाम्परायिक हो जाता है तब नामकर्म और गोत्रकर्मका स्थितिबन्ध आठ मुहूर्त होता है ।

* वेदनीयकर्मका स्थितिबन्ध बारह मुहूर्त होता है ।

* तीन घातिकर्मोंका स्थितिबन्ध अन्तर्मुहूर्त होता है ।

* तीन घातिकर्मोंका स्थितिसत्त्व अन्तर्मुहूर्त होता है ।

* नाम, गोत्र और वेदनीयकर्मका स्थितिसत्त्व असंख्यात वर्षप्रमाण होता है ।

§ २८४ गतार्थ होनेसे यहाँपर कुछ व्याख्यान करनेयोग्य नहीं है ।

* मोहनीयकर्मका स्थितिसत्त्व नाशको प्राप्त होता है ।

§ २८५ सुहुमसांपराइयद्धाए संखेज्जभागमेत्तावसेसे गुणसेढिसीसएण सह मोहणीयचरिमफालिं घादिय तदो जहाकममधट्ठिदीए सगद्धावसेसमेत्तीओ गुणसेढिगोवुच्छाओ अणुसमयमोवट्टिज्जमाणसुहुमकिट्टीसरूवाणुभागसहगदाओ गालेमाणस्स सुहुमसांपराइयखवगस्स चरिमसमये मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्ममणुभागपदेसाविणाभाविखविज्जमाणं णिरवसेसमेव विणस्सदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसंगहो। एदं च सुत्तमुप्पादाणुच्छेदं दव्वट्ठियणयणिबंधणमवलंबियूण पयट्टमिदि दट्ठव्वं, सुहुमसांपराइयचरिमसमये संतोदयेहिं विज्जमाणस्सेव मोहणीयस्स णिम्मूलविणासोवएसादो। एवं च सुहुमसांपराइयगुणट्ठाणमणुपालिय तत्थेव चरिमसमये जहावुत्तेण विहिणा मोहणीयं पढमसुक्कज्झाणपरिणामेहिं णिम्मूलविणासिय तदणंतरसमए खीणकसायगुणट्ठाणं पडिवज्जदि त्ति परूवणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाढवेइ—

* तदो से काले पढमसमयखीणकसायो जादो।

§ २८६ चरित्रमोहनीयपरिक्षयानन्तरसमये द्रव्यभावभेदभिन्नाशेषकषायवर्गोपरमात् प्रतिलब्धक्षीणकषायव्यपदेशो यथाख्यातविहारशुद्धिसंयममनुप्राप्तः प्रथमसमयनिर्ग्रन्थवीतराग-गुणस्थानमेष प्रतिपन्न इत्ययमत्र सूत्रार्थसंग्रहः। भवति चात्र क्षीणकषायगुणस्थानस्वरूपनिरूपणाय गाथा—

---

§ २८५ सूक्ष्मसाम्परायिकके कालके संख्यातवें भागके शेष रहनेपर गुणश्रेणिशीर्षके साथ मोहनीयकर्मकी अन्तिम फालिका नाशकर तदनन्तर क्रमसे अधःस्थितिकेद्वारा अपने कालके बराबर अवशेष रहीं गुणश्रेणिगोपुच्छाओंको प्रतिसमय अपवर्तमान सूक्ष्मसाम्परायिकस्वरूप अनुभागकृष्टियोंके साथ गलानेवाले सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपकके अन्तिम समयमें मोहनीयकर्मके अनुभाग और प्रदेशोंके अविनाभावी क्षयको प्राप्त होनेवाला स्थितिसत्कर्म पूरी तरहसे विनष्ट हो जाता है। इस प्रकार यह इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है। यहाँपर यह सूत्र उत्पादानुच्छेदद्रव्यार्थिकनयका अवलम्बन लेकर प्रवृत्त हुआ यह जानना चाहिये, क्योंकि सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानके अन्तिम समयमें सत्त्व और उदयरूपसे विद्यमान इस मोहनीयकर्मके निर्मूल विनाशका उपदेश पाया जाता है। इस प्रकार सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानका पालन करके वहींपर अन्तिम समयमें यथोक्त विधिसे प्रथम शुक्लध्यानरूप परिणामोंकेद्वारा मोहनीयकर्मका निर्मूल विनाशकरके तदनन्तर समयमें क्षीणकषायगुणस्थानको प्राप्त होता है, इस बातका कथन करनेकेलिये आगेके सूत्रप्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

* उसके बाद तदनन्तर समयमें प्रथम समयवर्ती क्षीणकषाय हो जाता है।

§ २८६ चरित्रमोहनीयकर्मके क्षय होनेके अनन्तर समयमें द्रव्य और भावके भेदसे भिन्न जो सम्पूर्ण कषायवर्ग, उसके उपरम होनेसे जिसने क्षीणकषाय संज्ञाको प्राप्त किया है ऐसा यह जीव यथाख्यातविहारशुद्धिसंयमको प्राप्तकर प्रथम समयमें निर्ग्रन्थ वीतरागगुणस्थानको प्राप्त हुआ। यह यहाँपर इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है। यहाँपर क्षीणकषाय गुणस्थानके स्वरूपका निरूपण करनेकेलिये एक गाथा पायी जाती है—

णिस्सेसखीणमोहो फलिहामलभायणुदयसमचित्तो ।
खीणकसाओ भण्णइ णिग्गंथो वीयरागेहिं ॥

तदेवं लक्षणं क्षीणकषायगुणस्थानं प्रतिपद्य तत्प्रथमसमये वर्तमानस्यास्य क्षपकस्य करणीयविशेषप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रावतारः——

* ताधे चेव ट्ठिदि-अणुभागपदेसस्स अबंधगो ।

§ २८७ तदवस्थायामेव सर्वकर्मणां स्थित्यनुभवप्रदेशानामबंधक इत्युक्तं भवति । कषाये हि स्थित्यादिबंधकारणं, तस्य तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् । ततः कषाय-परिणामसंक्लेशापगमान्नास्य स्थित्यादिबंधसंभव इति सुनिरूपितमेतत् । पयडिबंधो पुण जोगमेत्तणिबंधणो खीणकसाये वि संभवदि त्ति ण तस्स पडिसेहो एत्थ कदो । सो वि वेदणीयस्सेव । सादावेदणीयं मोत्तूणण्णासिं पयडीणमेत्थ बंधाणुवलंभादो । सो पुण सुक्ककुड्डपदिदमुट्ठिवालुवबंधाणंतरसमये चेव गलदि[1], ट्ठिदिअणुभागबंधकारण-कसायसंसग्गाभावेण ढुक्कबिदियसमये चेव इरियावहबंधस्स णिज्जरोवएसादो । एत्थ

जिसने सम्पूर्ण मोहनीयकर्मका क्षय कर दिया है, जिसका चित्त स्फटिक मणिके निर्मल भाजनमें रखे हुए जलके समान निर्मल है वह वीतराग जिन-देवकेद्वारा निर्ग्रन्थ वीतराग गुणस्थानवाला कहा जाता है ।

इस प्रकार ऐसे लक्षणसे युक्त क्षीणकषाय गुणस्थानको प्राप्तकर करणीय विशेषका प्रति-पादन करनेकेलिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

* उसी समय सभी कर्मोंके स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका अबन्धक होता है ।

§ २८७ उसी अवस्थामें सब कर्मोंके स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंका अबन्धक होता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । कषाय ही स्थितिबन्ध आदिका कारण है, क्योंकि कषायके होनेपर स्थिति-बन्ध आदि होता है और उसके अभाव में नही होता है । एक स्थिति आदिबन्धका कषायके साथ अन्वय-व्यतिरेक सम्बन्ध है, इसलिये कषायरूप परिणामके संक्लेषका अभाव हो जानेसे इस क्षपकके स्थिति आदिका बन्ध सम्भव नहीं है । इस प्रकार यह अच्छी तरह कहा गया है । परन्तु प्रकृतिबन्ध योगनिमित्तक क्षीणकषायगुणस्थानमें भी सम्भव है, इसलिये उसका यहाँ प्रतिषेध नहीं किया गया है । सो वह भी वेदनीयकर्मका ही होता है, क्योंकि सातावेदनीय कर्मको छोड़कर अन्य प्रकृतियोंका यहाँ पर बन्ध नहीं पाया जाता । परन्तु वह सूखी दीवालपर गिरी हुई मुट्ठी भर धूलके समान बन्धके अनन्तर समयमें ही गल जाती है, क्योंकि स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धके कारण कषायोंके संसर्गका अभाव होनेसे प्राप्त हुए दूसरे समयमें ही ईर्यापथबन्धको निर्जराका उपदेश पाया जाता है ।

---

१. गलिदट्ठिदि प्रेसकापीप्रतौ ।

जहा वग्गणाए इरियावहकम्मस्स लक्खणपरूवणा वित्थरेण कदा तहा चेव सवित्थरमणुमग्गियव्वा, विसेसाभावादो।

§ २८८ हेट्ठिमासेसगुणसेढिणिज्जराहिंतो एदस्स गुणसेढिणिज्जरा असंखेज्जगुणा होदूण पयट्टदि त्ति वत्तव्वा, संकसायपरिणामणिबंधणगुणसेढिणिज्जराहिंतो अकसायपरिणाम-णिबंधणगुणसेढिणिज्जराए एदिस्से असंखेज्जगुणत्तसिद्धीए बाहाणुवलंभादो।

§ २८९ संपहि खीणकसायपढमसमये कीरमाणाणं कज्जभेदाणमेदेण सुत्तेण सूचिदाणमणुगमं कस्सामो। तं जहा—ताधे चेव तिण्हं घादिकम्माणमंतोमुहुत्तमेत्तायाममण्णं ट्ठिदिखंडयमागाएदि, तेसिं चेव घादिद-सेसाणुभागस्साणंता भागमेत्तमणुभागखंडयं च गेण्हइ। णामागोदवेदणीयाणं सेसट्ठिदिसंतकम्मस्सासंखेज्जभागमेत्तं ट्ठिदिखंडयं तेसिं चेव अप्पसत्थपयडीणमणुभागसंतकम्मस्साणंतभागमेत्तमणुभागखंडयं च गेण्हइ। पढमसमयखीणकसाओ छण्हं कम्मंसाणं पदेसपिंडमोकड्डियूण गुणसेढिविण्णासं करेमाणो उदये पदेसग्गं थोवं देदि, से काले असंखेज्जगुणं णिक्खिवदि। एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए णिक्खिवमाणो गच्छदि जाव खीणकसायद्धाए उवरि संखेज्जदिभागमेत्तमद्धाणं गंतूण गुणसेढिसीसयं जादं त्ति।

जिस प्रकार वर्गणाखण्डमें ईर्यापथकर्मके लक्षणकी प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार विस्तारके साथ यहाँ पर जान लेनी चाहिये, क्योंकि उस कथनसे इस कथनमें कोई विशेषता नहीं है।

§ २८८ पहलेकी समस्त गुणश्रेणि-निर्जराओं से इस क्षपककी गुणश्रेणिनिर्जरा असंख्यातगुणी होकर प्रवृत्त होती है ऐसा यहाँ जानना चाहिये, क्योंकि कषायसहित परिणामोंके निमित्तसे जो गुणश्रेणि-निर्जरा होती है उससे अकषाय परिणामके निमितसे जो यह गुणश्रेणिनिर्जरा होती है उसके असंख्यातगुणी सिद्ध होनेमें बाधा नहीं पायी जाती।

§ २८९ अब क्षीणकषाय गुणस्थानके प्रथम समयमें किये जानेवाले और इस सूत्रद्वारा सूचित होनेवाले कार्यभेदोंका अनुगम करेंगे। यथा—उसी समय तीन घातिकर्मोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयामवाले अन्य स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता है तथा घात करनेसे शेष बचे उन्हीं कर्मोंके अनुभागसम्बन्धी अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभागकाण्डकको ग्रहण करता है। नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मोंके शेष रहे स्थितिसत्कर्मके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिकाण्डकको तथा उन्हीं अप्रशस्त प्रकृतियोंसम्बन्धी अनुभागसत्कर्मके अनन्त बहुभागप्रमाण अनुभागकाण्डकको ग्रहण करता है। तथा प्रथम समयवर्ती क्षीणकषाय क्षपक छह कर्मोंके प्रदेशपिण्डका अपकर्षण करके गुणश्रेणिकी रचना करता हुआ उदयमें थोड़े प्रदेशोंका निक्षेप करता है; अनन्तर समयमें असंख्यातगुणे प्रदेशोंका निक्षेप करता है। इस प्रकार असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे निक्षेप करता हुआ जाता है, जब जाकर क्षीणकषाय गुणस्थानके कालके ऊपर संख्यातवें भागप्रमाण स्थान जाकर गुणश्रेणि शीर्ष प्राप्त होता है।

---

१. 'वट्टव्वा' प्रेसकापीप्रति।

§ २९० पुणो गुणसेढिसीसयादो उवरिमाणंतरट्ठिदीए वि असंखेज्जगुणं णिक्खिवदि, ओकड्डिददव्वस्सासंखेज्जे भागे गुणसेढिसीसयादो उवरिमद्धाणेण खंडिदेयखंडस्स तत्थ णिवदमाणस्स गुणसेढीसीसयदव्वादो असंखेज्जगुणत्तसिद्धीए बाहाणुवलंभादो। तदो उवरि सव्वत्थ विसेसहीणं चेव णिक्खिवदि जाव अप्पप्पणो चरिमट्ठिदिमइच्छावणावलियामेत्तेण अपत्तो त्ति। एवं बिदियादिसमयेसु वि अवट्ठिदगुणसेढिपरूवणा जाणिय कायव्वा। सेसं जहा दंसणमोहक्खवणाए सम्मत्तस्स भणिदं तहा चेव णिरवसेसमेत्थ वि घादिकम्माणं वत्तव्वं, विसेसाभावादो।

§ २९१ एवमेदीए परूवणाए खीणकसायद्धमणुपालेमाणस्स जाधे खीणकसायद्धाए संखेज्जदिभागो सेसो ताधे तिण्हं घादिकम्माणमपच्छिमट्ठिदिखंडयमंतोमुहुत्तायामेण गेण्हमाणो खीणकसायद्धासेसमेत्तं मोत्तूण अवट्ठिदगुणसेढिसीसएण सह उवरिं संखेज्जगुणाओ ट्ठिदीओ घेत्तूण चरिमट्ठिदिखंडयं णिव्वत्तेदि त्ति गेण्हियव्वं। तत्थ दिज्जमाण-दिस्समाणपरूवणाए सम्मत्तचरिमट्ठिदिखंडयभंगो। तदो चरिमट्ठिदिखंडये णिवदिदे तत्तो परं तिण्हं घादिकम्माणं गुणसेढिकिरिया णत्थि, केवलं तु उदयावलियबाहिरट्ठिदिपदेसग्गमसंखेज्जगुणाए सेढीए उदीरेमाणो गच्छदि जाव समयाहियावलियछदुमत्थो त्ति। तत्तो परमुदीरणा णत्थि;

---

§ २९० पुनः गुणश्रेणिशीर्षसे उपरिम अनन्तर स्थितिमें भी असंख्यातगुणे प्रदेशोंको निक्षिप्त करता है, क्योंकि अपकर्षित किये गये द्रव्यके असंख्यात बहुभागको गुणश्रेणिशीर्षसे जो उपरिम अध्वान (उपरितन स्थिति) है उससे भाजित करनेपर जो एक भाग प्राप्त हो उसको उपरिम अनन्तर स्थितिमें निक्षिप्त करनेपर वह गुणश्रेणिशीर्षसम्बन्धी द्रव्यसे असंख्यातगुणा सिद्ध होता है, इसमें कोई बाधा नहीं पायी जाती। इसके बाद ऊपर सर्वत्र तब तक विशेषहीन द्रव्यका निक्षेप करता है जब तक अतिस्थापनावलिप्रमाणरूपसे अन्तिम स्थितिको नहीं प्राप्त होता इसी प्रकार द्वितीयादि समयोंमें भी अवस्थित गुणश्रेणिकी प्ररूपणा करनी चाहिये। शेष कथन, जिस प्रकार दर्शनमोहनीयकी क्षपणामें सम्यक्त्वप्रकृतिका कहा गया है उस प्रकारसे यहाँ पर पूरी तरहसे घातिकर्मोंका भी करना चाहिये, क्योंकि उससे इस कथनमें कोई विशेषता नहीं है।

§ २९१ इस प्रकार इस प्ररूपणाद्वारा क्षीणकषाय गुणस्थानके कालका पालन करनेवाले क्षपकके जब क्षीणकषाय गुणस्थानके कालमें संख्यातवां भाग शेष रहता है तब तीनों घातिकर्मोंके अन्तमुंहूर्तआयामरूप अन्तिम स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता हुआ क्षीणकषाय गुणस्थानके कालप्रमाण शेषकालको छोड़कर अवस्थित गुणश्रेणिशीर्षके साथ उपरिम संख्यातगुणी स्थितियोंको ग्रहणकर अन्तिम स्थितिकाण्डककी रचना करता है, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। उसमे दिये जानेवाले और दिखनेवाले कर्मप्रदेशोंकी प्ररूपणा सम्यक्त्वप्रकृतिके अन्तिम स्थितिकाण्डकके समान जानना चाहिये। तदनन्तर स्थितिकाण्डकके पतित होनेपर तत्पश्चात् तीनों घातिकर्मोंकी गुणश्रेणिरचना नहीं होती, केवल उदयावलिके बाहरकी स्थितिके प्रदेशपुञ्जकी असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे उदीरणा, छद्मस्थके एक समय अधिक एक आवलिकाल शेष रहने तक, करता जाता है; उसके बाद उदीरणा नहीं

कम्मोदयेणेव णिज्जरेदि त्ति घेत्तव्वं। संपहि एदस्सेवत्थविसेसस्स फुडीकरणट्ठमुत्तर-सुत्तमोइण्णं—

*** एवं जाव चरिमसमयाहियावलियछदुमत्थो ताव तिण्हं घादि-कम्माणमुदीरगो।**

§ २९२ एवमेदीए अणंतरपरूविदासेसपरूवणाए उवलक्खिओ ताव तिण्हं घादि-कम्माणमुदीरगो जाव समयाहियावलियचरिमसमयछदुमत्थो त्ति, तत्तो परं कम्मोदयं मोत्तूण घादिकम्माणमावलियपविट्ठपदेससंतकम्मस्सुदीरणासंभवादो त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो। अत्रान्तर्मुहूर्तकालं क्षीणकषायस्य प्रथमशुक्लध्यानानुसंधानपूर्विका द्वितीयशुक्लध्यानपरिणतिर्विस्तरतोऽनुगंतव्या, सुविशुद्धशुक्लध्यानपरिणाममंतरेण कर्म-निर्मूलनानुपपत्तेरिति। अत्रोपयोगिनौ श्लोकौ—

शान्तक्षीणकषायस्य पूर्वज्ञस्य त्रियोगिनः।
शुक्लाद्यं शुक्ललेश्यस्य मुख्यं संहननस्य तत् ॥२॥
द्वितीयस्याद्यवत्सर्वं विशेषस्त्वेकयोगिनः।
विघ्नावरणरोधार्थं क्षीणमोहस्य तत्स्मृतम् ॥३॥

इति

होती, केवल कर्मोंकी उदयरूपसे ही निर्जरा होती है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। अब इसी अर्थविशेषको स्पष्टकरनेकेलिये आगेका सूत्र अवतीर्ण हुआ है—

*** इस प्रकार जब तक छद्मस्थके एक समय अधिक एक आवलिकाल शेष रहता है तब तक तीन घातिकर्मोंका उदीरक होता है।**

§ २९२ इस प्रकार इस अनन्तर पूर्व कही गई सम्पूर्ण प्ररूपणासे उपलक्षित यह क्षपक तब तक तीन घातिकर्मोंका उदीरक होता है जब तक कि छद्मस्थके एक समय अधिक एक आवलिकाल शेष रहता है, क्योंकि उससे आगे कर्मोदयको छोड़कर घातिकर्मोंकी उदयावलिमें प्रविष्ठ हुए सत्कर्मको उदीरणा असम्भव है, यह इस सूत्रका भावार्थ है। यहाँ पर अन्तर्मुहूर्तकाल तक क्षीणकषाय क्षपकके प्रथम शुक्लध्यानके अनुसन्धानपूर्वक दूसरे शुक्लध्यानकी परिणतिको विस्तारसे जान लेना चाहिये, क्योंकि सुविशुद्ध शुक्लध्यानरूप परिणामके बिना कर्मका निर्मूलन करना नहीं बन सकता है। यहाँ पर दो उपयोगी श्लोक हैं—

जिसकी कषाय उपशान्त या क्षीण हो गई है, जो पूर्वज्ञ है, तीन योगवाला और शुक्ल लेश्यावाला है तथा जो आदिके तीनमें से कोई एक संहननवाला है या मात्र वज्रर्षभसंहननवाला है, उसके प्रथम शुक्लध्यान होता है ॥ २ ॥

तथा जो द्वितीय शुक्लध्यानवाला होता है उसके अन्य सब बातें पहले शुक्लध्यानके समान होती हैं। मात्र उसके इतनी विशेषता होती है कि उसके तीनमें से कोई एक योग पाया जाता है। इस प्रकार अन्तराय कर्म तथा ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मका निरोध करनेकेलिये यह सब विशेषता क्षीणमोह जिनके जान लेनी चाहिये ॥ ३ ॥

§ २९३ संपहि एत्तो उवरि कीरमाणकज्जभेदपदुप्पायणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो—

* तदो दुचरिमसमये णिद्दापयलाणमुदयसंतवोच्छेदो ।

§ २९४ खीणकसायस्स चरिमसमयादो हेट्ठिमाणंतरसमयो दुचरिमसमयो णाम । तम्हि दोण्हमेदासिं दंसणावरणपयडीणमक्कमेण संतोदयवोच्छेदो जादो त्ति वुत्तं होइ । कधं पुण एदस्स खीणकसायस्स बिदियसुक्कज्झाणग्गिणा घादिकम्मिंधणाणि दहमाणस्स एदम्मि अवत्थंतरे णिद्दापयलाणमुदयवोच्छेदसंभवो, झाणपरिणामविरुद्ध-सहावत्तादो त्ति णासंकणिज्जं, अवत्तव्वसरूवस्स तदुदयस्स झाणोवजुत्तेसु संभवं पडि विरोहाभावादो । तम्हा एसो खीणकसाओ सगद्धाए आदीदो प्पहुडि केत्तियं पि कालं पढमसुक्कज्झाणं पुधत्तवियक्कवीचारसण्णिदमणुपालिय तदो सगद्धाए संखेज्जदिभागा-वसेसे बिदियसुक्कज्झाणमेयत्तवियक्कवीचारसण्णिदमत्थवंजणजोगसंकंतिविरहिदमणु-संधेयूण ज्झायमाणो अवट्ठिदजहाक्खादविहारसुद्धिसंजमपरिणामत्तादो अवट्ठिदगुणसेढि-णिक्खेवेण पडिसमयमसंखेज्जगुणं कम्मणिज्जरं करेमाणो अप्पणो दुचरिमसमये णिद्दा-

---

§ २९३ अब इससे आगे किये जाने वाले कार्योंके भेदोंका प्रतिपादन करनेकेलिये आगेका सूत्र प्रबन्ध आया है—

* तत्पश्चात् क्षीणकषायगुणस्थानके द्विचरम समयमें निद्रा और प्रचलाकी उदय और सत्त्वव्युच्छित्ति होती है ।

§ २९४ क्षीणकषायगुणस्थानके अन्तिम समयसे पूर्व अनन्तर समयका नाम द्विचरम समय है। उस कालमें इन दोनों दर्शनावरणसम्बन्धी प्रकृतियोंकी युगपत् उदय और सत्त्वव्युच्छित्ति हो जाती है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—दूसरे शुक्लध्यानरूपी अग्निकेद्वारा घातिकर्मरूपी ईंधनको जलानेवाले इस क्षीण-कषाय जीवके इस अवस्थाविशेषमें निद्रा और प्रचला प्रकृतियोंकी उदयव्युच्छित्ति कैसे सम्भव है, क्योंकि इन प्रकृतियोंके उदयसे होनेवाले परिणाम ध्यानपरिणामके विरुद्ध स्वभाववाले हैं ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि इन दोनों प्रकृतियोंका उदय इस स्थानमें अवक्तव्यस्वरूप है, इसलिये ध्यानमें उपयुक्त हुए क्षपक जीवोंमें उसके स्वभाव होनेमें कोई विरोध नहीं पाया जाता ।

इसलिये यह क्षीणकषाय क्षपक अपने कालमें प्रारम्भसे लेकर कितने ही काल तक पृथ-क्त्ववितर्कवीचार संज्ञावाले प्रथम शुक्लध्यानको पालन करके तदनन्तर अपने कालमें संख्यातवेंभाग-प्रमाण कालके शेष रहनेपर अर्थ, व्यंजन और योगकी संक्रान्तिसे रहित एकत्ववितर्क-अवीचार संज्ञा-वाले दूसरे शुक्लध्यानका अनुसन्धानपूर्वक ध्यान करता हुआ अवस्थित यथाख्यातविहारशुद्धिसंयम-रूप परिणामवाला होनेसे अवस्थित गुणश्रेणिनिक्षेपद्वारा प्रतिसमय असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा करता हुआ अपने द्विचरमसमयमें निद्रा और प्रचलाकी सत्त्व और उदयव्युच्छित्ति करता है। इस प्रकार यह

यकाणं संतोदयवोच्छेदं कुणदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसंगहो। संपहि खीणकसाय-चरिमसमये कीरमाणकज्जभेदपदुप्पायणट्टमुत्तरसुत्तावयारो—

*** तदो णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमेगसमएण संतोदय-वोच्छेदो।**

§ २९५ तिण्हमेदेसिं घादिकम्माणमेयत्तवियक्कावीचारसुक्कज्झाणेण जहाकमं खविज्जमाणाणं खीणकसायचरिमसमए अक्कमेण संतोदयाणमच्चंतुच्छेदो जादो त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसंगहो। घादिकम्माणं व अघादिकम्माणं पि एत्थेव खीणकसाय-चरिमसमये णिम्मूलपरिक्खओ किण्ण जायदे, कम्मत्तं पडि विसेसाभावादो त्ति णासंकणिज्जं, घादिकम्माणं व अघादिकम्माणं विसेसघादाभावेण तेसिमज्ज वि पलिदो-वमस्सासंखेज्जदिभागमेत्तट्ठिदिसंतकम्मस्स समुवलंभादो। ण च तत्थ विसेसघादाभावो असिद्धो, घादिकम्माणं व तेसिं सुट्टु अप्पसत्थभावाभावमस्सियूण तत्थ विसेसघादा-भावसमत्थणादो। तम्हा घादिकम्मत्ताविसेसे वि जहा मोहणीयस्सेव सुट्टु अप्पसत्थ-भावेण पुव्वमेव विसेसघादवसेण सुहुमसांपराइयचरिमसमये विणाससिद्धी एवं कम्मत्ता-विसेसे वि अघादिकम्मपरिहारेण घादिकम्माणं चेव विदियसुक्कज्झाणाणलसिहाकवलि-

---

यहाँ पर सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है। अब क्षीणकषायगुणस्थानके अन्तिम समयमें किये जानेवाले कार्यभेदका कथन करनेकेलिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** तदनन्तर ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मोंकी एक समयद्वारा सत्त्व और उदयव्युच्छित्ति हो जाती है।**

§ २९५ एकत्ववितर्क-अवीचार ध्यानद्वारा क्रमसे क्षयको प्राप्त होनेवाले इन तीनों घाति-कर्मोंकी क्षीणकषाय गुणस्थानके अन्तिम समयमें युगपत् सत्त्व और उदयकी व्युच्छित्ति हो जाती है। इस प्रकार यह यहाँ इस सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है।

शंका—जैसे घातिकर्मोंका यहाँ पर क्षय हो जाता है उसी प्रकार अघातिकर्मोंका भी यहीं क्षीणकषाय गुणस्थानके अन्तिम समयमें निमूॅल क्षय क्यों नहीं हो जाता, क्योंकि कर्मपनेकी अपेक्षा उन दोनोंमें कोई भेद नहीं है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि घातिकर्मोंके समान अघातिकर्मोंका विशेष घात नहीं होनेके कारण उनका अब भी पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिसत्कर्म समुपलब्ध होता है। और इन कर्मोंके विशेष घातका अभाव असिद्ध नहीं है, क्योंकि घातिकर्मोंके समान उनमें विशेष अप्रशस्तपनेका अभाव है, इसलिये इस अपेक्षासे उनके विशेष घातके अभावका समर्थन होता है। इसलिये घातिकर्मपनेकी अपेक्षा विशेषता न होनेपर भी जैसे मोहनीयकर्मके अत्यन्त अप्रशस्तपनेके कारण पहले ही विशेषघातवश सूक्ष्मसाम्परायिकके अन्तिम समयमें विनाशकी सिद्धि होती है। इस प्रकार कर्मपनेकी अपेक्षा विशेषता न होनेपर भी अघातिकर्मोंको छोड़कर शुक्लध्यान-

याणं खीणकसायचरिमसमये उप्पादाणुच्छेदणयेण णिम्मूलपरिक्खओ त्ति सिद्धं। एत्थ 'खओ' त्ति वुत्ते कम्मक्खंधाणं जीवावयवेहिं सह बंधं पडि एयत्तेण परिणदाणं बंधकारणपडिवक्खमोक्खकारणपरिणामजंतेहिं पेल्लिज्जमाणाणं जीवादो जं णिम्मूलदो ओसरणं सो खओ त्ति घेत्तव्वो, जीवादो पुधभावेण अकम्मसरूवेण परिणदाणं पि कम्मपोग्गलाणं पोग्गलसरूवेण परिक्खयाणुवलंभादो। ततो यथा मणेर्मलादेर्व्यावृत्तिः क्षयः, सतोऽत्यन्तविनाशानुपपत्तेस्तादृगात्मनोऽपि कर्मणां निवृत्तौ परिशुद्धिः।

* एत्थुद्देसे खीणमोहद्धाए पडिबद्धा एक्का मूलगाहा विहासियव्वा।[1]

§ २९६ पत्तावसरत्तादो।

* तिस्से समुक्कित्तणा।

* (१७९) खीणेसु कसायेसु य सेसाणं के व होंति वीचारा।
खवणा वा अखवणा वा बंधोदयणिज्जरा वापि ॥२३२॥

रूपी अग्निशिखाकेद्वारा कवलित हुए घातिकर्मोंका ही क्षीणकषायके अन्तिम समयमें उत्पादानुच्छेद-नयकी अपेक्षा निर्मूल क्षय हो जाता है, यह सिद्ध होता है।

यहाँ पर 'क्षय' ऐसा कहनेपर कर्मस्कन्ध संसारी जीवोंके समस्त प्रदेशोंके साथ बन्धकी अपेक्षा एक रूपसे परिणत हो रहे हैं, बन्धके कारणोंके प्रतिपक्षभूत मोक्ष के कारणरूप परिणामरूप यन्त्रकेद्वारा पेले आनेवाले उनका जीवसे पूरी तरहसे अपसरण हो जाना, उसका नाम क्षय है, ऐसा यहाँ पर ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि जीवसे पृथक् होकर अकर्मरूपसे परिणत हुए कर्मपुद्गलोंका पुद्गलरूपसे सर्वथा क्षय नहीं हो सकता। इसलिये जिस प्रकार मणिसे मलादिककी निवृत्ति क्षय कहलाती है, क्योंकि सत्का सर्वथा विनाश नहीं हो सकता उसी प्रकार आत्मासे भी कर्मोंकी निवृत्ति होनेपर परिशुद्धि होती है।

* इस स्थानपर क्षीणमोहके कालसे सम्बन्ध रखनेवाली एक मूल गाथाकी विभाषा करनी चाहिये।

§ २९६ क्योंकि वह अवसरप्राप्त है।

* उसकी समुत्कीर्तना—

* (१७९) कषायोंके क्षीण हो जानेपर शेष ज्ञानावरणादिकर्मोंके कितने क्रिया-परिणाम होते हैं? उनकी क्षपणा होती है या नहीं होती? बन्ध, उदय और निर्जरा क्या होती है॥ २३२॥

---

१. ता० प्रतौ इदं वाक्यं चूर्णिसूत्ररूपेणोपलभ्यते।

§ २९७ एसा मूलगाहा खीणकसायविसयासेसपरूवणं पुच्छामुहेण परूवेदि। तं जहा—'खीणेसु कसायेसु य' एवं भणिदे अणियट्टिसुहुमसांपराइयगुणट्ठाणेसु पढमसुक्कस्स झाणपरिणामेण जहाकमं कसायेसु पुव्वुत्तेण विहिणा खविदेसु खीण-कसायगुणट्ठाणं पविट्ठस्स तदवत्थाए 'सेसाणं' कम्माणं णाणावरणादिकम्माणं[1] 'के व होंति वीचारा' काओ वा किरियाओ होंति ? 'खवणा वा अखवणा वा बंधोदय-णिज्जरा वा' केसिं कम्माणं केरिसी होदि त्ति सुत्तत्थसंबंधवसेण एसा मूलगाहा खीण-कसायविसयासेसपरूवणं पुच्छामुहेण जाणावेदि त्ति घेत्तव्वं।

§ २९८ एदिस्से मूलगाहाए भासगाहाओ णत्थि, सुबोहत्तादो। तदो एदिस्से अत्थपरूवणा—किट्टीसु एक्कारस मूलगाहाणं[2] अत्थे भण्णमाणे जहा कदा, तहा चेव णिरवसेसं कायव्वा, विसेसाभावादो। णवरि एत्थ ट्ठिदिघादेण १, ट्ठिदिसंतकम्मेण २, उदयेण ३, उदीरणाए ४, ट्ठिदिखंडएण ५, अणुभागखंडयेण ६, एत्तियमेत्ताओ किरियाओ वत्तव्वाओ। 'खवणा वा अखवणा वा' एवं भणिदे एवमेदं पदं कसाएसु खीणेसु खीणकसायगुणट्ठाणे तिण्हं घादिकम्माणं खवणाविहिमघादिकम्माणं च ताधे

---

§ २९७ यह मूल सूत्रगाथा क्षीणकषायविषयक समस्त प्ररूपणाका पृच्छामुखसे कथन करती है। यथा—'खीणेसु कसाएसु य' ऐसा कहनेपर अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानोंमें प्रथम शुक्लध्यानसम्बन्धीध्यानरूप परिणामसे यथाक्रम कषायोंके पूर्वोक्त विधिसे क्षपित हो जानेपर क्षीणकषायगुणस्थानमें प्रविष्ठ हुए जीवके उस अवस्थामें 'सेसाणं' कम्माणं अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मोंके 'के व होंति वीचारा' अर्थात् क्या क्रियापरिणाम होते हैं—'खवणा वा अखवणा वा बंधोदया-णिज्जरा वा' अर्थात् (उन कर्मोंकी) क्षपणा होती है या क्षपणा नहीं होती, बन्ध, उदय और निर्जरा क्या होती है ? किन कर्मोंकी किस प्रकारकी होती है ? इस प्रकार उक्त सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्धके वशसे यह मूल सूत्रगाथा क्षीणकषायगुणस्थानविषयक सम्पूर्ण प्ररूपणाका पृच्छामुखसे ज्ञान कराता है, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये।

§ २९८ इस मूल सूत्रगाथाकी भाष्यगाथाएँ नहीं हैं क्योंकि यह सूत्रगाथा सुबोध है। इसलिये इसकी अर्थप्ररूपणा करते हैं— कृष्टियोंके विषयमें ग्यारह मूल गाथाओंके अर्थके अर्थका कथन करनेपर जिस प्रकार उनका कथन किया है उसी प्रकारका इसका पूरा कथन करना चाहिये। क्योंकि उक्त कथनसे इसके कथनमें कोई विशेषता नहीं है। इतनी विशेषता है कि यहाँपर स्थितिघात १, स्थितिसत्कर्म २, उदय ३, उदीरणा ४, स्थितिकाण्डक ५ और अनुभागकाण्डक ६ इतनी क्रियायें कहनी चाहिये। 'खवणा वा अखवणा वा' ऐसा कहनेपर—इस प्रकार यह पद कषायोंके क्षीण होनेपर क्षीणकषाय गुणस्थानमें तीन घातिकर्मोंकी क्षपणाविधिको और अघातिकर्मोंके क्षपणाके अभावकी

---

१. आ० प्रतौ णाणावरणादीणं इति पाठः।
२. आ० प्रतौ मूलगाहाओ इति पाठः।

खवणाभावं पि उवेक्खदे। 'बंधोदयणिज्जरा वा वि' एदं पदं खीणकसायस्स गुणसेढिणिज्जराविहाणं तत्थ ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसबंधपडिसेहदुवारेण पयडिबंधस्सेव संभवमुदयादीरणविसेसं च सूचेदि त्ति घेत्तव्वं। एवमेत्तिये अत्थे विहासिदे तदो एसा खीणमोहपडिबद्धा मूलगाहा समत्ता भवदि।

* संपहि एत्थेवुद्देसे एक्का संगहणमूलगाहा विहासेयव्वा।[1]

§ २९९ जहावसरपत्तादो। को संगहो णाम? चरित्तमोहणीयस्स वित्थरेण पुव्वं परूविदखवणाए दव्वट्ठियसिस्सजणाणुग्गहट्ठं संखेवेण परूवणा संगहो णाम। तदो पुव्वुत्तासेसत्थोवसंहारमूलगाहा संगहणमूलगाहा त्ति भण्णदे।

* तिस्से समुक्कित्तणा।

* (१८०) संकामणमोवट्टण किट्टी खवणाए खीणमोहंते।
खवणा य आणुपुव्वी बोद्धव्वा मोहणीयस्स ॥२३३॥

उस समय अपेक्षा करता है। 'बंधोदयणिज्जरा वा वि' इस प्रकार यह पद क्षीणकषाय जीवके गुणश्रेणि निर्जराविधिको तथा वहाँ स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धके प्रतिषेधद्वारा प्रकृतिबन्ध सम्बन्धी ही सम्भव उदय और उदीरणाविशेषको सूचित करता है ऐसा यहाँ उक्त पदोंके अर्थको ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार इतने अर्थको विभाषा करनेपर इसके बाद क्षीणमोहसे सम्बन्ध रखनेवाली यह मूल सूत्रगाथा समाप्त होती है।

* अब इस स्थानपर एक संग्रहणी मूल सूत्रगाथाकी विभाषा करनी चाहिये।

§ २९९ क्योंकि वह यथावसर प्राप्त है।

शंका—संग्रह किसका नाम है?

समाधान—चारित्रमोहनीयकी पहले विस्तारसे प्ररूपणा कर आये हैं उसका द्रव्यार्थिक शिष्यजनोंका अनुग्रह करनेकेलिये संक्षेपसे प्ररूपणा करनेका नाम संग्रह है। इसलिये पूर्वोक्त समस्त विषयका थोड़ेमें उपसंहार करनेवाली मूल सूत्रगाथा संग्रहणी मूलगाथा कही जाती है। ऐसा यहाँ समझना चाहिये।

* अब उसकी समुत्कीर्तना करते हैं।

* (१८०) क्षीणमोह गुणस्थानके अन्त होनेके पूर्व तक अर्थात् मोहनीय कर्मके क्षय होनेके अन्त तक संक्रमणा, अपवर्तना और कृष्टिक्षपणाके क्रमसे मोहनीयकर्मकी आनुपूर्वीसे क्षपणा जाननी चाहिये ॥ २३३ ॥

---

१. आ० प्रतौ सूत्रमिदं चूर्णिसूत्ररूपेण नोपलभ्यते; ता० प्रतौ तु च कोष्ठकान्तर्गतमिदं वाक्यमुपलभ्यते चूर्णिसूत्ररूपेण।

§ ३०० एसा अट्ठावीसदिमा मूलगाहा चरित्तमोहणीयपयडीणं परिवाडीए खवणाविहिं जाणावेदि । तं कधं ? 'संकामण' एवं भणिदे अंतरकरणं कादूण जाव छण्णोकसाए खवेदि ताव एदिस्से अवत्थाए संकामणा त्ति ववएसो, णवुंसयवेदादि-परिवाडीए णवण्हं णोकसायाणमेत्थ संकामयत्तदंसणादो । 'ओवट्टणा' एवं भणिदे अस्सकण्णकरणद्धा किट्टीकरणद्धा च घेत्तव्वा, तत्थ चदुसंजलणाणुभागस्स अस्स-कण्णायरेणोवट्टणदंसणादो ।

§ ३०१ 'किट्टीखवणा य' एवं भणिदे किट्टीवेदगद्धा सुहुमसांपराइयगुणट्ठाण-पज्जंता णिद्दिट्ठा त्ति दट्ठव्वा, तत्थ जहाकमं कोहादिकिट्टीणं खवणदंसणादो । 'खीण-मोहंते' एवं भणिदे खीणकसायगुणट्ठाणमवहिं कादूण तदो हेट्ठा चेव चारित्तमोहणी-यस्स खवणा पयट्टदि, ण तत्तो परमिदि वुत्तं होइ । एवमेदेसु अवत्थंतरेसु संकामणो-वट्टणकिट्टीखवणद्धामण्णिदेसु खीणकसायद्धापज्जंतेसु 'खवणाए' मोहणीयस्स खवण-किरियाए 'आणुपुव्वी' परिवाडी बोद्धव्वा त्ति । एवमेसा संगहणमूलगाहा संखेवेण मोहणीयस्स खवणपरिवाडिं परूवेदि त्ति घेत्तव्वं । एदिस्से वि णत्थि भासगाहा, सुगमत्थपडिबद्धाए एदिस्से भासगाहाहिं विणा चेव अत्थणिण्णयोववत्तीदो । अदो

§ ३०० यह अट्ठाइसवीं मूल सूत्रगाथा चरित्रमोहनीयसम्बन्धी प्रकृतियोंकी परिपाटीक्रमसे क्षपणाविधिका ज्ञान कराती है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—'संक्रामण' ऐसा कहने पर अन्तरकरण करके जब तक छह नोकषायोंकी क्षपणा करता है तब तक इस अवस्थाको 'संक्रामणा' यह संज्ञा है, क्योंकि नपुंसक वेद आदि परि-पाटीक्रमसे नौ नोकषायोंका यहाँ पर अन्य प्रकृतियोंमें संक्रम करानेरूप कार्य देखा जाता है । 'ओव-ट्टणा' ऐसा कहनेपर अश्वकर्णकरणद्धा और कृष्टिकरणद्धा इनको ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि उस अवस्थामें चार संज्वलनोंके अनुभागकी अश्वकर्णकरणरूपसे अपवर्तना देखी जाती है ।

§ ३०१ 'किट्टीखवणा य' ऐसा कहने पर सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानके अन्त तक कृष्टिवेदक-काल जानना चाहिये, क्योंकि उस अवस्थामें यथाक्रम क्रोधादि कृष्टियों की क्षपणा देखी जाती है । 'खीणमोहंते' ऐसा कहने पर क्षीणकषाय गुणस्थानको मर्यादा करके उससे पहले ही चारित्रमोह-नीयकी क्षपणा प्रवृत्त होती है, उससे आगे नहीं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार इन अव-स्थाओंके मध्य संक्रामणा, अपवर्तना और कृष्टिक्षपणद्धा संज्ञक कार्योंके होने पर क्षीणकषायके काल-के अन्त होनेके पूर्व तक अर्थात् दसवें गुणस्थान तक 'खवणाए' अर्थात् मोहनीय कर्मकी क्षपणारूप क्रियाकी 'आणुपुव्वी' अर्थात् परिपाटी जाननी चाहिये । इस प्रकार यह संग्रहणी मूल गाथा संक्षेपसे मोहनीय कर्मकी क्षपणासम्बन्धी परिपाटीकी प्ररूपणा करती है, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये । इस मूलगाथाकी भी भाष्यगाथा नहीं है, क्योंकि सुगम अर्थसे सम्बन्ध रखनेवाली इस मूलगाथाका भाष्यगाथाके बिना ही अर्थका निर्णय बन जाता है । और इसीलिये ही चूर्णिसूत्रकारने इन दो मूल

चेव चुण्णिसुत्तयारेण दोण्हमेदासिं मूलगाहाणं समुक्कित्तणा विहासा च णाढत्ता, सुगमत्थपरूवणाए गंथगउरवं मोत्तूण फलविसेसाणुवलंभादो त्ति।

§ ३०२ अथवा एदिस्से मूलगाहाए अत्थो उवरिमचूलियागाहाहिं वुच्चीहिदि[1] त्ति तत्थेव तण्णिण्णयं कस्सामो। एवमेतावता प्रबंधेन क्षीणकषायचरिमसमये घातिकर्मत्रयस्य निरवशेषप्रक्षयमुपदिश्य सांप्रतं तदनन्तरसमये केवलज्ञानमुत्पाद्य नवकेवललब्धिपरिणतः परमस्नातकगुणस्थानं प्रतिपद्य भगवान् सयोगी केवली सर्वज्ञः सर्वदर्शी च जायत इत्येतत्प्रतिपादयितुकामः सूत्रमुत्तरं पठति—

*** तदो अणंतकेवलणाण-दंसण-वीरियजुत्तो जिणो केवली सव्वण्हो सव्वदरिसी भवदि सजोगिजिणो त्ति भण्णइ।**

§ ३०३ ततो घातिकर्मक्षयानन्तरसमये भ्रष्टबीजवन्निःशक्तीकृताघातिचतुष्टयस्समुद्भूतानन्तकेवलज्ञानदर्शनवीर्ययुक्तः स्वयम्भूत्वमात्मसात्कुर्वन् जिनः केवली सर्वज्ञः सर्वदर्शी च जायते। स एव भगवानर्हत्परमेष्ठी सयोगिजिनश्चेति भण्यते, तत्र तदवस्थायां वाक्कायपरिस्पंदलक्षणस्य योगविशेषस्येर्यापथबंधहेतोः सद्भावादिति सूत्रार्थः।

गाथाओंको समुत्कीर्तना और विभाषा आरम्भ नहीं की है, क्योंकि यह मूलगाथा सुगम अर्थकी प्ररूपणा करती है, इसलिये [यदि इनकी भाष्यगाथाएँ लिखी जातीं तो] ग्रन्थको गुरुता [बढ़ जाने] को छोड़कर उससे कोई फलविशेष प्राप्त होनेवाला नहीं है।

§ ३०२ अथवा इस मूलगाथाका अर्थ आगे चूलिका गाथाओंद्वारा कहेंगे, इसलिये वहीं पर उसका निर्णय करेंगे। इस प्रकार इतने प्रबन्धकेद्वारा क्षीणकषायगुणस्थानके अन्तिम समयमें तीन घातिकर्मोंके पूरे क्षयका उपदेश करके अब क्षीणकषाय गुणस्थानके अनन्तर समयमें केवलज्ञानको उत्पन्न करके नव केवललब्धिसे परिणत होता हुआ परम स्नातक गुणस्थानको प्राप्त करके भगवान् सयोगिकेवल सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है। इस प्रकार इस तथ्यके प्रतिपादनको इच्छा रखनेवाले परमर्षि यतिवृषभ आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** तदनन्तर अनन्त केवलज्ञान, अनन्त केवलदर्शन और अनन्त वीर्यसे संयुक्त होता हुआ जिन, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होता है। उसीको सयोगी जिन कहते हैं।**

§ ३०३ तदनन्तर घातिकर्मोंके क्षय होनेके अनन्तर समयमें भ्रष्ट बीजके समान जिसने चार अघाति कर्मोंको निःशक्त कर दिया है और जो अनन्त केवलज्ञान, अनन्त केवलदर्शन और अनन्त वीर्यसे संयुक्त हो गया है; ऐसा होकर जो स्वयम्भू होनेसे आत्माधीनपनेको प्राप्त होता हुआ जिन, केवली, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है, वही भगवान् अर्हत्परमेष्ठी और सयोगी जिन कहा जाता है। वहाँ उस अवस्थामें ईर्यापथ बन्धका हेतु होनेसे वचन और कायके परिस्पन्दलक्षण-योगविशेषका सद्भाव रहता है, यह इस सूत्रका अर्थ है।

---

१. आ० प्रतौ वुच्चीहिदि इति पाठः।

§ ३०४ तत्र केवलज्ञानादीनां स्वरूपमुच्यते । तद्यथा—केवलमसहायमिन्द्रियालोकमनस्कारनिरपेक्षमित्यर्थः । केवलं च तत् ज्ञानं च केवलज्ञानम्, अतीन्द्रियेष्वर्थेषु सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टेष्वप्रतिहतप्रसरं करणक्रमव्यवधानातिवर्ति ज्ञानावरणीयकर्मणो निरवशेषप्रक्षयादुद्भूतवृत्ति निरतिशयमनुत्तरं ज्योतिः केवलज्ञानमित्युक्तं भवति । तस्य पुनरानन्त्यविशेषणमविनश्वरत्वख्यापनार्थम्, क्षायिकस्य भावस्य घटस्य प्रध्वंसाभाववत्साद्यपर्यवसितस्वरूपेणावस्थाननियमोपलम्भात् । सर्वद्रव्यपर्यायविषयस्य तस्य परमोत्कृष्टानन्तपरिणामत्वख्यापनार्थं वा तद्विशेषणं प्रतिपत्तव्यम्, प्रमेयानन्त्येतत्परिच्छेदकज्ञानशक्तीनामप्यानन्त्यसिद्धेरविप्रतिषेधान्नोपचारमात्रमेवैतत् परमार्थत एव तदविभागपरिच्छेदसामर्थ्यानां सकलप्रमेयराशेरनंतगुणानामागमसमधिगम्यानामुपलंभात् यथोक्तमन्थितं मायणं णत्थि तं दव्वमिति ततोऽस्यानुपचरितमेवानन्त्यमिति निश्चेतव्यम् । उक्तं च—

> क्षायिकमेकमनन्तं त्रिकालसर्वार्थयुगपदवभासि ।
> निरतिशयमन्त्यमच्युतमव्यवधानं च केवलं ज्ञानम् ॥
>
> इति

---

§ ३०४ यहाँ केवलज्ञानादिके स्वरूपका कथन करते हैं। यथा—केवलज्ञानमें केवल शब्दका अर्थ है जो ज्ञान असहाय है अर्थात् इन्द्रिय, आलोक और मनकी अपेक्षाके बिना होता है। इस प्रकार केवल जो ज्ञान वह केवलज्ञान है। जो सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृष्ट अर्थोंमें अप्रतिहतप्रसारवाला है, जो करण, क्रम और व्यवधानसे रहित है तथा जिसकी वृत्ति ज्ञानावरण कर्मके पूरा क्षय होनेसे प्रगट हुई है ऐसा निरतिशय और अनुत्तर ज्योतिस्वरूप केवलज्ञान है; यह उक्त कथनका तात्पर्य है। फिर भी उसको जो आनन्त्य विशेषण दिया है वह उसके अविनश्वरपनेकी प्रसिद्धिकेलिये दिया है, क्योंकि जैसे घटका प्रध्वंसाभाव सादि-अनन्त होता है उसी प्रकार क्षायिक भावके सादि-अनन्तस्वरूपसे अवस्थानका नियम उपलब्ध होता है। अथवा केवलज्ञानका 'अनन्त' यह विशेषण समस्त द्रव्य और उनकी अनन्त पर्यायोंको विषय करनेवाले उस केवलज्ञानके परमोत्कृष्ट अनन्त परिणामपनेकी प्रसिद्धिकेलिये जानना चाहिये। कारण कि प्रमेय अनन्त हैं, अतः उनकी परिच्छेदक ज्ञानशक्तियोंको भी अनन्त सिद्ध होनेमें प्रतिषेधका अभाव है। यह सब कथन केवल उपचार मात्र ही नहीं है किन्तु परमार्थसे ही सकल प्रमेयराशिके अनन्त गुणरूप और आगमप्रमाणसे जाननेमें आनेवाली ऐसी केवलज्ञानसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेदसामर्थ्य उपलब्ध होती है। इस प्रकार यथोक्त अविभागप्रतिच्छेदोंका अस्तित्व केवल कल्पनारूप नहीं है, वस्तुतः वह द्रव्य है। इसलिये इसकी अनन्तता अनुपचरित ही है ऐसा निश्चय करना चाहिये। कहा भी है—

जो क्षायिक है, एक है, अनन्तस्वरूप है, तीनों कालोंके समस्त पदार्थोंको एक साथ जाननेवाला है, निरतिशय है, क्षायोपशमिकज्ञानोंके अन्तमें प्राप्त होनेवाला है, कभी च्युत होनेवाला नहीं है और सूक्ष्म, व्यवहित तथा विप्रकृष्ट पदार्थोंके व्यवधानसे रहित है वह केवलज्ञान है।

§ ३०५ एवं केवलदर्शनमपि व्याख्येयम् । तत्समकालमेव स्वावरणात्यन्तपरिक्षया-विर्भूतवृत्तेर्दर्शनोपयोगस्यापि निरवशेषपदार्थालोकनस्वभावस्यानन्त्यविशेषितकेवलव्यप-देशप्रतिलम्भे प्रतिबंधानुपलंभात् । नैतदिह मंतव्यम् । ज्ञानदर्शनोपयोगयोः सकला-वस्थयोरविशेषो विषयभेदानुपलब्धेद्वयोरप्यशेषपदार्थसाक्षात्करणस्वाभाव्ये तत्रैकेनैव कृतत्वादितरोपयोगवैयर्थ्याच्चेति, कस्मादसंकीर्णस्वरूपेण तयोर्विषयविभागस्यासकृदु-पदर्शितत्वात् तस्मात्सकलविमलकेवलज्ञानवदकलंक-केवलदर्शनमपि कैवल्यावस्थाया-मस्त्येवेति सिद्धम्, अन्यथाऽऽगमविरोधादिदोषाणामपरिहार्यत्वादिति ।

§ ३०६ वीर्यान्तरायनिर्मूलप्रक्षयोद्भूतवृत्ति-श्रमक्लमाद्यवस्थाविरोधि-निरन्तराय-वीर्यमप्रतिहतसामर्थ्यमनन्तवीर्यमित्युच्यते । तत्पुनरस्य भगवतोऽशेषपदार्थविषयध्रुवो-पयोगपरिणामेऽप्यखेदभावोपग्रहे प्रवर्तमानं सोपयोगमेवेति प्रतिपत्तव्यम् । तद्बलाधानेन विना सांततिकोपयोगवृत्तेरनुपपत्तेः, अन्यथाऽस्मदाद्युपयोगवत्तदुपयोगवदुपयोगस्यापि । सामर्थ्यविरहादनवस्थानप्रसंगादिति । तथोक्तं—

तव वीर्यविघ्नविलयेन समभवदनन्तवीर्यता ।
तत्र सकलभुवनाधिगमप्रभृतिस्वशक्तिभिरवस्थितो भवानिति ॥१॥

---

§ ३०५ इसी प्रकार केवलदर्शनका भी व्याख्यान करना चाहिये, क्योंकि केवलज्ञानके समान ही अपना आवरण करनेवाले दर्शनावरण कर्मके अत्यन्त क्षय होनेसे वृत्तिको प्राप्त होनेवाले और समस्त पदार्थोंके अवलोकन स्वभाववाले दर्शनोपयोगके भी अनन्त विशेषणसे युक्त केवल संज्ञाके प्राप्त होनेपर कोई प्रतिबन्ध नहीं पाया जाता ।

यहाँ ऐसा नहीं मानना चाहिये कि ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगमें कोई भेद नहीं है, क्योंकि दोनोंके विषयमें भेद नहीं उपलब्ध होता तथा दोनों समस्त पदार्थोंके साक्षात्करण स्वभाववाले हैं, इसलिये उन दोनोंमें एकसे ही कार्य चल जानेके कारण दूसरे उपयोगको मानना व्यर्थ है, क्योंकि असंकीर्णस्वरूपसे उन दोनोंका विषयविभाग अनेक बार दिखला आये हैं । इसलिये सकल और विमल केवलज्ञानके समान अकलंक केवलदर्शन भी केवलरूप अवस्थामें है ही, यह सिद्ध हुआ । अन्यथा आगमविरोध आदि दोषोंका होना अपरिहार्य है ।

§ ३०६ वीर्यान्तराय कर्मके निर्मूल क्षयसे उद्भूतवृत्तिरूप श्रम और खेद आदि अवस्थाका विरोधी अन्तरायसे रहित अप्रतिहत सामर्थ्यवाला वीर्य अनन्त वीर्य कहा जाता है । परन्तु वह इस भगवान्‌के अशेष पदार्थविषयक ध्रुवरूप (स्थायी) उपयोग परिणामके होनेपर भी अखेद भावसे ग्रहण करनेमे प्रवृत्त होता हुआ उपयोगसहित ही है ऐसा जानना चाहिये, क्योंकि उसके बलाधानके बिना निरन्तर उपयोगरूप वृत्ति नहीं बन सकती । अन्यथा हम लोगोंके उपयोगके समान अरिहन्त केवलोके उपयोगके भी सामर्थ्यके बिना अनवस्थानका प्रसंग प्राप्त होता है । कहा भी है—

हे भगवन् ! आपके वीर्यान्तराय कर्मका विलय हो जानेसे अनन्त वीर्य शक्ति प्रगट हुई है । अतः ऐसी अवस्थामें समस्त भुवनके जानने आदि अपनी शक्तियोंके द्वारा आप अवस्थित हो ॥१॥

§ ३०७ एतेनात्यन्तिकानन्तसुखपरिणामोऽप्यस्य व्याख्यातो वेदितव्यः। कस्मात्? अनन्तज्ञानदर्शनवीर्योपबृंहितसामर्थ्यस्य विमोहस्य ज्ञानवैराग्यातिशय-परमकाष्ठामारूढस्य परमनिर्वाणलक्षणस्य सुखस्यात्यंतिकत्वेन प्रादुर्भावोपलंभात्। न च ज्ञानवैराग्यातिशयजनितवीतरागसुखादन्यदेव किंचित्सुखं नामास्ति, सरागसुखस्य न्यायनिष्ठुरं विचार्यमाणस्यैकान्ततो दुःखरूपत्वादिति। तथा चोक्तं—

सपरं बाहासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव सदा ॥ २ ॥

विरागहेतुप्रभवं न चेत्सुखं, न नाम किंचित्तदिति स्थिता वयम्।
स चेन्निमित्तं स्फुटमेव नास्ति तत् त्वदन्यतः सत्त्वयि येन केवलम् ॥३॥
इति।

§ ३०८ तस्मादनन्तज्ञानदर्शनवीर्यविरतिप्रधानमनन्तसुखमनुपरतवृत्ति-निरतिशयमात्मोपादानसिद्धमतीन्द्रियं निष्प्रतिद्वन्द्वमस्येति सिद्धम्। एतेनासद्वेद्योदयसद्भावात्सयोगकेवलिन्यनन्तसुखाभावं तदनुपातिनीं च कवलाहारवृत्तिमवधारयन् वादी

---

§ ३०७ इस कथनसे आत्यन्तिक अनन्त सुखपरिणाम भी इस भगवान्के व्याख्यान किया गया जानना चाहिये, क्योंकि जिसकी अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त वीर्यसे सामर्थ्य वृद्धिको प्राप्त हुई है, जो मोहरहित है, जो ज्ञान और वैराग्य की अतिशय परमकाष्ठा पर अधिरूढ है, जिसका परम निर्वाणरूपो वस्त्र है ऐसे सुखकी आत्यन्तिकरूपसे उत्पत्ति उपलब्ध होती है। किन्तु ज्ञान और वैराग्यके अतिशयसे उत्पन्न हुए सुखसे अन्य सुख नामकी कोई वस्तु नहीं हो है, क्योंकि जो सरागसुख है वह न्यायपूर्वक निष्ठुरतासे विचार किया गया एकान्तसे दुःखरूप ही है। उसी प्रकार कहा भी है—

जो इन्द्रियोंके निमित्तसे प्राप्त होनेवाला सुख है वह पराश्रित है, बाधासहित है, बीच-बीचमें छूट जाने वाला है, बन्धका कारण है और विषम है, वास्तवमें वह सदाकाल दुःखस्वरूप ही है ॥२॥

जो सुख विरागभावको निमित्त कर नहीं उत्पन्न हुआ है वह कुछ भी नहीं है ऐसा हम निश्चय करके स्थित हैं। यदि वह निमित्त है तो आपके सिवाय वह स्पष्टरूपसे अन्य नहीं ही है जिससे कि आपमें ही केवल निमित्तरूपसे अस्तित्व है ॥३॥

§ ३०८ इसलिये जिसमें अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्तविरतिकी प्रधानता है जो अनुपरत वृत्तिवाला है; निरतिशय है, स्वभावभूत आत्माको उपादानकरके जो सिद्ध होता है, अतीन्द्रिय है और जो द्वन्द्वभावसे रहित है वह अनन्तसुख है। इससे असातावेदनीयके उदयका सद्भाव होनेसे संयोगकेवली भगवान्में अनन्तसुखाभाव और उसके साथ होनेवाली कवलाहार-वृत्तिका निश्चय करनेवाला वादी निराकृत हो गया है, क्योंकि उसमें उस (असातावेदनीय) का

---

१. मा० प्रती एतेन सद्वेद्योदय इति पाठः।

प्रतिव्यूढः, तत्र तदुदयस्य सहकारिकारणवैकल्येन परघातोदयवदकिंचित्करत्वात् । तस्मादनन्तज्ञानदर्शनवीर्यविरतिसुखपरिणामत्वान्न भुंक्ते सयोगकेवली, सिद्धपरमेष्ठिवदिति सिद्धम् ।

§ ३०९ अनन्तदानलाभभोगोपभोगलब्धयश्च वीर्येणोपलक्षणीयनिरवशेषान्तरायप्रक्षयजन्यत्वं प्रत्यविशिष्टत्वात् । ताः पुनरशेषप्राणिविषयाभयप्रदानसामर्थ्यात् त्रैलोक्याधिपतित्वसम्पादनात् सति प्रयोजने स्वाधीनाशेषभोगोपभोगवस्तुसम्पादनाच्च सोपयोगा एवेति प्रत्येतव्यम्[1] । तस्मात्प्रागेव द्वितयमोहनीयप्रक्षयाद्दर्शनचारित्रशुद्धिमात्यन्तिकमवगाढो ज्ञानदृगावरणमूलोत्तरप्रकृतिसंक्षयानन्तरविजृम्भितक्षायिकानन्तकेवलबोधदर्शनपर्यायः, अन्तरायपरिक्षयात्समासादितानन्तवीर्यदानलाभभोगोपभोगसामर्थ्यो, नवकेवललब्धिपरिणतः, कृतार्थतायाः परमकाष्ठामधितिष्ठन्नर्हत्परमेष्ठी स्वयम्भूर्जिनः केवली सर्वज्ञः सर्वदर्शी सयोगकेवली चेति तदा संशब्द्यते । जिनादिसंशब्दानां पदार्थव्याख्या सुगमेति न पुनः प्रतन्यते । भवति चात्र सयोगिकेवलिनः स्वरूपनिरूपणे गाथाद्वयम्—

उदय सहकारी कारणोंकी विकलताके कारण परघातके उदयके समान अकिंचित्कर है। इसलिये उनके अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्तविरति और अनन्तसुखपरिणामपना होनेसे सयोगकेवली भगवान् सिद्धपरमेष्ठीके समान भोजन नहीं करते हैं, यह सिद्ध होता है।

§ ३०९ अनन्तवीर्यको उपलक्षण करके पूरे अन्तरायकर्मके क्षयसे अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्तभोग और अनन्त-उपभोगरूप लब्धियाँ उत्पन्न हुई हैं, क्योंकि अनन्तवीर्यके समान उन लब्धियोंकी उत्पत्तिके प्रति कोई विशेषता नहीं है। परन्तु वे लब्धियाँ समस्त प्राणीविषयक अभयदानकी सामर्थ्यके कारण, तीनों लोकोंके अधिपतित्वका सम्पादन करनेसे तथा प्रयोजनके रहते हुए स्वाधीन अशेष भोगोपभोगसम्बन्धी वस्तुओंका सम्पादन होनेसे उपयोगसहित ही हैं, ऐसा जानना चाहिये। इसलिये पहले ही दोनों प्रकारके मोहनीय कर्मके क्षयसे जिसने आत्यन्तिक सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रकी शुद्धिको प्राप्त किया है, ज्ञानावरण और दर्शनावरणरूप मूल और उत्तर प्रकृतियोंके क्षयके अनन्तर ही जिसकी क्षायिक अनन्तकेवलज्ञान और क्षायिक अनन्तकेवलदर्शन पर्याय वृद्धिको प्राप्त हुई है, तथा अन्तराय कर्मके क्षयसे जो अनन्तवीर्य, अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्तभोग और अनन्त-उपभोगरूप नौ केवल-लब्धियोंरूपसे परिणत हुआ है, वह कृतार्थताकी परमकाष्ठाको प्राप्त होता हुआ अर्हत्परमेष्ठी, स्वयम्भू, जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और सयोगकेवली इस रूपसे कहा जाता है। यहाँ जिनादिरूप शब्दोंकी पदार्थ-व्याख्या सुगम है, इसलिये उनका पुनः विस्तार नहीं करते हैं। यहाँपर सयोगिकेवलीके स्वरूपके निरूपण करनेमें दो गाथाएँ हैं—

---

१. आ० प्रतौ प्रतिपत्तव्यम् इति पाठः ।

केवलणाणदिवायरकिरणकलावप्पणासियण्णाणो ।
णवकेवल-लद्धुग्गमसुजणियपरमप्पववएसो ॥४॥

असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोगेण ।
जुत्तो त्ति सजोगो इदि अणाइणिहणारिसे वुत्तो ॥५॥

§ ३१० यत्पुनरिहाशङ्कान्तरं—सर्वज्ञो वीतरागो वा न कश्चित् पुरुषविशेषः समस्ति, सर्वपुरुषाणां रागाद्यविद्योपद्रुतस्वभावत्वाद्रथ्यापुरुषवदित्यादि कैश्चिन्मिथ्यादर्शनाकुलीकृतहृदयैः स्वपरविद्वेषिभिरनाप्तैरादृतं, तदपि शास्त्रादावेव सुनिर्लोठितमिति न पुनरुपन्यस्यते । तदेवं ज्ञानावरणादिकर्मणां निश्चयव्यवहारापायातिशयानंतरमाविर्भूताचिन्त्यज्ञानदर्शनसाम्राज्यप्राप्त्यतिशयस्य परमकाष्ठामात्मसात्कृत्य कृतकृत्यतामपाकृतकृतान्तकृतनिकृतिमकृतिकां स्वमात्कुर्वंस्त्रिदशासुरमनुजमुनिपतिभिरभिगमनीयत्वात् प्राप्तपूजातिशयबहिर्विभूतिः सयोगकेवली भूत्वा स्वयं निष्ठितार्थोऽपि भगवानर्हत्परमेष्ठी परार्थप्रवृत्तिस्वाभाव्याद्धर्मामृतवृष्टिमासन्नभव्यजगते हिताय प्रवर्षन्नबुद्धिपूर्वमेव सर्वसत्त्वाभ्युद्धारभावनातिशयप्रेरितो भव्यजनपुण्येन शेषकर्मफलसव्यपेक्षेण विहारातिशयमनुभवतीत्येतत्प्रतिपादयितुकामः सूत्रमुत्तरं पठति—

जिसने केवलज्ञानरूपीदिवाकरकी किरणकलापकेद्वारा अज्ञानका नाश कर दिया है तथा नौ केवल लब्धियोंकी उत्पत्ति होनेसे जिसने परमात्मसंज्ञाको प्राप्त कर लिया है। वह असहायज्ञान-दर्शनसे सहित होता है, इसलिये केवली कहा जाता है तथा योगसहित होनेसे सयोगी कहलाता है, ऐसा अनादि-अनिधन आर्षमें कहा गया है ॥४-५॥

§ ३१० जो यहाँ दूसरी आशंका की जाती है कि कोई पुरुषविशेष सर्वज्ञ वीतराग नहीं है, क्योंकि सभी पुरुष रागादि अविद्यासे उपद्रुत स्वभाववाले हैं, रथ्यापुरुषके समान; इत्यादि रूपसे जिनका हृदय मिथ्यादर्शनसे आकुलित किया गया है और जो अपने और दूसरोंके वैरी अनाप्त हैं उनकेद्वारा यह बात आदरपूर्वक कही जाती है किन्तु वह बात भी शास्त्र आदिमें भी अच्छी तरहसे खण्डित कर दी गई है, इसलिये उसका यहाँ पुनः उपन्यास नहीं करते। अतः इस प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मोंके निश्चय-व्यवहाररूप अपायातिशयके अनन्तर प्राप्त हुए अचिन्त्यज्ञान-दर्शनरूप साम्राज्यकी प्राप्तिकी अतिशयकी परमकाष्ठाको आत्मसात् करके जिसने यमकृतछलनाके दूर किये जानेसे अकृतिक कृतकृत्यताको स्वाधीन करते हुए देवेन्द्र, असुरेन्द्र और चक्रवर्तियों और गणधरोंके द्वारा अभिगमनीय होनेसे जिसने पूजातिशयरूप बाह्य विभूतिको प्राप्त किया है, ऐसे जिनदेव सयोगकेवली होकर स्वयं सम्पन्न प्रयोजन होते हुए भी भगवान् अर्हत्परमेष्ठी परार्थप्रवृत्तिरूप स्वभाववाले होनेसे आसन्नभव्य जीवोंके हितके लिये धर्मामृतवृष्टिका प्रवर्तन करते हुए अबुद्धिपूर्वक ही समस्त प्राणियोंके सब प्रकारके उद्धारकी भावनाके अतिशयसे प्रेरित होते हुए भव्य जीवोंके पुण्यके निमित्तसे शेष अघाति कर्मोंके फलकी अपेक्षा विहारातिशयका अनुभव करते हैं। इस प्रकार इस तथ्यके प्रतिपादन करनेकी इच्छासे युक्त आचार्यवर्य आगेके सूत्रको कहते हैं—

* असंखेज्जगुणाए सेढीए पदेसग्गं णिज्जरेमाणो विहरदि त्ति ।

§ ३११ प्रतिसमयमसंख्यातगुणश्रेण्या कर्मप्रदेशानेव निधुन्वन्[1] धर्मतीर्थ-प्रवर्तनाय यथोचिते धर्मक्षेत्रे देवासुरानुयातो महत्या विभूत्या विहरति प्रशस्तविहायो-गतिसव्यपेक्षात्तत्स्वाभाव्याद्दिति सूत्रार्थः। स्यान्मतम्—अभिसंधिपूर्वक एवास्य व्यापारव्याहारातिशयो भवतुमर्हति, अन्यथा यत्किंचनकारित्वदोषानुषंजनात्तदभ्युपगमे च सेच्छत्वादसर्वज्ञ एवायं स्यात्, अनिष्टं चैतदिति ? नैतदेवमभिसंधिविरहेऽपि कल्प-तरुवदस्य परार्थसंपादनसामर्थ्योपपत्तेः प्रदीपवद्वा, न वै प्रदीपः कृपालुतयाऽऽत्मानं परं वा तमसो निर्वर्तयति, किंतु तत्स्वाभाव्यादेवेति न किंचित् व्याहन्यते । यथोक्तं—

जगते त्वया हितमवादि
न च विवदिषा जगद्गुरो ।
कल्पतरुरनभिसंधिरपि
प्रणयिभ्य ईप्सितफलानि यच्छति ।।

---

* भगवान् अर्हत्परमेष्ठीदेव असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे प्रदेशपुंजकी निर्जरा करते हुए विहार करते हैं ।

§ ३११ प्रतिसमय असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे कर्मप्रदेशोंको ये भगवान् धुनते हुए धर्मतीर्थकी प्रवृत्तिकेलिये यथायोग्य धर्मक्षेत्रमें देवों और असुरोंसे अनुगत होते हुए बड़ी भारी विभूतिके साथ प्रशस्त विहायोगतिके निमित्तसे या विहार करनेरूप स्वभाववाले होनेसे विहार करते हैं, यह इस सूत्रका अर्थ है ।

शंका—कदाचित् यह मत हो कि इन अर्हत्परमेष्ठी भगवान्का व्यापारातिशय और उपदेशरूप अतिशय अभिप्रायपूर्वकही हो सकता है, अन्यथा यत्किंचित् करनेरूप दोषका अनुषंग प्राप्त होता है और ऐसा माननेपर इच्छासहित होनेसे ये भगवान् असर्वज्ञ ही प्राप्त होते हैं । किन्तु ऐसा स्वीकार करना अनिष्ट ही है ?

समाधान—किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि अभिप्रायसे रहित होनेपर भी कल्पवृक्षके समान इन भगवान्के पदार्थके सम्पादनकी सामर्थ्य बन जाती है । अथवा प्रदीपके समान इन भगवान्की वह सामर्थ्य बन जाती है क्योंकि दीपक नियमसे कृपालुपनेसे अपने और परके अन्धकारका निवारण नहीं करता, किन्तु उस स्वभाववाला होनेके कारणही वह अपने और परके अन्धकारका निवारण करता है । जैसा कहा है—

हे जगद्गुरो ! आपने जगत्केलिये जो हितका उपदेश दिया है वह कहनेकी इच्छाके बिना ही दिया है, क्योंकि ऐसा नियम है कि कल्पवृक्ष बिना इच्छाके ही प्रेमीजनोंको इच्छित फल देता है ।

---

१. ता० प्रतौ निर्धनं (निर्धुन्वन्) । आ० प्रतौ निर्धन । स० प्रतौ निर्धनं इति पाठः ।

कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो
नाभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया ।
नासमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो
धीर, तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥
विवक्षासन्निधानेऽपि वाग्वृत्तिर्जातु नेष्यते[1] ।
वाञ्छन्तो वा न वक्तारः शास्त्राणां मन्दबुद्धयः ॥
इत्यादि ।

§ ३१२ तस्मादस्य परमोपेक्षालक्षणां संयमविशुद्धिमास्थितवतो व्यापारव्याहारादयोऽतिशयविशेषाः स्वाभाविकत्वान्न पुण्यबन्धहेतव इति प्रतिपत्तव्यम् । यथोक्तमार्षे—

तित्थयरस्स विहारो लोयसुहो णेव तस्स पुण्णफलो ।
वयणं च दाणपूजारंभयरं तं ण[2] लेवेइ ॥

§ ३१३ स पुनरस्य विहारातिशयो भूमिमस्पृशत एव गगनतले भक्तिप्रेरितामरगणविनिर्मितेषु कनकाम्बुजेषु प्रयत्नविशेषमंतरेणापि स्वमाहात्म्यातिशयात्[3] प्रवर्तत इति प्रत्येतव्यं, योगिशक्तीनामचिन्त्यत्वादिति । उक्तं च—

हे मुने ! आपकी शरीर, वचन और मनकी प्रवृत्तियाँ बिना इच्छाके ही होती हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि आपकी मन, वचन और कायसम्बन्धी प्रवृत्तियाँ बिना समीक्षा किये होती हैं। हे धीर ! आपकी चेष्टायें अचिन्त्य हैं ॥

कहनेकी इच्छाका सन्निधान होनेपर ही वचनकी प्रवृत्ति नहीं देखी जाती, क्योंकि यह हम स्पष्ट देखते हैं कि मन्दबुद्धि जन इच्छा रखते हुए भी शास्त्रोंके वक्ता नहीं हो पाते। इत्यादि ॥

§ ३१२ इसलिये परम-उपेक्षालक्षणरूप संयमकी विशुद्धिको धारणकरनेवाले इन भगवान्‌का बोलना और चलनेरूप व्यापार आदि अतिशयविशेष स्वाभाविक होनेसे पुण्यबन्धके कारण नहीं है, ऐसा यहाँ जानना चाहिये। जैसा कि आर्षमें कहा है—

तीर्थंकर परमेष्ठीका विहार लोकको सुख देनेवाला है, परन्तु उसका वह कार्य पुण्यफलवाला नहीं है। और उनका वचन दान-पूजारूप आरम्भको करनेवाला तो है फिर भी उनको कर्मोंसे लिप्त नहीं करता।

§ ३१३ पुनः इस महात्माका वह विहारातिशय भूमिको स्पर्श न करते हुए ही आकाशमें भक्तिवश प्रेरित हुए देव समूहकेद्वारा रचे गये स्वर्णकमलोंपर प्रयत्न विशेषके बिना ही अपने माहात्म्य विशेषवश प्रवृत्त होता है, ऐसा जानना चाहिये, क्योंकि योगियोंकी शक्तियाँ अचिन्त्य होती हैं। कहा भी है—

---

१. आ० प्रतौ वीक्ष्यते इति पाठः ।

२. आ० प्रतौ बण्ण इति पाठः ।

३. आ० प्रतौ माहात्म्यातिशयाम् इति पाठः ।

नमस्तलं पल्लवयन्निव त्वं,
सहस्रपत्राम्बुजगर्भचारैः ।
पादाम्बुजैः पातितमारदर्पो,
भूमौ प्रजानां विजहर्थ[1] भूत्यै ॥

इति

§ ३१४ एत्थ सजोगिजिणस्स पढमसमयप्पहुडि जाव समुग्घादाहिमुहकेवलिपढमसमयो त्ति ताव गुणसेढिणिक्खेवकमो अवट्ठिदेगरूवो त्ति घेत्तव्वो; परिणामेसु पडिसमयमवट्ठिदेसु तण्णिबंधणपदेसोकड्डुणाए गुणसेढिणिक्खेवायामस्स च सरिसत्तं मोत्तूण विसरिसभावाणुववत्तीदो । णवरि खीणकसायेण गुणसेढिणिमित्तमोकड्डिज्जमाणदव्वादो सजोगिकेवलिणा ओकड्डिज्जमाणदव्वमसंखेज्जगुणं, तत्थतणगुणसेढिणिक्खेवायामादो एत्थतणगुणसेढिणिक्खेवायामो संखेज्जगुणहीणो त्ति घेत्तव्वो, छदुमत्थपरिणामेहिंतो केवलिपरिणामाणमइविसुद्धत्तादो एक्कारसगुणसेढिपरूवणाए तहा भणिदत्तादो च । तम्हा आउगवज्जाणं तिण्हमघादिकम्माणं पदेसग्गमसंखेज्जगुणाए सेढीए णिज्जरेमाणो एसो उक्कस्सेण देसूणपुव्वकोडिमेत्तकालं धम्मतित्थं पवत्तेमाणो विहरदि त्ति सुणिरूविदं ।

●

हजार पाँखुडीवाले कमलोंके मध्य चलते हुए चरणकमलोंसे आकाशतलको पल्लवित करते हुएके समान कर्मभूमिक्षेत्रमें प्रजाजनोंमें मोक्षमार्गकी समृद्धिकेलिये कामदेवके दर्पका पतन करनेवाले आपने विहार किया । इति ॥

§ ३१४ यहाँपर सयोगीजिनके प्रथम समयसे लेकर समुद्घातके अभिमुख हुए केवली जिनके प्रथम समय तक गुणश्रेणिके निक्षेपका क्रम अवस्थित एकरूप होता है ऐसा ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि परिणामोंके प्रतिसमय अवस्थित रहनेपर उनके निमित्तसे होनेवाला प्रदेशोंका अपकर्षण और गुणश्रेणिनिक्षेपका आयाम सदृशपनेको छोड़कर विसदृशरूप नहीं होता । इतनी विशेषता है कि क्षीणकषाय जीवकेद्वारा गुणश्रेणिके निमित्त अपकर्षित हुए द्रव्यसे सयोगिकेवली जिनकेद्वारा अपकर्षित होनेवाला द्रव्य असंख्यातगुणा होता है तथा वहाँ हुए गुणश्रेणिनिक्षेपके आयामसे यहाँके गुणश्रेणिनिक्षेपका आयाम संख्यातगुणाहीन ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि एक तो छद्मस्थके परिणामोंसे केवली जिनके परिणाम अतिविशुद्ध होते हैं तथा दूसरे ग्यारह गुणश्रेणिप्ररूपणामें वैसा कहा गया है । इसलिये आयुकर्मको छोड़कर तीन अघातिकर्मोंके कर्मप्रदेशोंकी असंख्यातगुणीश्रेणिरूपसे निर्जरा करता हुआ यह केवली जिन उत्कृष्टसे कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण कालतक धर्मतीर्थको प्रवृत्त करता हुआ विहार करता है, यह अच्छी तरहसे निरूपण किया है ।

●

१. आ० प्रतौ विजहर्ष इति पाठः ।

खवणाहियारचूलिया

§ ३१५ एत्थ तित्थयरकेवलीणमियरकेवलीणं च जहण्णुकस्सविहारकालाणं पमाणाणुगमो तित्थयराणं विहाराइसओ समवसरणविभूदिवण्णणं च भणिदूण गेण्हिदव्वं। अत्र सूत्रपरिसमाप्ताविति शब्दोपादानं स्वोक्तिपरिच्छेदे द्रष्टव्यम्, एतावति प्ररूपणाप्रबंधे सविस्तरं प्ररूपिते ततः प्रकृतार्थाधिकारस्य परिसमाप्तिरिति स्वोक्तिपरिच्छेदस्यात्र विवक्षितत्वात्। एवमेत्तिएण परूवणापबंधेण सत्थाणसजोगिकेवलिविसयं परूवणाविसेसं परिसमाणिय संपहि एत्थेव चरित्तमोहणीयपुरस्सराणं घादिकम्माणं खवणाविही समप्पदि त्ति कयणिच्छओ एदस्सेव खवणाहियारस्स चूलियापरूवणट्ठमुवरिमाओ सुत्तगाहाओ पढइ—तत्थ ताव पढमा सुत्तगाहा—

* अणमिच्छमिस्ससम्मं अट्ठ णवुंसित्थिवेदछक्कं च।
पुंवेदं च खवेदि दु कोहादीए च संजलणे ॥१॥

§ ३१६ एसा गाहा दंसणचरित्तमोहपयडीणं खवणापरिवाडिं पुव्वुत्तमेव सव्वोवसंहारमुहेण पदुप्पाएदुमोइण्णा। तं कथं? 'अण' एवं भणिदे अणंताणुबंधिचउक्कस्स गहणं कायव्वं, णामेगदेसणिद्देसेण वि णामिल्लविसयसंपच्चयस्स सुपसिद्धत्त-

---

क्षपणाधिकार-चूलिका

§ ३१५ यहाँपर तीर्थंकरकेवलियों और अन्य केवलियोंके जघन्य और उत्कृष्ट विहारकालोंके प्रमाणका अनुगम और विहारसम्बन्धी अतिशयका तथा समवसरणविभूतिका वर्णन कहकर ग्रहण करना चाहिए। यहाँपर सूत्रकी परिसमाप्तिमें 'इति' शब्दका ग्रहण अपनी उक्तिके ज्ञानरूप अर्थमें जानना चाहिये क्योंकि इतने प्ररूपणा प्रबन्धके विस्तारके साथ प्ररूपित कर देनेपर उससे प्रकृत अर्थाधिकारकी परिसमाप्ति होती है। यह अपनी उक्तिका परिच्छेद यहाँपर विवक्षित है। इसप्रकार इतने प्ररूपणारूप प्रबन्धकेद्वारा स्वस्थान सयोगिकेवलीविषयक प्ररूपणाविशेषको समाप्त करके अब यहींपर चारित्रमोहनीय-प्रमुख घातिकर्मोंकी क्षपणाविधि समाप्त होती है, ऐसा किये गये निश्चयपूर्वक इसी क्षपणाधिकारकी चूलिकाका कथन करनेकेलिये आगेकी सूत्र गाथाओंको पढ़ते हैं। उनमें प्रथम सूत्रगाथा यह है—

*** यह मोक्षमार्गपर आरूढ़ हुआ जीव अनन्तानुबन्धीचतुष्क, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृतिमिथ्यात्व, मध्यकी अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और प्रत्याख्यानावरणचतुष्क ये आठ कषाय, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, छह नोकषाय, पुरुषवेद और क्रोध, मान, माया तथा लोभ ये चार संज्वलन कषाय इनका क्रमसे क्षय करता है।**

§ ३१६ यह सूत्रगाथा दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी पहले कही गई ही क्षपणाकी परिपाटीका सबका उपसंहारद्वारा कथन करनेकेलिये अवतीर्ण हुई है।

शंका—यह कैसे?

दंसणादो। तदो अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोयणकिरियाए पुव्वमेव णासेदि त्ति भणिदं होइ। 'मिच्छ' एवं भणिदे तदो दंसणमोहक्खवणमाढविय पुव्वं मिच्छत्तं खवेदि त्ति वुत्तं होइ। 'मिस्स' एवं भणिदे तदो पच्छा सम्मामिच्छत्तं खवेदि त्ति घेत्तव्वं। 'सम्मं' एवं भणिदे तदो पच्छा सम्मत्तं खवेदि त्ति भणिदं होदि। 'अट्ठ' एवं भणिदे पुव्वुत्तसत्तपयडीओ हेट्ठा चेव अप्पप्पणो ठाणे खवेयूण तदो खवगसेढिमारूढो संतो अणियट्टिगुणट्ठाणे अंतरकरणादो हेट्ठा चेव अट्ठकसाये णिट्ठवेदि त्ति वुत्तं होइ। एवं णवुंसयवेदादिपयडीणं पि खवणापरिवाडीगाथाणुसारेण वत्तव्वा। एत्तो बिदिया सुत्तगाहा—

* अथ थीणगिद्धिकम्मं णिद्दाणिद्दा य पयलपयला य।
अध णिरय-तिरियणामा झीणा संछोहणादीसु[1] ॥२॥

§ ३१७ एसा बिदिया सुत्तगाहा अट्ठकसायक्खवणादो पच्छा खविज्जमाणाणं थीणगिद्धिआदिसोलसपयडीणं णामणिद्देसकरणट्ठमोइण्णा सुगमा च। एदिस्से अत्थ-

---

समाधान—'अण' ऐसा कहनेपर अनन्तानुबन्धीचतुष्कका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि नामके एकदेशके निर्देशद्वारा भी नामवाले विषयके ठीक ज्ञानकी प्रसिद्धि हुई देखी जाती है। इसलिये अनन्तानुबन्धीचतुष्कका विसंयोजनक्रियाद्वारा पहले ही नाश करता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। 'मिच्छ' ऐसा कहनेपर तदनन्तर दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका आरम्भकर पहले मिथ्यात्वकी क्षपणा करता है, यह कहा गया है। 'मिस्स' ऐसा कहनेपर उसके बाद साम्यग्मिथ्यात्वकी क्षपणा करता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये। 'सम्म' ऐसा ग्रहण करनेपर उसके बाद सम्यक्त्वकी क्षपणा करता है, यह कहा गया है। 'अट्ठ' ऐसा कहनेपर पूर्वोक्त सात प्रकृतियोंके बाद ही अपने-अपने स्थानमें आठ कषायोंकी क्षपणा प्रारम्भ कर तदनन्तर क्षपकश्रेणिपर आरूढ़ होता हुआ अनिवृत्तिगुणस्थानमें अन्तरकरणक्रियाके करनेके बाद ही आठ कषायोंकी क्षपणाका निष्ठापन करता है, यह कहा गया है। इसप्रकार नपुंसकवेद आदि प्रकृतियोंकी भी क्षपणासम्बन्धीपरिपाटी गाथाके अनुसार करनी चाहिये। अब आगे दूसरी सूत्रगाथा कहते हैं—

*** अब मध्यकी आठ कषायोंकी क्षपणा करनेके पश्चात् स्त्यानगृद्धिकर्म, निद्रा-निद्रा और प्रचलाप्रचला तथा नरकगति और तिर्यञ्चगति नामवाली तेरह प्रकृतियाँ, इसप्रकार ये सोलह प्रकृतियाँ संक्रामकप्रस्थापकके द्वारा अन्तर्मुहूर्त पूर्वही सर्व संक्रमण आदिमें क्षीण की जा चुकी हैं ॥२॥**

§ ३१७ यह दूसरी सूत्रगाथा आठ कषायोंकी क्षपणाके अनन्तर क्षयको प्राप्त होनेवाली स्त्यानगृद्धि आदि सोलह प्रकृतियोंका नामनिर्देश करनेकेलिये अवतीर्ण हुई है और इसकी अर्थ-

---

१. (७५) १२८ भा० १५.

परूवणा, पुव्वमेव विहासियत्तादो। एत्तो अंतरकरणे कदे मोहणीयस्साणुपुव्वीसंकमो एदीए परिवाडीए पयट्टदि त्ति जाणावणट्ठमुवरिमाओ तिण्णि सुत्तगाहाओ पढइ—

* सव्वस्स मोहणीयस्स आणुपुव्वी य संकमो होइ।
लोभकसाये णियमा असंकमो होइ बोद्धव्वो ॥३॥

* संछुहदि पुरिसवेदे इत्थिवेदं णवुंसयं चेव।
सत्तेव णोकसाये णियमा कोधम्हि संछुहदि ॥४॥

* कोहं संछुहइ माणे माणं मायाए णियमसा छुहइ।
मायं च छुहइ लोहे पडिलोमो संकमो णत्थि ॥५॥

§ ३१८ गतार्थत्वान्नात्र किंचिद् व्याख्येयमस्ति एत्तो छट्ठी सुत्तगाहा—

* जो जम्हि संछुहंतो णियमा बंधम्हि होइ संछुहणा।
बंधेण हीणदरगे अहिये वा संकमो णत्थि ॥६॥

प्ररूपणा सुगम है, क्योंकि इसकी पहलेही विभाषा कर आये हैं। इसके आगे अन्तरकरण करलेनेपर मोहनीय कर्मका आनुपूर्वीसंक्रम इस परिपाटीसे प्रवृत्त होता है, इस बातका ज्ञान करानेकेलिये आगे तीन सूत्रगाथाओंको पढ़ते हैं—

* आगे मोहनीयकर्मकी सब प्रकृतियोंका आनुपूर्वी संक्रम होता है। किन्तु लोभकषायका नियमसे संक्रम नहीं होता, ऐसा जानना चाहिये ॥३॥

* स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका नियमसे पुरुषवेदमें संक्रमण करता है। तथा पुरुषवेद सहित सात नोकषायोंका नियमसे क्रोधसंज्वलनमें संक्रमण करता है ॥४॥

* वह क्षपक क्रोधसंज्वलनको नियमसे मानसंज्वलनमें संक्रान्त करता है, मानसंज्वलनको नियमसे मायासंज्वलनमें संक्रान्त करता है। तथा मायासंज्वलनको नियमसे लोभसंज्वलनमें संक्रान्त करता है। इनका प्रतिलोमविधिसे संक्रम नहीं होता ॥५॥

§ ३१८ इन सूत्रगाथाओंका अर्थ ज्ञात हो जानेसे इनके विषयमें कुछ व्याख्यान करने योग्य नहीं है। अब इसके आगे छठी सूत्रगाथा कहते हैं—

* जो जीव जिस बध्यमान प्रकृतिमें संक्रमण करता है उसका नियमसे बन्धमें ही संक्रमण होता है। तथा उसका बन्धसे हीनतर स्थितिमें भी संक्रमण करता है, किन्तु बन्धसे अधिकतर स्थितिमें संक्रमण नहीं होता ॥६॥

---

१. कोहस्स ता०।

§ ३१९ एसा वि सुत्तगाहा आणुपुव्वीसंकमावसरे पुव्वमेव उक्कड्डणासंकमं परपयडिसंकमं च समस्सियूण विहासिदा त्ति ण एत्थ किंचि वक्खाणेयव्वमत्थि। एत्तो खवगस्स अणुभागपदेसविसयाणं बंधोदयसंकमाणं थोवबहुत्तावहारणट्ठमुवरिमाणं तिण्हं सुत्तगाहाणमवयारो--

* बंधेण होइ उदयो अहिओ उदयेण संकमो अहिओ।
गुणसेढि अणंतगुणा बोद्धव्वा होइ अणुभागे[1] ॥७॥

* बंधेण होइ उदओ अहिओ उदएण संकमो अहिओ।
गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा[2] ॥८॥

* उदयो च अणंतगुणो संपहि बंधेण होइ अणुभागे।
से काले उदयादो संपहि बंधो अणंतगुणो[3] ॥९॥

§ ३२० एदासिं तिण्हं सुत्तगाहाणमत्थो जहा पुव्वं विहासिदो तहा चेव पुणो वि अणुभासियव्वो। एत्तो चरिमसमयबादरसांपराइयस्स सव्वकम्माणं ट्ठिदिबंधपमाणावहारणट्ठं दसमी गाहा समोइण्णा--

---

§ ३१९ इस सूत्रगाथाकी भी आनुपूर्वी संक्रमके अवसरपर पहलेही उत्कर्षण संक्रम और परप्रकृति संक्रमका आश्रय करके विभाषा कर आये हैं, इसलिये यहाँपर कुछ भी व्याख्यान करनेयोग्य नहीं है। आगे क्षपकके अनुभाग और प्रदेशविषयक बन्ध, उदय और संक्रमके अल्पबहुत्वका निश्चय करनेकेलिये आगे तीन सूत्रगाथाओंका अवतार करते हैं—

* बन्धसे उदय अधिक होता है और उदयसे संक्रम अधिक होता है। इसप्रकार अनुभागमें गुणश्रेणी अनन्तगुणी जानने योग्य है ॥७॥

* बन्धसे उदय अधिक होता है और उदयसे संक्रम अधिक होता है। इसप्रकार प्रदेशपुंजकी अपेक्षा गुणश्रेणि असंख्यातगुणी जाननी चाहिये ॥८॥

* अनुभागके विषयमें साम्प्रतिक बन्धसे साम्प्रतिक उदय अनन्तगुणा होता है तथा तदनन्तर समयमें होनेवाले उदयसे साम्प्रतिक बन्ध अनन्तगुणा होता है ॥९॥

§ ३२० इन तीनों सूत्रगाथाओंके अर्थकी जैसे पहले विभाषा कर आये हैं उसीप्रकार उनकी फिर भी विभाषा करनी चाहिये। अब बादरसाम्परायिक जीवके अन्तिम समयमें सब कर्मोंके स्थितिबन्धके प्रमाणका अवधारण करनेकेलिये दसवीं गाथा अवतीर्ण हुई है—

---

१. (१०) १४३ भाग १५। २. (११) १४४ भाग० १५। ३. (१२) १४५ भाग १५।

* चरिमे बादररागे णामागोदाणि वेदणीयं च।
वस्सस्संतो बंधदि दिवसस्संतो य जं सेसं ॥१०॥

§ ३२१ गतार्थत्वान्नैतद्गाथासूत्रमनुटीक्यते। चूलिकाप्ररूपणार्थं तु पुनरुक्तगाथोपन्यासेऽपि न किंचिद्दुष्यतीति प्रतिपत्तव्यम्। एत्तो एक्कारसमी सुत्तगाहा—

* जं चावि संछुहंतो खवेइ किट्टिं अबंधगो तिस्से।
सुहुमम्हि संपराये अबंधगो बंधगियराणं ॥११॥

§ ३२२ एसा वि गाहा पुव्वमेव सुणिण्णीदत्था त्ति ण एत्थ किंचि वक्खाणेयव्वमत्थि। एवमेदाओ एक्कारस सुत्तगाहाओ सुहुमसांपराइयगुणट्ठाणपज्जंताए चरित्तमोहक्खवणाए चूलियाभावेण दट्ठव्वाओ। एत्तो खीणकसायद्धाए तिण्हं घादिकम्माणमुदयोदीरणादिविसेसपदुप्पायणमुहेण तेसिं खवणविहाणपरूवणट्ठं सजोगिकेवलिगुणट्ठाणसरूवणिरूवणट्ठं च बारसमीए सुत्तगाहाए समोयारो——

---

* बादररागके अन्तिम समयमें क्षपकजीव नाम, गोत्र और वेदनीयकर्मको एक वर्षके भीतर बाँधता है तथा शेष रहे तीन घातिकर्मोंको एक दिवसके भीतर बाँधता है ॥१०॥

§ ३२१ गतार्थ होनेसे इस गाथासूत्रकी टीका नहीं करते हैं। चूलिकाका प्ररूपण करनेकेलिये तो उक्त सूत्रगाथाओंका पुनः कथन करनेपर भी कोई दोष नहीं है, ऐसा यहाँ जानना चाहिये। अब आगे ग्यारहवीं सूत्रगाथा कहते हैं—

* जिस कृष्टिको संक्रमण करता हुआ क्षय करता है उस कृष्टिका वह क्षपक बन्धक नहीं होता तथा सूक्ष्मसाम्परायमें तत्सम्बन्धी कृष्टियोंका अबन्धक होता है। किन्तु इतर कृष्टियोंका [वेदन या क्षपणकालमें] वह बन्धक होता है ॥११॥

§ ३२२ इस सूत्रगाथाके अर्थका भी पहले ही अच्छी तरहसे निर्णय कर आये हैं, इसलिये यहाँपर कुछ भी व्याख्यान करने योग्य नहीं है। इसप्रकार ये ग्यारह सूत्रगाथायें सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थानतक चारित्रमोहनीयकी क्षपणामें चूलिकारूपसे जानना चाहिये। आगे क्षीणकषायके कालमें तीन घातिकर्मोंका उदय और उदीरणा आदिरूप विशेषके प्रतिपादनद्वारा उनकी क्षपणाविधिके प्ररूपण करनेकेलिये सयोगिकेवली गुणस्थानके स्वरूपका प्रतिपादन करनेकेलिये बारहवीं सूत्रगाथाका अवतार करते हैं—

---

१. क० प्रती चरिमो बादररागो (१५६) २०९ इति पाठः।

* जाव ण छदुमत्थादो णिस्सरदि ताव तिण्हं घादीणं वेदगो होइ।
अध णंतरेण खइया सव्वण्हू सव्वदरिसी य ॥१२॥

§ ३२३ यावत् खलु छद्मस्थपर्यायान्न निष्क्रामति तावत्त्रयाणां घातिकर्मणां ज्ञानदृगावरणान्तरायसंज्ञितानां नियमाद्वेदको भवति, अन्यथा छद्मस्थभावानुपपत्तेः। अथानन्तरसमये द्वितीयशुक्लध्यानाग्निना निर्दग्धाशेषघातिकर्मद्रुमगहनः छद्मस्थपर्यायान्निष्क्रान्तस्वरूपः क्षायिकीं लब्धिमवष्टभ्य सर्वज्ञः सर्वदर्शी च भूत्वा विहरतीत्ययमत्र गाथार्थसंग्रहः एवमेदासिं बारसण्हं सुत्तगाहाणमत्थे विहासिय समत्ते तदो चरित्तमोहक्खवणाए चूलिया समत्ता भवदि। तदो चरित्तमोहक्खवणासण्णिदो कसायपाहुडस्स पण्णारसमो अत्थाहियारो समप्पदि त्ति जाणावणट्ठमुवसंहारवक्कमाह—

* चरित्तमोहक्खवणा त्ति समत्ता।

§ ३२४ एवं कसायपाहुडसुत्ताणि सपरिभासाणि समत्ताणि। सव्वसमासेण वेसदतेत्तीसाणि।

एवं कसायपाहुडं समत्तं।

•

---

* यह क्षीणकषाय गुणस्थानवाला क्षपक जब तक छद्मस्थ अवस्थासे नहीं निकलता है तब तक ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन घातिकर्मों का वेदक होता है। तदनन्तर उक्त तीन घातिकर्मोंका क्षय करके सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होता है ॥१२॥

§ ३२३ यह क्षपक जबतक छद्मस्थ पर्यायसे नहीं निकलता है तबतक वह ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय संज्ञावाले इन तीन घातिकर्मों का नियमसे वेदक होता है, क्योंकि अन्य प्रकारसे छद्मस्थपना नहीं बन सकता है। इसके अनन्तर समयमें द्वितीय शुक्लध्यानरूपी अग्निसे समस्त घातिकर्मरूपी वृक्षोंके वनको जलाकर और छद्मस्थ पर्यायसे निकलकर क्षायिकी लब्धिका अवलम्बनकर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी होकर विहार करता है, यह यहाँपर गाथाका समुच्चयरूप अर्थ है। इसप्रकार इन बारह सूत्रगाथाओंके अर्थकी विभाषा करके समाप्त होनेपर तदनन्तर चारित्रमोहक्षपणा नामक अनुयोगद्वारकी चूलिका समाप्त होती है। इसप्रकार चारित्रमोहक्षपणा नामक कषायप्राभृतका पन्द्रहवाँ अधिकार समाप्त होता है, इस बातका ज्ञान करानेकेलिये उपसंहार वचनको कहते हैं—

* इसप्रकार चारित्रमोहक्षपणा नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ३२४ इसप्रकार परिभाषाओंके साथ कषायप्राभृतके सूत्र समाप्त हुये। उन सबका योग २३३ है।

इसप्रकार कषायप्राभृत समाप्त हुआ।

•

गणहरदेवाण णमो गोदम-लोहज्ज-जंबुसामीणं ।
जिणवरवयणविणिग्गयदिव्वज्झुणी विवरिया जेहिं ॥ १ ॥

ते उसहसेणपमुहा गणहरदेवा जयंति सव्वे वि ।
सुदरयणायरपारो दूरो वि पराइयो जेहिं ॥ २ ॥

इय सुहुमदुरहिगमभंगसंकुलं णयसहस्सगंभीरं ।
गाहासुत्तत्थमिणं णिस्सेसं को भणेज्ज छदुमत्थो ॥ ३ ॥

तह वि गुरुसंपदायं मणम्मि काऊण पुव्वसूरीणं ।
आदरिसदंसणेण य दरिसियमेदं दिसामेत्तं ॥ ४ ॥

अब्भपडलं व सुत्तं बहुभंगतरंगभंगुरं जम्हा ।
वित्थारजाणएहिं वित्थरियव्वं हवे तम्हा ॥ ५ ॥

जं एत्थत्थक्खलियं सद्दक्खलियं च जं हवे किंचि ।
तं पूरेंतु महंता मिच्छा मे दुक्कडं तस्स ॥ ६ ॥

होइ सुगमं पि दुग्गम-मणिवुणवक्खाणकारदोसेण ।
जयधवलाकुसलाणं सुगमच्चिय दुग्गमा वि अत्थगई ॥ ७ ॥

●

जिन्होंने जिनवरके मुखसे निकली हुई दिव्यध्वनिको विस्तारसे कहा उन गौतमस्वामी, लोहार्या और जम्बूस्वामी [आदि] गणधरोंको हमारा नमस्कार होओ ॥ १ ॥

जिन्होंने श्रुतरत्नरूपी सागरसे पार होकर उसे दूरसे ही पराजित कर दिया है ऐसे जो वृषभसेन प्रमुख गणधर हो गये हैं वे सब भी जयवन्त होवें ॥ २ ॥

इन गाथासूत्रोंका अर्थ सूक्ष्म है, दुरधिगम्य है, भंगोंसे संकुल है और हजारों नयोंसे गम्भीर है; अतः ऐसा कौन छद्मस्थ है जो उसका पूरी तरहसे कथन कर सके ॥ ३ ॥

तो भी पूर्वमें हुए आचार्योंकेद्वारा चले आ रहे गुरुसम्प्रदायको मनमें धारण करके आदर्शके देखनेके समान इसका दिशामात्र कथन किया है ॥ ४ ॥

यतः यह सूत्रग्रन्थ मेघपटलके समान बहुत प्रकारकी तरंगोंसे भंगुर है; अतः विस्तारको जाननेवाले पुरुषोंकेद्वारा इसका विस्तारसे वर्णन किया जाना चाहिये ॥ ५ ॥

इसके कथनमें मेरे द्वारा जो कुछ भी अर्थका स्खलन हुआ है या जो कुछ शब्दोंका स्खलन हुआ है उसे महापुरुष पूरा करें । उस सम्बन्धविषयक मेरा दुष्कृत मिथ्या होओ ॥ ६ ॥

जो महानुभाव इसके व्याख्यान करनेमें निपुण नहीं हैं उनके उस दोषके कारण इसका व्याख्यान सुगम होकर भी दुर्गम हो जाता है। तथा जो जयधवलाकेद्वारा इसका व्याख्यान करनेमें कुशल हैं उनकेलिये इस कषायप्राभृतके अर्थका ज्ञान दुर्गम होते हुए भी सुगम हो जाता है ॥ ७ ॥

●

पच्छिमखंध-अत्थाहियार

शब्दब्रह्मेति शाब्दैर्गणधरमुनिरित्येव राद्धान्तविद्भिः,
साक्षात्सर्वज्ञ एवेत्यवहितमतिभिः सूक्ष्मवस्तुप्रणीतौ ।
यो दृष्टो विश्वविद्यानिधिरिति जगति प्राप्तभट्टारकाख्यः,
स श्रीमान्वीरसेनो जयति परमतध्वान्तभित्तंत्रकारः ।।१।।

जे ते तिलोयमत्थयसिहामणी गुणमयूहविप्फुरिया ।
सिद्धा जयंति सव्वे लद्धसहावा विसुद्धसव्वत्था ।। २ ।।

जेसिं णवप्पयारा केवललद्धिप्पहा परिप्फुरइ ।
भवियजणकमलबोहण दिवायरा ते जयंति अरहंता ।। ३ ।।

पद्धोरिय धम्मपहा णिद्धोयकलंक-धवलचारित्तधया ।
सद्धम्मधोरिया ते सुद्धिं मे देंतु सूरिवरसत्थवहा ।। ४ ।।

अज्झप्पविज्जणिवुणा सज्झायज्झाणजोगसंजुत्ता ।
सज्जणकमलविबोहणसुज्जा पसियंतु मे उवज्झाया ।। ५ ।।

पश्चिमस्कन्ध अर्थाधिकार

[अब पश्चिमस्कन्ध नामका अर्थाधिकार प्रारम्भ होता है ।]

जो वीरसेनस्वामी वैयाकरणोंकेद्वारा शब्दब्रह्म माने गये हैं, सिद्धान्तके ज्ञाताओंकेद्वारा जो गणधर मुनि माने गये हैं, अवहित मतिवालोंकेद्वारा सूक्ष्म वस्तुकी रचनामें जो साक्षात् सर्वज्ञ ही स्वीकार किये गये हैं, जो विश्व-विद्यानिधिके दृष्टा हैं तथा जिन्होंने लोकमें भट्टारक संज्ञाको प्राप्त किया है वे परमतरूपी अन्धकारको भेदनेवाले सिद्धान्तकार श्रीमान् वीरसेनस्वामी जयवन्त होवें ।।१।।

जो तीन लोकके मस्तकके शिखामणिके समान हैं, जो गुणरूपी किरणोंको विस्फुरित करनेवाले हैं, जिन्होंने आत्मस्वभावको प्राप्त कर लिया है और जो तीनों कालोंके समस्त पदार्थोंके जानकार हैं वे सब सिद्ध जयवन्त रहें ।। २ ।।

जिनको नौ प्रकारकी केवल-लब्धियोंकी प्रभा स्फुरित हो रही है तथा जो भव्यजनरूपी कमलोंको विकसित करनेकेलिए दिवाकरके समान हैं वे अरहन्तपरमेष्ठी जयवन्त रहें ।। ३ ।।

जिन्होंने धर्मपथकी धुराको अच्छी तरहसे धारण किया है, जो अन्तरंग और बहिरंग कलंकको धोकर उज्ज्वल चारित्ररूपी ध्वजा धारण करनेवाले हैं और जो सद्धर्मके धारण करनेवालोंमें अग्रणी हैं वे सूरिवररूपी सार्थवाह हमें शुद्धि प्रदान करें ।। ४ ।।

जो अध्यात्मविद्यामें निपुण हैं, जो स्वाध्याय, ध्यान और योगसे संयुक्त हैं तथा जो सज्जनरूपी कमलोंको विकसित करनेमें सूर्यके समान हैं वे उपाध्यायपरमेष्ठी हमपर प्रसन्न हों ।। ५ ।।

जे मोहसेण्णपच्छिमक्खंधं भेत्तूण अग्गिमक्खंधे ।
लद्धजया सुद्धगुणा असुब्भडा[1] ते जयंति मुणिसुहडा[2] ।। ६ ।।

इति पञ्च गुरूनेतान् प्रणम्य कृतमङ्गलः ।
वक्ष्यामि पश्चिमस्कन्धं श्रुतस्कन्धाग्रचूलिकाम् ।। ७ ।।

* पच्छिमक्खंधे त्ति अणियोगद्दारे तत्थि इमा मग्गणा ।

§ ३२५ पच्छिमक्खंधे त्ति जो सो अत्थाहियारो सयलसुदक्खंधस्स चूलियाभावेण समवट्ठिदो तम्मि वक्खाणिज्जमाणे तत्थ इमा मग्गणा अहिकीरदि त्ति वुत्तं होइ। पश्चाद्भवः पश्चिमः, पश्चिमश्चासौ स्कन्धश्च पश्चिमस्कंधः। खीणेसु घादिकम्मेसु जो पच्छा समुवलब्भइ कम्मइयक्खंधो अघाइचउक्कसरूवो सो पश्चिमक्खंधो त्ति भण्णदे, खयाहिमुहस्स तस्स सव्वपच्छिमस्स तहा ववएससिद्धीए णाइयत्तादो। अहवा खीणावरणिज्जेसु केवलीसु जो समुवलब्भइ चरिमोरालियसरीरणोकम्मक्खंधो तेजोकम्मइयसरीरसहगदो सो वि पच्छिमक्खंधो त्ति घेत्तव्वो, सव्वपच्छिमत्तादो। पच्छिमकम्मइयक्खंधचरिमोरालियसरीरक्खंधसंबंधो सजोगिकेवलीणं जो जीवपदेसक्खंधो सो वि पच्छिमक्खंधो त्ति एत्थ वक्खाणेयव्वो; केवलि समुग्घाद जोगणिरोहादिकिरियाणं तव्विसयाण-

जिन्होंने मोहरूपी सेनाके अन्तिम स्कन्धको भेदकर अग्रिमस्कन्धमें जयको प्राप्त किया है, जो शुद्ध गुणोंसे युक्त हैं और जो अक्षुण्णकीर्तिके धनी हैं वे मुनि सुभट जयवन्त हों ।। ६ ।।

इसप्रकार इन पाँच गुरुओंको प्रणाम करके मंगलाचरणको सम्पन्न करनेवाला मैं श्रुतस्कन्धकी मुख्य चूलिकास्वरूप पश्चिमस्कन्धका व्याख्यान करूँगा ।। ७ ।।

* पश्चिमस्कन्ध नामक अनुयोगद्वारमें यह मार्गणा अधिकृत है ।

§ ३२५ पश्चिमस्कन्ध नामका जो यह अर्थाधिकार है वह समस्त श्रुतस्कन्धकी चूलिकारूपसे अवस्थित है, उसका व्याख्यान करनेपर उसमें यह मार्गणा अधिकृत है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। जो अन्तमें होता है वह पश्चिम है। पश्चिम जो स्कन्ध वह पश्चिमस्कन्ध है। घाति कर्मोंके क्षीण हो जानेपर जो अघातिचतुष्कस्वरूप कर्मस्कन्ध पश्चात् उपलब्ध होता है वह पश्चिमस्कन्ध कहा जाता है, क्योंकि क्षयके अभिमुख हुए सबसे अन्तिम उसको उस प्रकारकी संज्ञाकी सिद्धि न्यायप्राप्त है। अथवा जिनके आवरण कर्म क्षीण हो गये हैं ऐसे केवलियोंके जो तैजस शरीर और कार्मण शरीरके साथ प्राप्त होनेवाला अन्तिम औदारिक शरीर नोकर्मस्कन्ध होता है सो वह भी पश्चिमस्कन्ध है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि वह सबसे अन्तिम है। तथा अयोगिकेवलीके अन्तिम कार्मणस्कन्धके साथ अन्तिम औदारिक शरीरस्कन्धसे सम्बद्ध जो जीवप्रदेशस्कन्ध है वह भी पश्चिमस्कन्ध है ऐसा यहाँ व्याख्यान करना चाहिये, क्योंकि तद्विषयक केवलिसमुद्घात और

१. आ० ता० प्रत्योः असुब्भवा इति पाठः ।
२. आ० ता० प्रत्योः सुहवा इति पाठः ।

मेत्थाहियारे णिरूवणोवलंभादो[1]। तदो एवं विहस्स सव्वस्स पच्छिमक्खंधस्स परूवणादो एसो अत्थाहियारो पच्छिमक्खंधो त्ति घेत्तव्वो।

§ ३२६ णेदमेत्थासंकणिज्जं; पण्णारसमहाहियारेहिं असीदिसदमूलगाहासु समासगाहासु पडिबद्धत्थवक्खाणएहिं कसायपाहुडे वित्थारेण परूविय समत्ते संते पुणो किमट्ठमेदस्स पच्छिमक्खंधसण्णिदस्स अत्थाहियारस्स समोदारो त्ति। किं कारणं? खवणाहियारसंबंधेणेव पच्छिमक्खंधावयारब्भुवगमादो। ण चाघादिकम्माणं खवणाए विणा खवणाहियारो संपुण्णो होइ, विरोहादो। तम्हा खवणाहियारसंबंधेणेवतस्स चूलियाभावेणेसो पच्छिमक्खंधाहियारो परूविज्जदि त्ति सुसंबद्धमेदं। महाकम्मपयडिपाहुडस्स चउवीसाणियोगद्दारेसु पडिबद्धो एसो पच्छिमक्खंधाहियारो कधमेत्थ कसायपाहुडे परूविज्जदि त्ति, णासंका कायव्वा, उहयत्थ वि तस्स पडिबद्धत्तब्भुवगमे बाहाणुवलंभादो।

§ ३२७ ततः सूक्तमेवं प्रसिद्धसंबंधो यः पश्चिमस्कन्ध इत्यधिकारः समस्तश्रुतस्कन्धस्य चूलिकाभावेन व्यवस्थितस्तमिदानीं व्याख्यास्यामः। तत्र चेयमर्थभाग-

---

योगनिरोध आदि क्रियाओंका इस अधिकारमें निरूपण उपलब्ध होता है। इसलिये इस प्रकारके पूरे पश्चिमस्कन्धका प्ररूपण करनेवाला होनेसे यह अर्थाधिकार पश्चिमस्कन्ध है ऐसा ग्रहण करना चाहिये।

§ ३२६ यहाँपर ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये कि भाष्यगाथाओंके साथ एक सौ अस्सी मूलगाथाओंके साथ सम्बन्ध रखनेवाले अर्थके व्याख्यानद्वारा कषायप्राभृतके विस्तारसे प्ररूपण करके समाप्त होनेपर फिर किसलिये पश्चिमस्कन्ध संज्ञावाले इस अर्थाधिकारका अवतार किया जा रहा है, क्योंकि क्षपणाधिकारके सम्बन्धसे ही पश्चिमस्कन्धका अवतार स्वीकार किया है। और अघातिकर्मोंकी क्षपणाके बिना क्षपणाधिकार सम्पूर्ण नहीं होता है, क्योंकि ऐसा स्वीकार करनेमें विरोध आता है, इसलिये क्षपणाधिकारके सम्बन्धसे ही उसको चूलिकारूपसे इस पश्चिमस्कन्ध अधिकारका प्ररूपण किया जा रहा है, इस प्रकार यह सब सुसम्बद्ध ही है।

शंका—महाकर्मप्रकृतिप्राभृतके चौवीस अनुयोगद्वारोंसे सम्बन्ध रखनेवाले इस पश्चिमस्कन्ध नामक अधिकारका यहाँ कषायप्राभृतमें कैसे प्ररूपण किया जा रहा है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि महाकर्मप्रकृतिप्राभृत और कषायप्राभृत दोनों ही आगमोंमें उसका सम्बन्ध स्वीकार करनेमें बाधा नहीं उपलब्ध होती।

§ ३२७ इसलिये हमने यह अच्छा ही कहा है कि प्रसिद्ध सम्बन्धवाला जो पश्चिमस्कन्ध नामक अधिकार है वह पूरे श्रुतस्कन्धका चूलिकारूपसे व्यवस्थित है, उसका इस समय व्याख्यान

---

१. आ० प्रतौ णिरूवमाणावलंभादो इति पाठः।

णाधिकियत इति । सा पुनरत्थमार्गणा इत्थमनुगंतव्या इति प्रतिपादयितुकामः सूत्रप्रबंधमुत्तरं प्राह—

*** अंतोमुहुत्ते आउगे सेसे तदो आवज्जिदकरणे कदे तदो केवलिसमुग्घादं करेदि ।**

§ ३२८ केवलणाणमुप्पाइय सत्थाणसजोगिकेवली होदूण देसूणपुव्वकोडिमुक्कस्सेण विहरिय तदो अंतोमुहुत्तावसेसे आउगे अघादिकम्माणं ठिदिसमीकरणट्ठं पुव्वमावज्जिदकरणं णाम किरियंतरमाढवेइ । किमावज्जिदकरणं णाम । केवलिसमुग्घादस्स अहिमुहीभावो आवज्जिदकरणमिदि भण्णदे ।

§ ३२९ तमंतोमुहुत्तमणुपालेदि । अंतोमुहुत्तमावज्जिदकरणेण विणा केवलिसमुग्घादकिरियाए अहिमुहीभावाणुववत्तीओ । ताधेव णामागोदवेदणीयाणं पदेसपिंडमोकड्डियूण उदये पदेसग्गं थोवं देदि, से काले असंखेज्जगुणं । एवं असंखेज्जगुणाए सेढीए णिक्खिवमाणो गच्छइ जाव सेससजोगिअद्धादो अजोगिअद्धादो च विसेसाहियभावेण समवट्ठिदगुणसेढिसीसयं ति । एदं पुण गुणसेढिसीसयं सत्थाणसजोगिकेवलिणा तदणंतरहेट्ठिमसमये वट्टमाणेण णिक्खित्तगुणसेढिआयामादो संखेज्जगुणहीणमद्धाणं हेट्ठा

करेंगे । उसमें यह अर्थमार्गणा अधिकृत है । परन्तु वह अर्थमार्गणा इस प्रकार जाननी चाहिये ऐसा प्रतिपादनकी इच्छा रखनेवाले आचार्य यतिवृषभ इस सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** आयुकर्मके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेके बाद आवर्जित करणके किये जानेपर तदनन्तर अरहन्तदेव केवलिसमुद्घात करते हैं ।**

§ ३२८ केवलज्ञानको उत्पन्न करके तथा स्वस्थानसयोगिकेवली होकर उत्कृष्टसे कुछ कम एक पूर्वकोटि कालतक विहार करके तत्पश्चात् आयुकर्मके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर अघातिकर्मोंकी स्थितिको समान करनेकेलिये पहले आवर्जित-करण नामकी दूसरी क्रियाको आरम्भ करता है ।

शंका—आवर्जितकरण क्या है ?

समाधान—केवलिसमुद्घातके अभिमुख होना आवर्जितकरण कहा जाता है ।

§ ३२९ उसे यह अन्तर्मुहूर्त कालतक पालन करता है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त कालतक आवर्जितकरण हुए बिना केवलिसमुद्घातक्रियाका अभिमुखीभाव नहीं बन सकता । उसी कालमें ही नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मके प्रदेशपिण्डका अपकर्षण करके उदयमें थोड़े प्रदेशपुंजको देता है । अनन्तर समयमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको देता है । इस प्रकार असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे निक्षेप करता हुआ शेष रहे सयोगीके कालसे और अयोगीके कालसे विशेषरूपसे अवस्थित गुणश्रेणिशीर्षके प्राप्त होनेतक जाता है । परन्तु यह गुणश्रेणिशीर्ष स्वस्थान सयोगिकेवलीद्वारा उसके अनन्तर अधस्तन समयमें वर्तमान रहते हुए निक्षिप्त किये गये गुणश्रेणि आयामसे संख्यातगुणहीन स्थान जाकर

ओसरिदूण चिट्ठदि त्ति दट्ठव्वं। पदेसग्गेण पुण तत्तो असंखेज्जगुणपदेसविण्णासोवलक्खियमेदमिदि वत्तव्वं। कुदो एवं परिच्छिज्जदे ? एक्कारसगुणसेढिसरूवणिरूवयगाहासुत्तादो।

§ ३३० तदो गुण-सेढिसीसयादो उवरिमाणंतरट्ठिदीए वि असंखेज्जगुणमेव णिसिंचदि। तत्तो उवरि सव्वत्थ विसेसहीणं णिक्खिवदि। एवमावज्जिदकरणकालब्भंतरे सव्वत्थ गुणसेढिणिक्खेवो णायव्वो। एत्थ दिस्समाणपरूवणा जाणिय णेदव्वा। किमेसो किरियाहिमुहसजोगिकेवलिस्स गुणसेढिणिक्खेवो सत्थाणसजोगिकेवलिस्सेव अवट्ठिदायामो आहो गलिदसेसायामो त्ति? णिक्खेवकरणाए अवट्ठिदायामो त्ति णिच्छयो कायव्वो।

§ ३३१ एत्तो प्पहुडि जाव सजोगिदुचरिमट्ठिदिकंडयचरिमफालि त्ति ताव एदम्मि विसये अवट्ठिदसरूवेणेदस्स गुणसेढिणिक्खेवायामस्स पवुत्तिणियमदंसणादो। ण चेदमसिद्धं; सुत्ताविरुद्धपरमगुरुसंपदायबलेण सुपरिणिच्छिदत्तादो। णेदमेत्थासंकणिज्जं, सत्थाणकेवलिणो किरियाहिमुहकेवलिणो च अवट्ठिदेगसरूवपरिणामत्ते संते कुदो

अवस्थित है ऐसा जानना चाहिये। परन्तु प्रदेशपुंजकी अपेक्षा उससे यह असंख्यातगुणे प्रदेशविन्यास से उपलक्षित होता है ऐसा कहना चाहिये।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यह ग्यारह गुणश्रेणियोंके स्वरूपका निरूपण करनेवाले गाथासूत्रसे जाना जाता है।

§ ३३० उस गुणश्रेणिशीर्षसे उपरिम अनन्तर स्थितिमें भी असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको ही सींचता है। उसके बाद ऊपर सर्वत्र विशेषहीन प्रदेशपुंजको ही निक्षिप्त करता है। इस प्रकार आवर्जित करणकालके भीतर सर्वत्र गुणश्रेणिनिक्षेप जानना चाहिये। यहाँ पर दृश्यमान प्ररूपणा जानकर ले जाना चाहिये।

शंका—आवर्जित क्रियाके अभिमुख हुए सयोगीकेवलीके यह गुणश्रेणिनिक्षेप स्वस्थान सयोगिकेवलीके समान अवस्थित आयामवाला होता है या गलितशेष आयामवाला होता है ?

समाधान—निक्षेपरूप करनेकी क्रियामें यह अवस्थित आयामवाला होता है, ऐसा निश्चय करना चाहिये।

§ ३३१ इससे आगे सयोगीकेवलीके द्विचरम स्थितिकाण्डकी अन्तिम फालिके प्राप्त होने तक इस विषयमें अवस्थितरूपसे इस गुणश्रेणिनिक्षेप सम्बन्धी आयामकी प्रवृत्तिका नियम देखा जाता है। और यह असिद्ध नहीं है, क्योंकि यह सूत्रसे अविरुद्ध परम गुरुओंके सम्प्रदायके बलसे सुनिश्चित होता है।

एवमेत्थुद्देसे गुणसेढिणिक्खेवस्स विसरिसभावो जादो त्ति ? किं कारणं ? वीयराग-परिणामभेदाभावे वि अंतोमुहुत्तसेसाउसव्वपेक्खाणमंतरंगपरिणामविसेसाणं किरियाभेद-साहणभावेण पयट्टमाणाणं पडिबंधाभावादो ।

§ ३३२ एवमंतोमुहुत्तमेत्तकालमावज्जिदकरणविसयं वावारविसेसमणुपालिय तम्मि णिट्ठिदे तदो से काले केवलिसमुग्घादं करेदि त्ति सुत्तत्थसंबंधो । को केवलि-समुग्घादो णाम ? वुच्चदे उद्गमनमुद्घातः, जीवप्रदेशानां विसर्पणमित्यर्थः । समीचीन उद्घातः समुद्घातः । केवलिनां समुद्घातः केवलिसमुद्घातः । अघातिकर्मस्थितिसमी-करणार्थं केवलिजीवप्रदेशानां समयाविरोधेन ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च विसर्पणं केवलिसमु-द्घात इत्युक्तं भवति । अत्र 'केवलि' विशेषणं शेषाशेषसमुद्घातविशेषव्युदासार्थमवगंतव्यम्, तेषामिहानधिकारात् । स एष केवलिसमुद्घातो दंड-कपाट-प्रतर-लोकपूरणभेदेन च चतुर-वस्थात्मकः प्रत्येतव्यः । तत्र तावद्दंडसमुद्घातस्वरूपनिरूपणार्थमुत्तरसूत्रमाह—

* पढमसमये दंडं करेदि ।

शंका—स्वस्थानकेवलीके या आवर्जित क्रियाके अभिमुख हुए केवलीके अवस्थित एक रूप परिणामके रहते हुए इस स्थानमें गुणश्रेणिनिक्षेपका इस प्रकार विसदृशपना कैसे हो गया है, इसका क्या कारण है ?

समाधान—यहाँ पर ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वीतराग परिणामोंमें भेदका अभाव होने पर भी वे अन्तरंग परिणामविशेष अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुकी अपेक्षा सहित होते हैं और आवर्जितकरण क्रियाके भेदरूप साधनभावसे प्रवृत्त होते हैं, इसलिये यहाँपर गुणश्रेणिनिक्षेप-के विसदृश होनेमें प्रतिबन्धका अभाव है ।

§ ३३२ इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त प्रमाणकाल तक आवर्जितकरणविषयक व्यापार विशेषका अनुपालनकर उसके समाप्त होनेपर इसके बाद अनन्तर समयमें केवलिसमुद्घातको करता है यह इस सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है ।

शंका—केवलिसमुद्घात किसका नाम है ?

समाधान—कहते हैं, उद्गमनका अर्थ उद्घात है । इसका अर्थ है—जीवके प्रदेशोंका फैलना । समीचीन उद्घातको समुद्घात कहते हैं । केवलियोंके समुद्घातका नाम केवलिसमुद्घात है । अघातिकर्मोंकी स्थितिको समान करनेके लिये केवली जीवके प्रदेशोंका समयके अविरोधपूर्वक ऊपर, नीचे और तिरछे फैलना केवलिसमुद्घात है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

यहाँ केवलिसमुद्घात पदमें 'केवलि' विशेषण शेष समस्त समुद्घात विशेषोंके निराकरण करनेके लिये जानना चाहिये, क्योंकि उन समुद्घातोंका प्रकृतमें अधिकार नहीं है । वह यह केवलि-समुद्घात दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरणके भेदसे चार अवस्थारूप जानना चाहिये । उन भेदों-मेंसे सर्वप्रथम दण्डसमुद्घातके स्वरूपका निरूपण करनेके लिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

* केवलीभगवान् प्रथम समयमें दण्डसमुद्घात करते हैं ।

§ ३३३ प्रथमसमये तावद्दंडसमुद्घातं करोतीत्यर्थः। किंलक्षणो सो दंडसमुद्घात इति चेदुच्यते—अंतोमुहुत्ताउगे सेसे केवली समुद्घातं करेमाणो पुव्वाहिमुहो उत्तराहिमुहो वा होदूण काउस्सग्गेण वा करेदि पलियंकासणेण वा। तत्थ काउस्सग्गेण दंडसमुद्घादं कुणमाणस्स मूलसरीरपरिणाहेण देसूण चोद्दसरज्जुआयामेण दंडायारेण जीवपदेसाणं विसप्पणं दंडसमुग्घादो णाम। एत्थ 'देसूण' पमाणं हेट्ठा उवरिं च लोयपेरंतवादवलयरुद्धखेत्तमेत्तं होदि त्ति दट्ठव्वं; सहावदो चेव तदवत्थाए वादवलयब्भंतरे केवलिजीवपदेसाणं पवेसाभावादो। एवं चेव पलियंकासणेण समुहदस्स वि दंडसमुग्घादो वत्तव्वो। णवरि मूलसरीरपरिट्ठयादो दंडसमुग्घादपरिट्ठओ तत्थ तिगुणो होदि। कारणमेत्थ सुगमं। एवंविहो अवत्थाविसेसो दंडसमुग्घादो त्ति भण्णदे। अन्वर्थसंज्ञाविज्ञानात् दंडाकारेण यथोक्तविधिना जीवप्रदेशानां विसर्पणं दंडसमुद्घात इति। एदम्मि पुण दंडसमुग्घादे वट्टमाणस्स ओरालियकायजोगो चेव होइ; तत्थ सेसजोगाणमसंभवादो। संपहि एदम्मि दंडसमुग्घादे वट्टमाणेण कीरमाणकज्जभेदपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

*** तम्हि ट्ठिदीए असंखेज्जे भागे हणइ।**

---

§ ३३३ सर्वप्रथम प्रथम समयमें दण्डसमुद्घात करते है, यह इसका भाव है।

शंका—वह दण्डसमुद्घात क्या लक्षणवाला है ?

समाधान—कहते हैं, अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयुकर्मके शेष रहनेपर केवली जिन समुद्घात करते हुए पूर्वाभिमुख होकर या उत्तराभिमुख होकर कायोत्सर्गसे करते हैं या पल्यंकासन से करते हैं। वहाँ कायोत्सर्गसे दण्डसमुद्घातको करनेवाले केवलीके मूल शरीर की परिधिप्रमाण कुछ कम चौदह राजु लम्बे दण्डाकाररूपसे जीवप्रदेशोंका फैलना दण्डसमुद्घात है। यहाँ कुछ कमका प्रमाण लोकके नीचे और ऊपर लोकपर्यन्त वातवलयसे रोका गया क्षेत्र होता है ऐसा यहाँ जानना चाहिये, क्योंकि स्वभावसे ही उस अवस्थामें वातवलयके भीतर केवली जिनके जीवप्रदेशोंका प्रवेश नहीं होता। इसी प्रकार पल्यंकासनसे समुद्घात करनेवाले केवली जिनके दण्डसमुद्घात कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि मूल शरीरकी परिधिसे उस अवस्थामें दण्ड समुद्घातकी परिधि तिगुणी हो जाती है। यहाँ कारणका कथन सुगम है। इस प्रकारकी अवस्थाविशेषका नाम दण्डसमुद्घात कहा जाता है, क्योंकि सार्थक संज्ञाके ज्ञानवश यथोक्तविधिसे दण्डाकाररूपसे जीवके प्रदेशोंका फैलना दण्डसमुद्घात है। परन्तु इस दण्ड-समुद्घातमें विद्यमान केवली जिनके औदारिककाय-योग ही होता है, क्योंकि उस अवस्थामें शेष योगोंका अभाव है। अब इस दण्डसमुद्घातमें विद्यमान केवली जिनके द्वारा किये जानेवाले कार्योंके भेदोंका कथन करनेकेलिये आगे का सूत्र कहते हैं—

*** केवली जिन दण्डसमुद्घातमें (आयु कर्मको छोड़कर) शेष अघातिकर्मोंके असंख्यात बहुभागका हनन करते हैं।**

§ ३३४ तम्हि दंडसमुग्घादे वट्टमाणो आउगवज्जाणं तिण्हमघाइकम्माणं पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागमेत्तट्ठिदिसंतकम्मस्स तक्कालमुवलब्भमाणस्स असंखेज्जे भागे घादेदूणासंखेज्जदिभागं ठवेदि त्ति वुत्तं होइ। कुदो एवमेक्कसमयेणेव एवंविहो ट्ठिदिघादो जादो त्ति णासंकियव्वं, केवलिसमुग्घादमाहप्पेण तदुववत्तीए बाहाणुवलंभादो।

§ ३३५ संपहि एत्थेवाणुभागघादमाहप्पपदंसणट्ठमिदमाह--

* सेसस्स च अणुभागस्स अप्पसत्थाणमणंता भागे हणदि।

§ ३३६ खीणकसाय दुचरिमसमए घादिदूण परिसेसिदो जो अणुभागो तस्स अणंते भागे घादिदूण अणंतिमभागे अप्पसत्थपयडीणमणुभागसंतकम्मं ठवेदि त्ति वुत्तं होइ। पसत्थपयडीणमेत्थ ट्ठिदिघादो चेव, अणुभागघादो णत्थि त्ति घेत्तव्वं। एत्थ गुणसेढिणिज्जरा जहा आवज्जिदकरणे परूविदा, तहा चेव वत्तव्वा, विसेसाभावादो। एवं दंडसमुग्घादं कादूण तदो से काले कवाडसमुग्घादेण परिणममाणस्स सरूवविसेसणिद्धारणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो--

---

§ ३३४ उस दण्डसमुद्घातमें विद्यमान केवली जिन आयुकर्मको छोड़कर तीन अघातिकर्मों की पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिसत्कर्मकी तत्काल उपलभ्यमान स्थितिके असंख्यात बहुभागका घात करके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितिको स्थापित करते हैं, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

शंका—इस प्रकार एक समयद्वारा ही इस प्रकारका स्थितिघात कैसे हो गया ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि केवलिसमुद्घात की प्रधानतासे उसकी उपपत्ति होनेमें कोई बाधा उपलब्ध नहीं होती।

§ ३३५ अब यहींपर अनुभागघातका माहात्म्य दिखलानेकेलिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** तथा शेष अनुभागसम्बन्धी अप्रशस्त अनुभागोंके अनन्त बहुभागोंका घात करते हैं।**

§ ३३६ उक्त क्षपक क्षीणकषाय गुणस्थानके द्विचरम समयमें घात करके जो अनुभाग शेष रहा उसके अनन्त बहुभागका घात कर अनन्तवें भागमें अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनुभाग सत्कर्मको स्थापित करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। प्रशस्त प्रकृतियोंका यहाँपर स्थितिघात ही होता है, अनुभागघात नहीं होता ऐसा ग्रहण करना चाहिये। गुणश्रेणिनिर्जराका जिस प्रकार आवर्जितकरणमें प्ररूपण किया है उसी प्रकार यहाँपर भी प्ररूपण करना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। इस प्रकार केवली जिन दण्डसमुद्घात करके उसके बाद अनन्तर समयमें कपाटसमुद्घातसे परिणमन करनेवालेके स्वरूपविशेषका निर्धारण करनेकेलिये उत्तर सूत्रका अवतार होता है—

---

१. प्रेसकापीप्रतौ संखेज्जे इति पाठः। ता० प्रत्यनुसारेण संशोधनमिदं विहितम्।

२. आ० प्रतौ खीणकसायचरिमसमए इति पाठः।

*** तदो बिदियसमए कवाडं करेदि ।**

§ ३३७ कपाटमिव कपाटं । क उपमार्थः ? यथा कपाटं बाहल्येन स्तोकमेव भूत्वा विष्कंभायामाभ्यां परिवर्द्धते, एवमयमपि जीवप्रदेशावस्थाविशेषः मूलशरीरबाहल्येन तत्त्रिगुणबाहल्येन वा देसूणचोद्दसरज्जुआयामेण सत्तरज्जुविक्खंभेण वड्ढि-हाणिगदविक्खंभेण वा वड्ढियूण चिट्ठदि त्ति कवाडसमुग्घादो त्ति भण्णदे, परिप्फुडमेवेत्थ कवाडसंठाणोवलंभादो । एत्थ पुव्वुत्तराहिमुहकेवलीणं कवाडखेत्तस्स विक्खंभभेदो अवहारिय पुव्वावराणं सुबोहो । एदम्मि पुण अवत्थाविसेसे वट्टमाणस्स केवलिणो ओरालिय-मिस्सकायजोगो होदि, कार्मणौदारिकशरीरद्वयावष्टम्भेनतत्र जीवप्रदेशानां परिस्पंदपर्यायोपलंभात् । संपहि एदम्मि अवत्थंतरे वट्टमाणेण कीरमाणकज्जभेदपदंसणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

*** तम्हि सेसिगाए ट्ठिदीए असंखेज्जे भागे हणइ ।**

*** उसके बाद दूसरे समयमें केवली जिन कपाटसमुद्घात करते हैं ।**

§ ३३७ जो कपाटके समान हो वह कपाट है ।

शंका—उपमार्थ क्या है ?

समाधान—जैसे कपाट मोटाईकी अपेक्षा अल्प ही होकर चौड़ाई और लम्बाई की अपेक्षा बढ़ता है उसी प्रकार यह भी मूल शरीरके बाहल्य की अपेक्षा अथवा उसके तिगुणे बाहल्यकी अपेक्षा जीवप्रदेशोंके अवस्थाविशेषरूप होकर कुछ कम चौदह राजुप्रमाण आयामकी अपेक्षा तथा सात राजुप्रमाण विस्तारकी अपेक्षा वृद्धि-हानिगत विस्तारकी अपेक्षा वृद्धिको प्राप्त होकर स्थित रहता है वह कपाटसमुद्घात कहा जाता है, क्योंकि इस समुद्घातमे स्पष्टरूपसे ही कपाटका संस्थान उपलब्ध होता है ।

इस समुद्घातमें पूर्वाभिमुख और उत्तराभिमुख केवलियोंके कपाटक्षेत्रके विष्कम्भके भेदका अवधारणकर पूर्वाभिमुख और उत्तराभिमुखकेवलियोंका अच्छी तरह ज्ञान हो जाता है । परन्तु इस अवस्थाविशेषमें विद्यमान केवलीके औदारिकमिश्रकाययोग होता है, क्योंकि उनके कार्मण और औदारिक इन दो शरीरोंके अवलम्बनसे जीवप्रदेशोंके परिस्पन्दरूप पर्यायकी उपलब्धि होती है । अब इस अवस्थाविशेषमें विद्यमान जोवकेद्वारा किये जानेवाले कार्यभेदके दिखलानेके लिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

*** कपाटसमुद्घातके कालमें शेष रही स्थितिके असंख्यात बहुभागका हनन करता है ।**

* सेसस्स च अणुभागस्स अप्पसत्थाणमणंते भागे हणइ।

§ ३३८ सुगमत्वान्नात्र सूत्रद्वये किंचिद् व्याख्येयमस्ति। एत्थ वि गुणसेढिपरूवणाए आवज्जिदकरणभंगो। एवमेसो विदिओ केवलिसमुग्घादस्सावत्थाविसेसो परूविदो। संपहि तदिये अवत्थाविसेसे वट्टमाणस्स सरूवणिरूवणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाह—

* तदो तदियसमये मंथं करेदि।

§ ३३९ मथ्यतेऽनेन कर्मेति मन्थः। अघादिकम्माणं ट्ठिदिअणुभागणिम्महणट्ठो केवलिजीवपदेसाणमवत्थाविसेसो पदरसण्णिदो मंथो त्ति वुत्तं होइ। एदम्मि अवत्थाविसेसे वट्टमाणस्स केवलिणो जीवपदेसा चदुहिम्मि पासेहिं पदरागारेण विसप्पियूण समंतदो वादवलयवदिरित्तासेसलोगागासपदेसे आवूरिय चिट्ठंति त्ति दट्ठव्वं, सहावदो चेव तदवत्थाए केवलिजीवपदेसाणं वादवलयब्भंतरे संचाराभावादो। एदस्स चेव पदरसण्णा रुजगसण्णा च आगमरूढिबलेण दट्ठव्वा। एदम्मि पुण अवत्थंतरे कम्मइयकायजोगी अणाहारी च जायदे, तत्थ मूलसरीरावट्ठंभजणिदजीवपदेसपरिप्फंदा संभवादो, शरीरप्रायोग्यनोकर्मपुद्गलपिण्डग्रहणाभावाच्च। संपहि एत्थ वि ट्ठिदि-अणुभागे पुव्वं व घादेदि त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्ण—

---

* अप्रशस्त प्रकृतियोंके शेष रहे अनुभागके अनन्तबहुभागका हनन करता है।

§ ३३८ सुगम होनेसे यहाँपर उक्त दोनों सूत्रोंमें कुछ व्याख्यान करने योग्य नहीं है। यहाँपर भी गुणश्रेणि-प्ररूपणा आवर्जितकरणके समान है। इस प्रकार केवलिसमुद्घातकी तीसरी अवस्थाविशेषमें विद्यमान केवलीके स्वरूपका प्ररूपण करनेकेलिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* तत्पश्चात् तीसरे समयमें मन्थ नामके समुद्घातको करता है।

§ ३३९ जिसके द्वारा कर्म मथा जाता है उसे मन्थ कहते हैं। अघातिकर्मोंके स्थिति और अनुभागके निर्मथनकेलिये केवलियोंके जीवप्रदेशोंकी जो अवस्था विशेष होती है, प्रतर संज्ञावाला वह मन्थ समुद्घात है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस अवस्था विशेषमें विद्यमान केवलोके जीवप्रदेश चारों ही पार्श्वभागोंसे प्रतराकाररूपसे फैलकर सर्वत्र वातवलयके अतिरिक्त पूरे लोकाकाशके प्रदेशोंको भरकर अवस्थित रहते हैं ऐसा जानना चाहिये, क्योंकि उस अवस्थामें केवलोके जीवप्रदेशोंका स्वभावसे ही वातवलयके भीतर संचार नहीं होता। इसीकी प्रतरसंज्ञा और रुचक संज्ञा आगममें रूढिके बलसे जाननी चाहिये। परन्तु इस अवस्थामें केवली जिन कार्मणकाययोगी और अनाहारक हो जाता है, क्योंकि उस अवस्थामें मूल शरीरके आलम्बनसे उत्पन्न हुए जीवप्रदेशोंका परिस्पन्द सम्भव नहीं है तथा उस अवस्थामें शरीरके योग्य नोकर्म पुद्गलपिण्डका ग्रहण नहीं होता। अब इसी अवस्थामें स्थिति और अनुभागका पहलेके समान घात करता है इस बातका कथन करनेकेलिये उत्तरसूत्र अवतीर्ण हुआ है—

* ट्ठिदि-अणुभागे तहेव णिज्जरयदि ।

§ ३४० ट्ठिदीए असंखेज्जे भागे अप्पसत्थपयडीणमणुभागस्स च अणंते भागे पुव्वं व घादेदि त्ति भणिदं होदि । एत्थ पदेसग्गं पि तहेव णिज्जरयदि त्ति वक्कसेसो कायव्वो, आवज्जिदकरणादो प्पहुडि सत्थाणकेवलिगुणसेढिणिज्जरादो असंखेज्जगुणसेढिणिज्जराए अवट्ठिदणिक्खेवायामेण पवुत्तिसिद्धीए बाहाणुवलंभादो । एवमेसो तदिओ केवलिसमुग्घादभेदो परूविदो । संपहि चउत्थसमये लोगपूरणसण्णिदं समुग्घादं सगसव्वपदेसेहिं सव्वलोगमावूरिय पयट्टावेदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

* तदो चउत्थसमये लोगं पूरेदि ।

§ ३४१ वादवलयावरुद्धलोगागासपदेसेसु वि जीवपदेसेसु समंतदो णिरंतरं पविट्ठेसु लोगपूरणसण्णिदं चउत्थं केवलिसमुग्घादमेसो तदवत्थाए पडिवज्जदि त्ति भणिदं होदि । एत्थ वि कम्मइयकायजोगेणाणाहारओ चेव होदि; तदवत्थाए सरीरणिव्वत्तणट्ठमोरालियणोकम्मपदेसाणमागमणस्स णिरोहदंसणादो । एवं च लोगमावूरिय तुरियावत्थाए कम्मइयकायजोगेण वट्टमाणस्स तदवत्थाए सव्वेसिं जीवपदेसाणं समजोगत्तपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

---

* स्थिति और अनुभागकी उसी प्रकार निर्जरा करता है ।

§ ३४० स्थितिके असंख्यात बहुभागका और अप्रशस्त प्रकृतियोंके अनन्त बहुभागका पहलेके समान घात करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यहाँपर प्रदेशपुंजकी भी उसी प्रकार निर्जरा करता है यह वाक्यशेष करना चाहिये, क्योंकि आवर्जित करणसे लेकर स्वस्थान केवलीकी गुणश्रेणिनिर्जरासे असंख्यातगुणी गुणश्रेणिनिर्जराकी अवस्थित निक्षेपरूप आयामके साथ प्रवृत्तिकी सिद्धिमें बाधा नहीं उपलब्ध होती । इस प्रकार यह केवलिसमुद्घातके भेदका कथन किया । अब चौथे समयमें लोकपूरणसंज्ञक समुद्घातको अपने सम्पूर्ण प्रदेशोंद्वारा समस्त लोकको पूरा करके प्रवृत्त करता है, इसका ज्ञान करानेकेलिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

* तत्पश्चात् चौथे समयमें लोकको पूरा करता है ।

§ ३४१ वातवलयसे रुके हुए लोकाकाशके प्रदेशोंमें भी जीवके प्रदेशोंके चारों ओरसे निरन्तर प्रविष्ट होनेपर लोकपूरण संज्ञक चौथे केवलिसमुद्घातको यह केवली जिन उस अवस्थामें प्राप्त होते हैं, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यहाँपर भी कार्मणकाययोगके साथ यह अनाहारक ही होता है, क्योंकि उस अवस्थामें शरीरकी रचनाकेलिये औदारिकशरीर नोकर्मप्रदेशोंके आगमनका निरोध देखा जाता है । इस प्रकार लोकको पूरा करके चौथी अवस्थामें कार्मणकाययोगके साथ विद्यमान केवलीजिनके उस अवस्थामें समस्त जीवप्रदेशोंके समान योगके प्रतिपादन करनेके लिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

* लोगे पुण्णे एक्का वग्गणा जोगस्स त्ति समजोगो त्ति णायव्वो ।

§ ३४२ लोगपूरण-समुग्घादे वट्टमाणस्सेदस्स केवलिणो लोगमेत्तासेसजीव-पदेसेसु जोगाविभागपलिच्छेदा वड्डि-हाणीहिं विणा सरिसा चेव होदूण परिणमंति, तेण सव्वे जीवपदेसा अण्णोण्णं सरिसधणियसरूवेण परिणदा संता एया वग्गणा जादा । तदो समजोगो त्ति एसो तदवत्थाए णायव्वो, जोगसत्तीए सव्वजीवपदेसेसु सरिसभावं मोत्तूण विसरिसभावाणुवलंभादो त्ति वुत्तं होइ । एसो च समजोगपरिणामो सुहुमणिगोदजहण्णवग्गणादो असंखेज्जगुणत्तपाओग्गमज्झिमवग्गणासरूवेण होदि त्ति णिच्छओ कायव्वो । अपुव्वफद्दयविहाणादो पुव्वावत्थाए सव्वत्थमणुभागाणमसंखे-ज्जाणंते भागे घादेदि; तग्घादणट्ठमेव समुग्घादकिरियाए वावदत्तादो त्ति वुत्तं होइ । एवमेदम्मि लोगपूरणसमुग्घादे वट्टमाणेण ट्ठिदीए असंखेज्जेसु भागेसु घादिदेसु घादिदसेसट्ठिदिसंतकम्मं सुट्ठु थोवभावेण चिट्ठमाणमंतोमुहुत्तमेत्तायामं होदूण चिट्ठदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो ।

* लोगे पुण्णे अंतोमुहुत्तं ट्ठिदिं ठवेदि ।

§ ३४३ सुगमं । संपहि किमेदमंतोमुहुत्तपमाणमाउट्ठिदीए समाणमाहो संखेज्ज-गुणमण्णारिसं वा त्ति आसंकाए णिरारेगीकरणट्ठमिदमाह—

---

* लोकपूरण समुद्घातमें योगकी एक वर्गणा होती है, इसलिये वहाँ समयोग ऐसा जानना चाहिये ।

§ ३४२ लोकपूरण समुद्घातमें विद्यमान इस केवली जिनके लोकप्रमाण समस्त जीवप्रदेशोंमें योगसम्बन्धी अविभागप्रतिच्छेद वृद्धि-हानिके बिना सदृश ही होकर परिणमते हैं, इसलिये सभी जीवप्रदेश परस्पर सदृश धनरूपसे परिणत होकर एक वर्गणारूप हो जाते हैं। इसलिये यह केवली उस अवस्थामें समयोग जानना चाहिये, क्योंकि समस्त जीवप्रदेशोंमें योगशक्तिके सदृशपनेको छोड़कर विसदृशपना नहीं उपलब्ध होता यह उक्त कथनका तात्पर्य है। और यह समयोगरूप परिणाम सूक्ष्म निगोदजीवकी (योगसंबन्धी) जघन्य वर्गणासे असंख्यात गुणत्वके योग्य मध्यम वर्गणारूपसे होता है ऐसा निश्चय करना चाहिये। अपूर्व स्पर्धककी विधिसे पहलेकी अवस्थामें सर्वत्र अनुभागोंके असंख्यात और अनन्तबहुभागोंका घात करता है, क्योंकि उसके घातकेलिये ही समुद्घात क्रियाका व्यापार होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार इस लोकपूरण समुद्घातमें विद्यमान केवली जिनद्वारा स्थितिके असंख्यात भागोंके घातित होनेपर घात होनेसे शेष रहा स्थितिसत्कर्म बहुत अल्परूपसे स्थित होकर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयामवाला होकर स्थित रहता है इस बातका ज्ञान करानेकेलिये आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

* लोकपूरण समुद्घातमें कर्मोंकी स्थितिको अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थापित करता है।

§ ३४३ यह सूत्र सुगम है। अब क्या यह अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थिति आयुकर्मकी स्थितिके समान है या संख्यातगुणी है या अन्य प्रकारकी है; इस आशंकाके होनेपर निःशंक करनेकेलिये इस सूत्रको कहते हैं—

*** संखेज्जगुणमाउआदो ।**

§ ३४४ णाज्जवि आउट्ठिदीए समाणमेदेसिं ट्ठिदिसंतकम्मं जायदे, किंतु तत्तो संखेज्जगुणमेव त्ति णिच्छेयव्वं । एत्थ दुवे उवएसा अत्थि त्ति, के वि भणंति । तं कधं ? महावाचयाणमज्जमंखुखमणाणमुवदेसेण लोगे पूरिदे आउगसमं णामागोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्मं ठवेदि । महावाचयाणं णागहत्थिखवणाणमुवएसेण लोगे पूरिदे णामागोदवेदणीयाण ट्ठिदिसंतकम्ममंतोमुहुत्तपमाणं होदि । होंतं पि आउगादो संखेज्जगुणमेत्तं ठवेदि त्ति । णवरि एसो वक्खाणसंपदाओ चुण्णिसुत्तविरुद्धो, चुण्णिसुत्ते मुत्तकंठमेव संखेज्जगुणमाउआदो त्ति णिद्दिट्ठत्तादो । तदो पवाइज्जंतोव-एसो एसो चेव पहाणभावेणावलंबेयव्वो, अण्णहा सुत्तपडिणियत्तावत्तीदो । एवमेदेसिं दंड-कवाड-पदर-लोगपूरणसमुग्घादाणं सरूवविसेसं तत्थ कीरमाणकज्जभेदं च णिरूविय संपहि इममेवत्थमुवसंहारमुहेण फुडीकरेमाणो उवरिमसुत्तदयमाह—

*** एदेसु चदुसु समएसु अप्पसत्थकम्मंसाणमणुभागस्स अणुसमय ओवट्टणा ।**

*** शेष अघातिकर्मोंकी स्थिति आयुकर्मकी स्थितिसे संख्यातगुणी है ।**

§ ३४४ इस समय भी आयुकर्मकी स्थितिके समान इन अघातिकर्मोंका स्थितिसत्कर्म नहीं होता है, किन्तु उससे संख्यातगुणा ही होता है ऐसा निश्चय करना चाहिये । यहाँ इस विषयमें दो उपदेश पाये जाते हैं । कितने ही आचार्य कहते हैं—

शंका—वह कैसे ?

समाधान—महावाचक आर्यमंक्षु क्षमणके उपदेशके अनुसार लोकपूरण समुद्घातके होनेपर आयुकर्मकी स्थितिके समान नाम, गोत्र और वेदनीयकर्मका स्थितिसत्कर्म स्थापित करता है । महावाचक नागहस्ति क्षमणके उपदेशके अनुसार लोकपूरण समुद्घात होनेपर नाम, गोत्र और वेद-नीयकर्मका स्थितिसत्कर्म अन्तमुहूर्त प्रमाण होता है । इतना होता हुआ भी आयुकर्मकी स्थितिसे संख्यातगुणा स्थापित करता है । परन्तु यह व्याख्यान-सम्प्रदाय चूर्णिके विरुद्ध है, क्योंकि चूर्णिसूत्रमें स्पष्टरूपसे ही आयुकर्मकी स्थितिसे शेष अघातिकर्मोंकी संख्यातगुणी निर्दिष्ट की है । इसलिये प्रवाह्यमान उपदेश यही प्रधानरूपसे अवलम्बन करने योग्य है, अन्यथा सूत्रके प्रतिनियत होनेमें आपत्ति आती है । इस प्रकार इन दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घातोंके स्वरूपविशेषका और वहाँ किये जानेवाले कार्यभेदोंका निरूपण करके अब इसी अर्थको उपसंहाररूपसे स्पष्ट करते हुए आगेके दो सूत्रोंको कहते हैं—

*** केवलिसमुद्घातके इन चार समयोंमें अप्रशस्त कर्मप्रदेशोंके अनुभागकी अनु-समय अपवर्तना होती है ।**

§ ३४५ कुदो एदेसु चदुसु समुग्घादसमयेसु अप्पसत्थाणं कम्माणमणुसमयोवट्ट-णाघादस्साणंतरपरूविदाणुभागघादवसेण परिप्फुडमुवलंभादो।

* एगसमइओ ट्ठिदिखंडयस्स घादो।

§ ३४६ चदुसु वि समएसु पयट्टमाणस्स ट्ठिदिघादस्स एयसमयेणेव णिव्वत्तीए अणंतरमेव पदुप्पाइयत्तादो। तम्हा आवज्जिदकरणाणंतरमेवंविहं केवलिसमुग्घादं कादूण णामागोदवेदणीयाणमंतोमुहुत्तायामेण ट्ठिदिं परिसेसेदि त्ति एसो एदस्स अइक्कंतासेससुत्तपबंधस्स समुदायत्थो। संपहि लोगावूरणकिरियाए समत्ताए समुग्घा-दपज्जायमुवसंहरेमाणो केवली किमक्कमेण उवसंहरिय सत्थाणे णिवदइ, आहो अत्थि कोवि ओदरमाणस्स कमणियमो त्ति आसंकाए णिरायरणट्ठमोदरमाणयस्स किंचि परूवण सुत्तसूचिदं कस्सामो।

§ ३४७ तं जहा—लोगपूरणमुवसंहरेमाणो पुणो वि मंथं करेदि; मंथ-परिणामेण विणा तदुवसंहाराणुववत्तीदो। लोगपूरणोवसंहारणाणंतरमेव समजोगपरिणामो णासियूण पुव्वफद्दयाणि सव्वाणि समयाविरोहेण उग्घादिदाणि त्ति दट्ठव्वाणि। पुणो मंथमुवसंहरेमाणो कवाडं पडिवज्जदि; कवाडपरिणामेण विणा तदुवसंहारणाणुव-वत्तीदो। तदो अणंतरसमये दंडसमुग्घादेण परिणमिय कवाडमुवसंहरइ; तस्स

---

§ ३४५ क्योंकि इन चार समुद्घातके समयोंमें अप्रशस्त कर्मोंका प्रतिसमय अपवर्तनाघात अनन्तर कहे गये अनुभागके वशसे स्पष्टरूपसे उपलब्ध होता है।

* तथा एक समयवाला स्थितिकाण्डकघात होता है।

§ ३४६ चारों ही समयोंमें प्रवृत्तमान स्थितिघात एक समयकेद्वारा ही सम्पन्न हो जाता है यह अनन्तर ही कह आये हैं। इसलिये आवर्जितकरणके अनन्तर इस प्रकारके केवलिसमुद्घातको करके नाम, गोत्र और वेदनीय कर्मोंको अन्तर्मुहूर्त आयामरूपसे स्थितिको शेष रखता है। इस प्रकार यह अतिक्रान्त समस्त सूत्रप्रबन्धका समुदायरूप अर्थ है। अब लोकपूरण क्रियाके समाप्त होनेपर समुद्घातपर्यायका उपसंहार करनेवाला केवली जिन क्या अक्रमसे उपसंहार करके स्वस्थानमें निप-तित होता है या उतरनेवालेका कोई क्रमनियम है; ऐसी आशंकाके निराकरणकेलिये उतरनेवाले-का सूत्रसे सूचित होनेवाला किंचित् प्ररूपण करेंगे—

§ ३४७ यथा—लोकपूरण-समुद्घातका उपसंहार करता हुआ फिर भी मन्थ-समुद्घातको करता है, क्योंकि मन्थरूप परिणामके बिना केवलिसमुद्घातका उपसंहार नहीं बन सकता। तथा लोक-पूरणसमुद्घातका उपसंहार करनेके अनन्तर ही समयोग परिणामको नाश करके सभी पूर्व स्पर्धक समयके अविरोधपूर्वक उद्घाटित हो जाते हैं ऐसा जानना चाहिये। पुनः मन्थसमुद्घातका उपसंहार करता हुआ कपाट-समुद्घातको प्राप्त होता है, क्योंकि कपाट परिणामके बिना उसका उपसंहार करना नहीं बन सकता। तत्पश्चात् अनन्तर समयमें दण्डसमुद्घातरूपसे परिणमकर कपाटसमुद्घातका उपसंहार

तदणंतरभावित्तणियमदंसणादो। तदो से काले सत्थाणकेवलिभावेण दंडमुवसंहरइ। ताधे मूलसरीरपमाणेणाणूणाहियत्तेण केवलिजीवपदेसाणमवट्ठाणणियमदंसणादो। एवमेदे ओदरमाणस्स तिण्णि समया, चउत्थसमयस्स सत्थाणंतब्भावित्तदंसणादो।

§ ३४८ अहवा तेण सह ओदरमाणस्स चत्तारि समया त्ति केसिं पि वक्खाण-कमो। तेसिमहिप्पाओ--जम्मि समये ठाइदूण दंडमुवसंहरइ सो वि समुग्घादंतब्भा-विओ चेवे त्ति तत्थ ओदरमाणयस्स पदरगदस्स पुव्वं व कम्मइयकायजोगो, कवाड-गदस्स ओरालियमिस्सकायजोगो, डंडगदस्स ओरालियकायजोगो होदि त्ति घेत्तव्वं। एत्थुवउज्जंतीओ अज्जाओ--

दंडंप्रथमे[1] समये कवाटमथ चोत्तरे तथा समये।
मंथानमथ तृतीये लोकव्यापी चतुर्थे तु ॥ १ ॥
संहरति पंचमे त्वंतराणि मंथानमथ पुनः षष्ठे।
सप्तमके च कवाटं संहरति ततोऽष्टमे दंडम् ॥ २ ॥

तदो समुग्घादपरूवणा समत्ता भवदि।

करता है, क्योंकि दण्डसमुद्घातका उसके अनन्तर ही होनेका नियम देखा जाता है। उसके बाद तदनन्तर समयमें स्वस्थानरूप केवलीपनेसे दण्डसमुद्घातका उपसंहार करता है। उस समय न्यूनता और अतिरिक्तासे रहित मूलशरीरके प्रमाणसे केवली भगवान्‌के जीवप्रदेशोंके अवस्थानका नियम देखा जाता है। इस प्रकार केवलिसमुद्घातसे उतरनेवाले केवली जिनके ये तीन समय होते हैं, क्योंकि चौथे समयमें स्वस्थानमें अन्तर्भाव देखा जाता है।

§ ३४८ अथवा चौथे समयके साथ केवलिसमुद्घातसे उतरनेवाले केवलीके चार समय लगते हैं, ऐसा किन्हीं आचार्योंके व्याख्यानका क्रम है। उनका अभिप्राय है कि जिस समयमें कपाटसमुद्घातमें ठहरकर दण्डसमुद्घातका उपसंहार करता है वह भी समुद्घातमें अन्तर्भूत ही करना चाहिये, इसलिये समुद्घातमें उतरनेवाले प्रतरगत केवली जिनके पहलेके समान कार्मणकाययोग होता है, कपाटसमुद्घातको प्राप्त केवलीके औदारिक-मिश्रकाययोग होता है, तथा दण्डसमुद्घात को प्राप्त केवलीके औदारिक काययोग होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये। यहाँ पर उपयुक्त पड़नेवाली आर्या गाथाएँ हैं—

केवली जिनके प्रथम समयमें दण्डसमुद्घात होता है, उत्तर अर्थात् दूसरे समयमें कपाट-समुद्घात होता है, तृतीय समयमें मन्थानसमुद्घात होता है और चौथे समयमें लोकव्यापी-समुद्घात होता है ॥ १ ॥

पाँचवें समयमें लोकपूरण-समुद्घातका उपसंहार करता है, पुनः छठे समयमें मन्थानसमुद्घातका उपसंहार करता है सातवें समयमें कपाटसमुद्घातका उपसंहार करता है और आठवें समयमें दण्डसमुद्घातका उपसंहार करता है ॥ २ ॥

इसके बाद केवलिसमुद्घात प्ररूपणा समाप्त होती है।

---

१. आ० प्रतौ दण्डप्रथमे इति पाठः।

§ ३४९ संपहि ओदरमाणपढमसमयप्पहुडि ट्ठिदि-अणुभागघादाणं पवुत्ती केरिसी होदि त्ति आसंकाए णिरारेगीकरणट्ठमुवरिमं सुत्तमाह—

* एत्तो सेसिगाए ट्ठिदीए संखेज्जे भागे हणइ।

§ ३५० एत्तो ओदरमाणपढमसमयादो प्पहुडि सेसिगाए ट्ठिदीए अंतोमुहुत्तपमाणाए संखेज्जे भागे कंडयसरूवेण घेत्तूण ट्ठिदिघादं णिव्वत्तेदि, तत्थ पयारंतरासंभवादो त्ति वुत्तं होइ।

* सेसस्स च अणुभागस्स अणंते भागे हणइ।

§ ३५१ पुव्वघादिदसेसाणुभागसंतकम्मस्स अणंते भागे कंडयसरूवेणागाइदूण अणुभागघादमेसो कुणदि त्ति भणिदं होदि।

* एत्तो पाए ट्ठिदिखंडयस्स अणुभागखंडयस्स च अंतोमुहुत्तिया उक्कीरणद्धा।

§ ३५२ लोगपूरणाणंतरसमयप्पहुडि समयं पडि ट्ठिदि-अणुभागघादो णत्थि, किंतु अंतोमुहुत्तिओ चेव ट्ठिदिअणुभागखंडयघादकालो पयट्टदि त्ति एसो एत्थ

---

§ ३४९ अब उतरनेवाले केवली जिनके प्रथम समयसे लेकर स्थितिघात और अनुभागघातकी प्रवृत्ति कैसी होती है ? ऐसी आशंका होनेपर निःशंक करनेकेलिये आगेके सूत्रको कहते हैं—

* केवलिसमुद्घातसे उतरनेवालेके प्रथम समयसे लेकर शेष रही स्थितिके संख्यात बहुभागका हनन करता है।

§ ३५० एत्तो अर्थात् उतरनेवालेके प्रथम समयसे लेकर शेष रही अन्तर्मुहूर्तप्रमाण स्थितिके संख्यात बहुभागको काण्डकरूपसे ग्रहणकर स्थितिघात करता है, क्योंकि वहाँ अन्य प्रकार सम्भव नहीं है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* तथा वहाँ शेष रहे अनुभागके अनन्त बहुभागका हनन करता है।

§ ३५१ पहले घात करनेसे शेष बचे अनुभागसत्कर्मके अनन्त बहुभागका काण्डकरूपसे एक समयद्वारा अनुभागघात यह जीव करता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* इसके आगे स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकका उत्कीरणकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है।

§ ३५२ लोकपूरणसमुद्घातके सम्पन्न होनेके अनन्तर समयसे लेकर प्रत्येक समयमें स्थितिघात और अनुभागघात नहीं होता। किन्तु स्थितिकाण्डकघात और अनुभागकाण्डकघातका काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्रवृत्त होता है। इस प्रकार यह यहाँ सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है। इस प्रकार इतनी

मुत्थसब्भावो। एवमेदेण विहाणेण समुग्घादं उवसंहरिय सत्थाणे वट्टमाणस्स ट्ठिदि-अणुभागकंडएसु संखेज्जसहस्समेत्तेसु समयाविरोहेण गदेसु[1] तदो जोगणिरोहं कुणमाणो इमाणि किरियंतराणि णिव्वत्तेदि त्ति जाणावणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाढवेइ।

* एत्तो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरकायजोगेण बादरमणजोगं णिरुंभइ।

§ ३५३ मण-वयण-कायचेट्ठाणिव्वत्तणट्ठो जीवपदेसपरिप्फंदो कम्मादाणणिबंधणसत्तिसरूवो जोगो त्ति भण्णदे। सो पुण तिविहो, मणजोगो वचिजोगो कायजोगो चेदि। एदेसिमत्थो सुगमो। तत्थेक्केक्को दुविहो, बादरो सुहुमो चेदि। जोगणिरोहकिरियादो हेट्ठा सव्वत्थ बादरजोगो होदि। एत्तो परं सुहुमजोगेण परिणमिय जोगणिरोहं कुणइ, बादरजोगेणेव पयट्टमाणस्स जोगणिरोहकरणाणुववत्तीदो। तत्थ ताव पुव्वमेसो केवली जोगणिरोहणट्ठमीहमाणो बादरकायजोगावट्ठंभबलेण बादरमणजोगं णिरुंभदि, बादरकायजोगेण वावरंतो चेव एसो बादरमणजोगसत्ति[2] णिरुंभियूण सुहुमभावेण सण्णिपंचिंदियअपज्जत्तसव्वजहण्णमणजोगादो हेट्ठा असंखेज्जगुणहीणसरूवेण तं ठवेदि त्ति वुत्तं होइ।

विधिसे केवलिसमुद्घातका उपसंहार करके स्वस्थानमें विद्यमान केवली जिनके संख्यात हजार स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकके समयके अविरोधपूर्वक हो जानेपर तदनन्तर योगनिरोध करता हुआ इन दूसरी क्रियाओंको रचता है, इसका ज्ञान करानेकेलिये आगेके सूत्रप्रबन्धको आरम्भ करते हैं—

* आगे अन्तर्मुहूर्त जाकर बादर-काययोगकेद्वारा बादर-मनोयोगका निरोध करता है।

§ ३५३ मन, वचन और कायकी चेष्टा प्रवृत्त करनेकेलिये कर्मके ग्रहणके निमित्त शक्तिरूप जो जीवका प्रदेशपरिस्पन्द होता है वह योग कहा जाता है। परन्तु वह तीन प्रकारका है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग। इनका अर्थ सुगम है, उनमेंसे एक-एक अर्थात् प्रत्येक दो प्रकारका है—बादर और सूक्ष्म। योगनिरोधक्रियाके सम्पन्न होनेके पहले सर्वत्र बादरयोग होता है। इससे आगे सूक्ष्मयोगसे परिणमनकर योगनिरोध करता है, क्योंकि बादर योगसे ही प्रवृत्त हुए केवली जिनके योगका निरोध करना नहीं बन सकता है। उसमें सर्वप्रथम यह केवली जिन योगनिरोधकेलिये चेष्टा करता हुआ बादरकाययोगके अवलम्बनके बलसे बादर मनोयोगका निरोध करता है, क्योंकि बादर काययोगरूपसे व्यापार (प्रवृत्ति) करता हुआ ही यह केवली जिन बादर मनोयोगकी शक्तिकानिरोध करके सूक्ष्मरूपसे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्तके सबसे जघन्य मनोयोगसे घटते हुए असंख्यात गुणहीनरूपसे उसे स्थापित करता है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

---

१. ता० प्रती आगदेसु इति पाठः।

२. आ० प्रतौ० जोगसत्तिं इति पाठः।

§ ३५४ एवमंतोमुहुत्तमेत्तकालं बादरकायजोगेण वट्टमाणो बादरमणजोगसत्तिं णिरुंभिय़ूण तदो अंतोमुहुत्तेण तमेव बादरकायजोगमवलंबणं काद्ण बादरवचिजोगसत्तिं पि णिरुंभदि त्ति पदुप्पाएमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरवचिजोगं णिरुंभइ।

§ ३५५ एत्थ बादरवचिजोगो त्ति वुत्ते बीइंदियपज्जत्तस्स सव्वजहण्णवचिजोगप्पहुडिउवरिमजोगसत्तीए गहणं कायव्वं। तं रुंभियूण बीइंदियपज्जत्तजहण्णवचिजोगादो हेट्ठा असंखेज्जगुणहीणसरूवेण सुहुमभावेण ठवेदि त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो।

* तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरउस्सासणिस्सासं णिरुंभइ।

§ ३५६ एत्थ वि बादरउस्सासणिस्सासो त्ति भणिदे सुहुमणिगोदणिव्वत्तिपज्जत्तयस्स आणावाणपज्जत्तीए पज्जत्तयस्स सव्वजहण्णउस्सासणिस्साससत्तीदो असंखेज्जगुणसण्णिपंचिंदियपाओग्गउस्सासणिस्सासपरिप्फंदस्स गहणं कायव्वं। तं णिरुंभियूण सव्वजहण्णसुहुमणिगोदउस्सासणिस्साससत्तीदो हेट्ठा असंखेज्जगुणहाणीए सुहुम-

---

§ ३५४ इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालतक बादर काययोगके रूपसे विद्यमान केवली जिन बादर मनोयोगकी शक्तिका निरोध करके तदनन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कालकेद्वारा उसी बादर काययोगका अवलम्बन करके बादर वचनयोगकी शक्तिका भी निरोध करता है ऐसा प्रतिपादन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* उसके बाद अन्तर्मुहूर्त कालसे बादरकाययोगद्वारा बादर वचनयोगका निरोध करता है।

§ ३५५ यहाँपर बादर वचनयोग ऐसा कहनेपर द्वीन्द्रिय पर्याप्तके सबसे जघन्य वचनयोग आदि उपरिम योगशक्तिका ग्रहण करना चाहिये। उसका निरोध करके उसे द्वीन्द्रिय पर्याप्तके जघन्य वचनयोगसे नीचे असंख्यात गुणहीन सूक्ष्मरूपसे स्थापित करता है, इस प्रकार यह इस सूत्रका भावार्थ है।

* उसके बाद अन्तर्मुहूर्तकालसे बादर काययोगद्वारा बादर उच्छ्वास-निःश्वास का निरोध करता है।

§ ३५६ यहाँपर भी बादर उच्छ्वास-निःश्वास ऐसा कहनेपर सूक्ष्म निगोद निर्वृत्तिपर्याप्त जीवके अनापानपर्याप्तिसे पर्याप्त हुए सबसे जघन्य उच्छ्वास-निःश्वासशक्तिसे असंख्यातगुणी संज्ञीपञ्चेन्द्रियके योग्य उच्छ्वास-निःश्वासरूप परिस्पन्दका ग्रहण करना चाहिये। उसका निरोधकर उसे सबसे जघन्य सूक्ष्मनिगोदकी उच्छ्वास-निःश्वासशक्तिसे नीचे असंख्यातगुणी हीन सूक्ष्मभावसे स्थापित करता है, इस प्रकार यह यहाँ सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है।

भावेण[1] ठवेदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसब्भावो। सुत्ते अणिद्दिट्ठो एवंविहो विसेसो कथमवगम्मइ त्ति णासंका एत्थ कायव्वा! वक्खाणादो तहाविहविसेसपडिवत्तीदो।

* तदो अंतोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण तमेव बादरकायजोगं णिरुंभइ।

§ ३५७ एत्थ वि बादरकायजोगेण वावरंतो चेव अंतोमुहुत्तेण कालेण तमेव बादरकायजोगं सुहुमवियप्पे ठवेदूण णिरुंभइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो, सुहुमणिगोदजहण्ण-जोगादो वि असंखेज्जगुणहीणसत्तीए परिणमिय सुहुमभावेण तस्स एदम्मि विसये पवुत्तिणियमदंसणादो। अत्रोपयोगिनौ श्लोकौ—

> पंचेन्द्रियोऽप्यसंज्ञी यः पर्याप्तो जघन्ययोगी स्यात्।
> निरुणद्धि मनोयोगं ततोऽप्यसंख्यातगुणहीनम् ॥१॥
>
> द्वीन्द्रियसाधारणयोर्वागुच्छ्वासावधो जयति तद्वत्।
> पनकस्य काययोगं जघन्यपर्याप्तकस्याधः ॥२॥
>
> इति।

शंका—सूत्रमें निर्दिष्ट नहीं किया गया इस प्रकारका विशेष कैसे जाना जाता है?

समाधान—इस प्रकारकी आशंका यहाँ नहीं करनी चाहिये, क्योंकि व्याख्यानसे उस प्रकारके विशेषका ज्ञान होता है।

* उसके बाद अन्तर्मुहूर्तकालसे बादर काययोगकेद्वारा उसी बादर काययोगका निरोध करता है।

§ ३५७ यहाँपर भी बादर काययोगसे व्यापार करता हुआ ही अन्तर्मुहूर्त कालद्वारा उसी बादरकाययोगको सूक्ष्मभेदमें स्थापितकर निरोध करता है; यह सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है, क्योंकि सूक्ष्म निगोदके जघन्य योगसे भी असंख्यातगुणी हीन शक्तिरूपसे परिणमकर सूक्ष्मरूपसे उसकी इस स्थानमें प्रवृत्तिका नियम देखा जाता है। यहाँपर उपयोगी दो श्लोक हैं—

जो असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीव जघन्य योगसे युक्त होता है उससे भी असंख्यातगुणे हीन मनोयोगका केवली जिन निरोध करता है ॥१॥

द्वीन्द्रिय जीव और साधारण क्रमसे वचनयोग और उच्छ्वासको जिस प्रकार धारण करते हैं उनके समान उनसे भी कम दोनों योगोंको केवली भगवान् जीतते हैं? जघन्य पर्याप्तक जिसप्रकार काययोगको धारण करते हैं उससे भी कम काययोगको केवली भगवान् जीतते हैं ॥२॥

---

१. ता० प्रतौ भागेण इति पाठः।

§ ३५८ एवं जहाकमं बादरमणजोग-बादरवचिजोग-बादरउस्सासणिस्सास-बादरकायजोगसत्तीओ णिरुंभियूण सुहुमपरिप्फंदसत्तीओ एदेसिमवत्थाविसेसेण परिणमिय पुणो सुहुमकायजोगवावारेण सुहुमसत्तीओ वि तेसिमेदीए परिवाडीए णिरुंभदि त्ति जाणावणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमाह—

* तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुममणजोगं णिरुंभइ ।

§ ३५९ एत्थ सुहुममणजोगो त्ति भणिदे सण्णिपंचिंदियपज्जत्तयस्स सव्वजहण्णमणजोगपरिणामादो असंखेज्जगुणहीणस्स अवत्तव्वसरूवस्स दव्वमणोणिबंधणजीवपदेसपरिप्फंदस्स गहणं कायव्वं । तं णिरुंभदि विणासेदि त्ति वुत्तं होइ—

* तदो अंतोमुहुत्तेण सुहुमकायजोगेण सुहुमवचिजोगं णिरुंभइ ।

§ ३६० एत्थ वि सुहुमवचिजोगो त्ति भणिदे बीइंदियपज्जत्तयस्स सव्वजहण्णवचिजोगसत्तीदो हेट्ठा असंखेज्जगुणहीणसत्ती गहेयव्वो । सुगममण्णं ।

* तदो अंतोमुहुत्तेण सुहुमकायजोगेण सुहुमउस्सासं णिरुंभइ ।

---

§ ३५८ इस प्रकार यथाक्रम बादर मनोयोग, बादर वचनयोग, बादर उच्छ्वास-निःश्वास और बादर काययोगकी शक्तियोंका निरोध करके इन योगोंकी सूक्ष्मपरिस्पन्दरूप शक्तियोंको शेष करके पुनः सूक्ष्म काययोगके व्यापारद्वारा सूक्ष्म शक्तियोंको भी उनका इस परिपाटीके अनुसार निरोध करते हैं, इस बातका ज्ञान करानेकेलिये आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

* उसके बाद अन्तर्मुहूर्त जाकर सूक्ष्म काययोगकेद्वारा सूक्ष्म मनोयोगका निरोध करता है।

§ ३५९ यहाँपर सूक्ष्मयोग ऐसा कहनेपर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तके सबसे जघन्य मनोयोग परिणामसे असंख्यातगुणा हीन अवक्तव्यस्वरूप द्रव्य मननिमित्तक जीवप्रदेश परिस्पन्दका ग्रहण करना चाहिये। उसका निरोध करता है—नाश करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

* उसके बाद अन्तर्मुहूर्त कालसे सूक्ष्म काययोगकेद्वारा सूक्ष्म वचनयोगका निरोध करता है।

§ ३६० यहाँपर भी सूक्ष्म वचनयोग ऐसा कहनेपर द्वीन्द्रियपर्याप्तक के सबसे जघन्य वचन योगशक्तिसे नीचे असंख्यातगुणी हीनरूप वचनशक्ति ग्रहण करनी चाहिये। अन्य शेष कथन सुगम है।

* उसके बाद अन्तर्मुहूर्तकालसे सूक्ष्मकाययोगकेद्वारा सूक्ष्म उच्छ्वासका निरोध करता है।

§ ३६१ एत्थ वि उस्सासमत्तीए सुहुमभावो सुहुमणिगोदपज्जत्तयस्स सव्वजहण्णं। तप्परिणामादो हेट्ठा असंखेज्जगुणहाणीए दट्ठव्वो। एवमेसो जोगणिरोहकेवली सुहुमकायजोगेण वावरंतो मण-वयण-उस्सासणिस्सासाणं सुहुमसत्तीओ वि जहाउत्तेण कमेण णिरु भियूण पुणो सुहुमकायजोगं पि णिरु भमाणो इमाणि करणाणि जोगणिरोहणिबंधणाणि करेदि त्ति पदुप्पायणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो—

* तदो अंतोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुमकायजोगं णिरु भमाणो इमाणि करणाणि करेदि।

§ ३६२ ततोऽन्तर्मुहूर्तं गत्वा सूक्ष्मकाययोगावष्टंभेन तमेव सूक्ष्मकाययोगं निरोद्धुकामः तत्र तावदिमानि करणान्यनन्तर-निर्द्दे श्यमाणान्यबुद्धिपूर्वमेव प्रवर्तयतीत्युक्तं भवति। कानि पुनस्तानि करणानीत्याशंकायामाह—

* पढमसमये अपुव्वफद्दयाणि करेदि पुव्वफद्दयाणं हेट्ठदो।

§ ३६३ एत्तो पुव्वावत्थाए सुहुमकायपरिप्फंदसत्ती सुहुमणिगोदजहण्णजोगादो असंखेज्जगुणहाणीए परिणमिय पुव्वफद्दयसरूवा चेव होदूण पयट्टमाणा एण्हिं तत्तो वि सुट्ठु ओवट्टियूण अपुव्वफद्दयायारेण परिणामिज्जदि त्ति। एदिस्से किरियाए अपुव्व-

---

§ ३६१ यहाँ भी उच्छ्वास शक्तिका सूक्ष्मपना सूक्ष्म निगोद पर्याप्तक जीवके सबसे जघन्य होता है। उसरूप परिणामसे नीचे इस सयोगि केवलीकी उच्छ्वासशक्ति असंख्यातगुणी हीनरूपसे जाननी चाहिये। इस प्रकार यह योगनिरोध करनेवाला केवली जिन सूक्ष्म काययोगकेद्वारा परिस्पन्दात्मक क्रिया करते हुए मन, वचन और उच्छ्वास-निःश्वासकी सूक्ष्म शक्तियोंका भी यथोक्त-क्रमसे निरोध करके पुनः सूक्ष्मकाययोगका भी निरोध करते हुए योगनिरोधनिमित्तक इन करणोंको करता है, इस बातका ज्ञान करानेकेलिये अगला सूत्रप्रबन्ध आया है—

* उसके बाद अन्तर्मुहूर्तकाल जाकर सूक्ष्मकाययोगकेद्वारा सूक्ष्मकाययोगका निरोध करता हुआ इन करणोंको करता है।

§ ३६२ उसके बाद अन्तर्मुहूर्त काल जाकर सूक्ष्म काययोगके बलसे उसी सूक्ष्म काययोगका निरोध करता हुआ वहाँ सर्वप्रथम अनन्तर कहे जानेवाले इन करणोंको अबुद्धिपूर्वक ही प्रवृत्त करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। परन्तु वे करण कौन हैं ऐसी आशंका होनेपर कहते हैं—

* प्रथम समयमें पूर्व स्पर्धकों को नीचे करके अपूर्व स्पर्धकों को करता है।

§ ३६३ पूर्व स्पर्धकोंसे नीचे इससे पूर्व अवस्थामें सूक्ष्म काययोगकी परिस्पन्दरूप शक्तिको सूक्ष्म निगोदके जघन्य योगसे असंख्यातगुणी हानिरूपसे परिणमाकर पूर्व स्पर्धकस्वरूप ही होकर प्रवृत्त होती हुई इस समय उससे भी अच्छी तरह अपवर्तना करके अपूर्व स्पर्धकरूपसे परिणमाता है। इस क्रियाकी अपूर्व-स्पर्धककरण संज्ञा है। अब इस करणकी प्ररूपणा करनेकेलिये यहाँपर

कदयकरणसण्णा । संपहि एदस्स करणस्स परूवणट्ठमेत्थ ताव पुव्वफद्दयाणं सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्तं रचणा कायव्वा । एवं कदे सुहुमणिगोदजहण्णट्ठाणपडिबद्धफद्दएहिंतो एदाणि फद्दयाणि असंखेज्जगुणहीणाणि होदूण चिट्ठंति, अण्णहा तत्तो एदस्स सुहुमभावाणुववत्तीदो । एवं ठविदाणमेदेसिं पुव्वफद्दयाणं हेट्ठदो असंखेज्जगुणहाणीए ओहट्टेदूण अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तेमाणस्स परूवणापबंधमुवरिमसुत्ताणुसारेण वत्तइस्सामो—

* आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि ।

§ ३६४ पुव्वफद्दएहिंतो जीवपदेसे ओकड्डियूण अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तेमाणो पुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागसरूवेणोकड्डदि त्ति सुत्तत्थसंबंधो । पुव्वफद्दयादिवग्गणाविभागपडिच्छेदेहिंतो असंखेज्जगुणहीणाविभागपडिच्छेदसरूवेण जीवपदेसे ओकड्डियूण अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तेदि त्ति वुत्तं होदि, अपुव्वफद्दयचरिमवग्गणाविभागपडिच्छेदाणं पि पुव्वफद्दयादिवग्गणादो असंखेज्जगुणहाणि-णियमदंसणादो । एत्थ हाणिभागहारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो ।

* जीवपदेसाणं च असंखेज्जदिभागमोकड्डदि ।

सर्वप्रथम पूर्व स्पर्धकोंकी जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण रचना करनी चाहिये । ऐसा करनेपर सूक्ष्म निगोद जीवके जघन्य स्थानसे सम्बन्ध रखनेवाले स्पर्धकोंसे ये स्पर्धक असंख्यातगुणे हीन होकर अवस्थित हैं, अन्यथा उससे (सूक्ष्मनिगोदजीवके जघन्य स्थानसम्बन्धी स्पर्धकोंसे) इसका (सयोगिकेवलीके अपूर्व-स्पर्धकोंका) सूक्ष्मपना नहीं बन सकता । इस प्रकार स्थापित इन पूर्व-स्पर्धकोंके नीचे असंख्यातगुणहानिरूप अपकर्षितकर अपूर्व स्पर्धकोंकी रचना करते हुए योग-निरोधकरनेवाले इस सयोगिकेवली जिनके प्ररूपणाप्रबन्धको अगले सूत्रके अनुसार बतलावेंगे—

* [योगनिरोध करनेवाला यह सयोगिकेवली जीव] पूर्व स्पर्धकोंकी आदि वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है ।

§ ३६४ पूर्वस्पर्धकोंसे जीव-प्रदेशोंका अपकर्षण करके अपूर्व स्पर्धकोंकी रचना करता हुआ पूर्व स्पर्धकोंकी आदि वर्गणाके अविभाग प्रतिच्छेदोंका असंख्यातवें भाग रूपसे अपकर्षण करता है । इस प्रकार इस सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है । पूर्व स्पर्धकोंकी आदि वर्गणाके अविभागप्रतिच्छेदोंसे असंख्यातगुणे हीन अविभागप्रतिच्छेदरूपसे जीवप्रदेशोंका अपकर्षण करके अपूर्व स्पर्धकोंकी रचना करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है, क्योंकि अपूर्व स्पर्धकोंकी अन्तिम वर्गणाके अविभागप्रति-च्छेदोंमें पूर्व स्पर्धकोंकी आदि वर्गणासे असंख्यात गुणहानिका नियम देखा जाता है । यहाँपर असंख्यात गुणहानिका भागहार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है—

* और वह जीव जीवप्रदेशोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है ।

§ ३६५ पुव्वफद्दयसव्ववग्गणाहिंतो जीवपदेसाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डुणाभागहारपडिभागेणोकड्डियूण पुव्वुत्ताविभागपलिच्छेदसत्तीए परिणामिय ताणि अपुव्वफद्दयाणि णिव्वत्तेदि त्ति भणिदं होदि। एवं च ओकड्डिदाणं जीवपदेसाणमपुव्वफद्दएसु णिसेगविण्णासक्कमो वुच्चदे; तं जहा—पढमसमये जीवपदेसाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डियूण अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए जीवपदेसबहुगे णिसिंचदि, सव्वजहण्णसत्तीए परिणमंताणं बहुत्तसंभवे विरोहाभावादो। बिदियाए वग्गणाए जीवपदेसे विसेसहीणे णिसिंचदि सेढीए असंखेज्जभागपडिभागेण। एवं णिसिंचमाणो गच्छइ जाव अपुव्वफद्दयाणं चरिमवग्गणा त्ति। पुणो अपुव्वफद्दयचरिमवग्गणादो पुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए असंखेज्जगुणहीणे जीवपदेसे णिसिंचदि। एत्थ हाणिगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो होंतो वि सादिरेओ ओकड्डुक्कड्डणभागहारपमाणो त्ति दट्ठव्वो। एदस्स कारणगवेसणा सुगमा। तत्तो उवरि समयाविरोहेण विसेसहाणी—जीवपदेसविण्णासक्कमो अणुगंतव्वो। एसा एसा अपुव्वफद्दयकारगपढमसमये परूवणा। एवं बिदियादिसमएसु वि जाव अंतोमुहुत्तं ताव अपुव्वफद्दयाणि समयाविरोहेण णिव्वत्तेदि त्ति इममत्थं फुडीकरेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* एवमंतोमुहुत्तमपुव्वफद्दयाणि करेदि।

§ ३६५ पूर्व स्पर्धककी सब वर्गणाओंसे जीवप्रदेशोंके असंख्यातवेंका अपकर्षण भागहाररूप प्रतिभागसे अपकर्षण करके पूर्वोक्त अविभागप्रतिच्छेदशक्तिरूपसे परिणमाकर उन अपूर्व स्पर्धकों की रचना करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। और इस प्रकार अपकर्षित किये गये जीवप्रदेशों का अपूर्व स्पर्धकोंमें निषेक-विन्यासका क्रम कहते हैं। यथा—प्रथम समयमें जीवप्रदेशोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करके अपूर्वस्पर्धकोंकी आदि वर्गणामें जीवप्रदेशोंके बहुभागका सिंचन करता है, क्योंकि सबसे जघन्य शक्तिमें परिणमन करनेवाले जीवप्रदेशोंके बहुत सम्भव होनेमें विरोधका अभाव है। दूसरी वर्गणामें विशेषहीन जीवप्रदेशोंको जगश्रेणिके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागके अनुसार सिंचित करता है। इस प्रकार सिंचन करता हुआ अपूर्व स्पर्धकोंको अन्तिम वर्गणाके प्राप्त होने तक जाता है। पुनः अपूर्व स्पर्धककी अन्तिम वर्गणासे पूर्व स्पर्धकों की आदि वर्गणामें असंख्यातगुणहीन जीवप्रदेशोंको सिंचित करता है। यहाँपर हानिका गुणकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होता हुआ भी साधिक अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारप्रमाण होता है, ऐसा जानना चाहिये। इसके कारणकी गवेषणा सुगम है। उससे आगे समयके अविरोधपूर्वक विशेष हानिरूप जीवप्रदेशोंके विन्यासक्रमको जानना चाहिये। इस प्रकार यह प्ररूपणा अपूर्व स्पर्धकोंको करनेवालेके प्रथम समयमें होती है। इसी प्रकार द्वितीय आदि समयोंमें भी अन्तर्मुहूर्त कालतक अपूर्व स्पर्धकोंको समयके अविरोधपूर्वक रचना करता है। इस प्रकार इस अर्थको स्पष्ट करते हुये आगेके सूत्रको कहते हैं—

* इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालतक अपूर्व स्पर्धकोंको करता है।

१. प्रेसकापीप्रतौ-हीणो इदि पाठः।

§ ३६६ सुगमं। ताणि च पडिसमयमसंखेज्जगुणहीणकमेण णिव्वत्तेदि त्ति जाणावणट्ठमिदमाह—

* असंखेज्जगुणहीणाए सेढीए जीवपदेसाणं च असंखेज्जगुणाए सेढीए।

§ ३६७ एदस्स भावत्थो—पढमसमये णिव्वत्तिद-अपुव्वफद्दएहिंतो असंखेज्जगुण-हीणाणि अपुव्वफद्दयाणि बिदियसमए तत्तो हेट्ठा णिव्वत्तेदि। पुणो बिदियसमये णिव्वत्तिद-अपुव्वफद्दएहिंतो असंखेज्जगुणहीणाणि अण्णाणि अपुव्वाणि तत्तो हेट्ठा तदियसमये णिव्वत्तेदि। एवमसंखेज्जगुणहीणाए सेढीए णेदव्वं जाव अंतोमुहुत्तचरिमसमयो त्ति। जीवपदेसाणं पुण असंखेज्जगुणाए सेढीए ओकड्डणा पयट्टदि पढमसमयोकड्डिदपदेसेहिंतो बिदियसमए ओकड्डिज्जमाणजीवपदेसाणमसंखेज्जगुणपमाणेण पवुत्तिदंसणादो। एवं तदियादिसमएसु वि असंखेज्जगुणाए सेढीए जीवपदेसाणमोकड्डणा अणुगंतव्वा त्ति।

§ ३६८ संपहि बिदियादिसमएसु वि ओकड्डिदजीवपदेसाणं णिसेगसेढिपरूवणा एवमणुगंतव्वा। तं जहा—पढमसमयमोकड्डिदजीवपदेसेहिंतो असंखेज्जगुणे जीवपदेसे एण्हिमोकड्डियूण बिदियसमये णिव्वत्तिज्जमाणाणमपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए बहुए जीवपदेसे णिक्खिवदि। तत्तो विसेसहीणं जाव अपुव्वाणं चरिमवग्गणादो त्ति। पुणो

---

§ ३६६ यह सूत्र सुगम है। परन्तु उन स्पर्धकोंको प्रत्येक समयमें असंख्यातगुणहीनक्रमसे रचता है। इस बातका ज्ञान करानेकेलिये इस सूत्रको कहते हैं—

* उन अपूर्व स्पर्धकोंकी असंख्यातगुणहीनश्रेणीरूपसे और जीवप्रदेशोंकी असंख्यातगुणीश्रेणिरूपसे रचना करता है।

§ ३६७ इस सूत्रका भावार्थ—प्रथम समयमें रचे गये अपूर्व स्पर्धकोंसे असंख्यातगुणे हीन अपूर्व स्पर्धक दूसरे समयमें उनसे नीचे रचता है। पुनः दूसरे समयमें रचे गये अपूर्व स्पर्धकोंसे असंख्यातगुणे हीन अन्य अपूर्व स्पर्धकोंको उनसे नीचे तीसरे समयमें रचता है। इस प्रकार असंख्यातगुणहीन श्रेणिरूपसे अन्तर्मुहूर्तकालके अन्तिम समय तक जानना चाहिये। परन्तु जीवप्रदेशोंकी असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे अपकर्षणा प्रवृत्त होती है, क्योंकि प्रथम समयमें अपकर्षित किये गये प्रदेशोंसे दूसरे समयमें अपकर्षित किये जानेवाले प्रदेशोंकी असंख्यातगुणहीन प्रमाणसे प्रवृत्ति देखी जाती है। इसी प्रकार तीसरे आदि समयोंमें भी असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे जीवप्रदेशों की अपकर्षणा जाननी चाहिये।

§ ३६ अब द्वितीयादि समयोंमें भी अपकर्षित किये गये जीवप्रदेशोंको निषेकसम्बन्धी श्रेणिप्ररूपणा इस प्रकार जाननी चाहिये। यथा—प्रथम समयमें अपकर्षित किये गये जीवप्रदेशोंसे असंख्यातगुणे जीवप्रदेशोंको इस समय अपकर्षित करके दूसरे समयमें रचे जानेवाले अपूर्व स्पर्धकोंको आदि वर्गणामें बहुत जीवप्रदेशोंको रचता है। उसके आगे अपूर्व स्पर्धकोंकी अन्तिम वर्गणाके प्राप्त होने तक विशेषहीन-विशेषहीन रचता है। पुनः प्रथम समयमें रचे गये अपूर्व

पढमसमयणिव्वत्तिदाणमपुव्वफद्दयाणं जं जहण्णफद्दयं तदादिवग्गणाए असंखेज्ज-गुणहीणे णिक्खिवदि । तत्तो उवरि सव्वत्थ विसेसहीणं । एवं तदियादिसमएसु वि ओकड्डिज्जमाणजीवपदेसाणमेसेव णिसेगपरूवणा एदीए दिसाए णेदव्वा । संपहि एदेण सव्वेण वि काले णिव्वत्तिदाणमपुव्वफद्दयाणं पमाणमेत्तियमिदि पदुप्पाएमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* अपुव्वफद्दयाणि सेढीए असंखेज्जदिभागो ।

§ ३६९ सुगममेदं ।

* सेढिवग्गमूलस्स वि असंखेज्जदिभागो ।

§ ३७० किं कारणं ? एत्तो असंखेज्जगुणं पुव्वफद्दयाणं पि सेढिपढमवग्गमूलस्सासंखेज्जदिभागपमाणत्तविणिण्णयादो । संपहि पुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभाग-मेत्तमेदेसिं जाणावेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

* पुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो सव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि ।

§ ३७१ गयत्थमेदं सुत्तं । णवरि पुव्वफद्दयेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्त-गुणहाणीसु संभवंतीसु तत्थेयगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दएहिंतो वि एदेसिमसंखेज्जगुणहीण-

---

स्पर्धकोंमें जो जघन्य स्पर्धक है उसकी आदिवर्गणामें असंख्यातगुणहीन जीवप्रदेशोंको निक्षिप्त करता है। उससे आगे सर्वत्र विशेषहीन जीवप्रदेश निक्षिप्त करता है। इसी प्रकार तृतीयादि समयोंमें भी अपकर्षित किये जानेवाले जीवप्रदेशोंकी यही निषेकप्ररूपणा इसी रूपसे जाननी चाहिये। अब इस सब कालकेद्वारा रचे गये अपूर्व स्पर्धकोंका प्रमाण इतना होता है इस बातका कथन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* ये सब अपूर्व स्पर्धक जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

§ ३६९ यह सूत्र सुगम है।

* वे सब अपूर्व स्पर्धक जगश्रेणिके वर्गमूलके भी असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

§ ३७० क्योंकि इनसे असंख्यातगुणे पूर्वस्पर्धकोंके भी जगश्रेणिके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागप्रमाणपनेका निर्णय होता है। अब ये अपूर्व स्पर्धक पूर्व स्पर्धकोंके भी असंख्यातवें भागप्रमाण हैं इस बातका ज्ञान करानेवाले आगेके सूत्रको कहते हैं—

* ये सम्पूर्ण अपूर्वस्पर्धक पूर्वस्पर्धकोंके भी असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

§ ३७१ यह सूत्र गतार्थ है। इतनी विशेषता है कि पूर्व स्पर्धकोंमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणहानियाँ सम्भव हैं। उनमें एक गुणहानिस्थानमें जितने स्पर्धक हैं उनसे भी ये अपूर्वस्पर्धक असंख्यातगुणहीन प्रमाण जानने चाहिये।

पमाणत्तमणुगंतव्वं। सुत्तणिद्देसेण विणा कधमेदं परिच्छिज्जदि त्ति णासंकणिज्जं सुत्ताविरुद्धपरमगुरुसंपदायबलेण तहाविहत्थ सिद्धीए विरोहाभावादो, व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरिति न्यायाच्च। एवमेदीए परूवणाए अंतोमुहुत्तमेत्तकालमपुव्वफद्दयकरणद्धमणुपालेमाणस्स तदद्धाचरिमसमए अपुव्वफद्दयकिरिया समप्पइ। णवरि अपुव्वफद्दयाणं किरियाए णिट्ठिदाए वि पुव्वफद्दयाणि सव्वाणि तहा चेव चिट्ठंति, तेसिमज्ज वि विणासाभावादो। एत्थ सव्वत्थ ट्ठिदि-अणुभागखंडयाणं गुणसेढीणिज्जराए च परूवणा पुव्वुत्तेणेव कमेणाणुमग्गियव्वा जाव सजोगिकेवलिचरिमसमयो त्ति तत्थ तेसिं पवुत्तीए पडिबंधाभावादो। तदो अपुव्वफद्दयकरणं समत्तं। एवमंतोमुहुत्तमपुव्वफद्दयकरणद्धमणुपालिय तदो परमंतोमुहुत्तकालं पुव्वापुव्वफद्दयाणि ओकड्डियूण जोगकिट्टीओ णिव्वत्तेमाणस्स परूवणापबंधमुत्तरसुत्ताणुसारेण वत्तइस्सामो।

* एत्तो अंतोमुहुत्तं किट्टीओ करेदि।

§ ३७२ पूर्वापूर्वस्पर्द्धकस्वरूपेणेष्टकापंक्तिसंस्थानसंस्थितं योगमुपसंहृत्य सूक्ष्मसूक्ष्माणि खंडानि निर्वर्तयति, ताओ किट्टीओ णाम वुच्चंति। अविभागपडिच्छेदुत्तर-

---

शंका—सूत्रमें ऐसा कथन तो नहीं किया गया है। इसके बिना यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—यह आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि सूत्रके अविरुद्ध परम गुरुके सम्प्रदायके बलसे उस प्रकारसे अर्थकी सिद्धिमें विरोधका अभाव है और व्याख्यानसे विशेषका ज्ञान होता है ऐसा न्याय है।

इस प्रकार इस प्ररूपणाके अनुसार अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल तक अपूर्व स्पर्धकोंको करनेके कालका पालन करनेवाले जीवके उस कालके अन्तिम समयमें अपूर्व स्पर्धकक्रिया समाप्त होती है। इतनी विशेषता है कि अपूर्व स्पर्धकोंकी क्रियाके समाप्त होनेपर भी पूर्वस्पर्धक सबके सब उसीप्रकार अवस्थित रहते हैं, क्योंकि उनका अभी भी विनाश नहीं हुआ है। यहाँ सर्वत्र स्थितिकाण्डक और अनुभागकाण्डकोंका तथा गुणश्रेणिनिर्जराको कथन पहले कहे गये क्रमसे ही जानना चाहिये, क्योंकि सयोगिकेवलीके अन्तिम समय तक उन तीनोंकी प्रवृत्ति होनेमें प्रतिबन्धका अभाव है। इसके बाद अपूर्व स्पर्धककरणविधि समाप्त हुई। इसप्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक अपूर्व स्पर्धककरणके कालका पालनकर उसके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक पूर्वस्पर्धक और अपूर्व स्पर्धकोंका अपकर्षण करके योगसम्बन्धी कृष्टियोंकी रचना करनेवाले सयोगिकेवली जिनके आगेके प्ररूपणाप्रबन्धके अनुसार बतलावेंगे—

* इसके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक कृष्टियोंको करता है।

§ ३७२ पूर्व और अपूर्वस्पर्धकरूपसे ईंटोंकी पंक्तिके आकारसे स्थित योगका उपसंहार करके सूक्ष्म-सूक्ष्म खण्डोंकी रचना करता है, उन्हें कृष्टियाँ कहते हैं। अविभागप्रतिच्छेदोंके आगे क्रमवृद्धि

---

१. प्रेसकापीप्रतौ-फद्दयाणि इति पाठः।

कमवड्ढिहाणीणमभावेण फद्दयलक्खणादो किट्टीलक्खणस्स विलक्खणभावो एत्थ दट्ठव्वो, असंखेज्जगुणवड्ढिहाणीहिं चेव किट्टीगदजीवपदेसेसु जोगसत्तीए समवट्ठाणदंसणादो। एवं लक्खणाओ किट्टीओ एसो जोगणिरोहकेवली अंतोमुहुत्तकालं करेदि त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसमुच्चओ। संपहि एदस्सेव किट्टीलक्खणस्स फुडीकरणट्ठमुवरिमसुत्तावयारो—

*** अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डुज्जदि।**

§ ३७३ पुव्वुत्ताणमपुव्वफद्दयाणं जा आदिवग्गणा सव्वमंदसत्तिसमण्णिदा तिस्से असंखेज्जदिभागमोकड्डदि। तत्तो असंखेज्जे-गुणहीणाविभागपडिच्छेदसरूवेण जोगसत्तिमोवट्टेयूण तदसंखेज्जदिभागे ठवेदि त्ति वुत्तं होइ। एत्थ किट्टीफद्दयाणं संधिगुणगारो अविभागपडिच्छेदावेक्खाए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो। एवमविभाग पडिच्छेदे असंखेज्जगुणहाणीए ओवट्टेयूण किट्टीओ करेमाणो पढमसमये केत्तियमेत्ते-जीवपदेसे किट्टीसरूवेणोकड्डदि त्ति आसंकाए णिरारेगीकरणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

*** जीवपदेसाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि।**

और हानियोंका अभाव होनेके कारण स्पर्द्धकके लक्षणसे कृष्टिके लक्षणकी यहाँ विलक्षणता जाननी चाहिये, क्योंकि असंख्यातगुणी वृद्धि और हानिकेद्वारा ही कृष्टिगत जीवप्रदेशोंमें योगशक्तिका अवस्थान देखा जाता है। इस प्रकारकी लक्षणवाली कृष्टियोंको यह योगका निरोध करनेवाला केवली अन्तर्मुहूर्त काल तक करता है। इसप्रकार यहाँपर यह सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है। अब कृष्टियोंके इसी लक्षणको स्पष्ट करनेकेलिए आगेके सूत्रका अवतार हुआ है—

*** अपूर्व स्पर्धकोंकी आदि वर्गणाके अविभाग प्रतिच्छेदोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है।**

§ ३७३ पूर्वोक्त अपूर्व स्पर्धकोंकी सबसे मन्द शक्तिसे युक्त जो आदि वर्गणा है उसके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है। उससे असंख्यात गुणहीन अविभागप्रतिच्छेदरूपसे योगशक्तिका अपकर्षण करके उसके असंख्यातवें भागमें स्थापित करता है। यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यहाँपर कृष्टियों और स्पर्धकोंके सन्धिसम्बन्धी गुणकार अविभाग प्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा पल्योपमके असंख्यतवें भागप्रमाण है। इस प्रकार अविभागप्रतिच्छेदोंका असंख्यात गुणहानिके द्वारा अपवर्तन करके कृष्टियोंको करता हुआ प्रथम समयमें कितने जीवप्रदेशोंको कृष्टिरूपसे अपकर्षित करता है ऐसी आशंका होनेपर निःशंक करनेकेलिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

*** जीवप्रदेशोंके असंख्यातवें भागका अपकर्षण करता है।**

---

१. ता० प्रतौ असंखेज्जदि इति पाठः।

§ ३७४ पुव्वापुव्वफद्दएसु समवट्ठिदाणं लोगमेत्तजीवपदेसाणं असंखेज्जदि भागमेत्तजीवपदेसे किट्टीकरणमोकड्डदि त्ति वुत्तं होदि। एत्थ पडिभागो ओकड्डुक्कड्डणभागहारो। एवमोकड्डिदजीवपदेसे किट्टीसु कदमेण विण्णासविसेसेण णिक्खिवदि त्ति चे वुच्चदे—पढमसमयकिट्टीकारगो पुव्वफद्दएहिंतो अपुव्वफद्दएहिंतो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागपडिभागेण जीवपदेसे ओकड्डियूण पढमकिट्टीए बहुए जीवपदेसे णिक्खिवदि। बिदियाए किट्टीए विसेसहीणे णिसिंचदि। को एत्थ पडिभागो? सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्तो णिसेगभागहारो।

§ ३७५ एवं णिक्खिवमाणो गच्छदि जाव चरिमकिट्टि त्ति। पुणो चरिमकिट्टीदो अपुव्वफद्दयादिवग्गणाए असंखेज्जगुणहीणं णिसिंचिदूण तत्तो विसेसहाणीए णिसिंचदि त्ति णेदव्वं। पुणो बिदियसमए पढमसमयोकड्डिदजीवपदेसेहिंतो असंखेज्जगुणे जीवपदेसे ओकड्डियूण पढमाए तक्कालणिव्वत्तिज्जमाणीए अपुव्वकिट्टीए बहुगे जीवपदेसे णिसिंचदि। बिदियाए विसेसहीणे असंखेज्जदिभागेण। एवं णिक्खिवमाणो गच्छदि जाव बिदियसमए कीरमाणीणमपुव्वकिट्टीणं चरिमकिट्टि त्ति। पुणो चरिमादो बिदियसमयपुव्वकिट्टीदो पढमसमये णिव्वत्तिदाणमपुव्वकिट्टीणं जा जहण्णिया किट्टी तिस्से

---

§ ३७४ पूर्व और अपूर्व स्पर्धकोंमें अवस्थित लोकप्रमाण जीवप्रदेशोंके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवप्रदेशोंका कृष्टि करनेकेलिये अपकर्षित करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यहाँ प्रतिभाग अपकर्षण-उत्कर्षण भागहाररूप है।

शंका—इसप्रकार अपकर्षित किये गये जीवप्रदेशोंका कृष्टियोंमें किस रचना विशेषरूपसे निक्षिप्त करता है?

समाधान—कहते हैं—प्रथम समयमें कृष्टियोंको करनेवाला योगनिरोध करनेवाला जीव पूर्व स्पर्धकोंमेंसे और अपूर्व स्पर्धकोंमें से पल्योपमके असंख्यातवें भागरूप प्रतिभागसे जीवप्रदेशोंको अपकर्षितकर प्रथम कृष्टिमें बहुत जीवप्रदेशोंको निक्षिप्त करता है। दूसरी कृष्टिमें विशेषहीन जीवप्रदेशोंको निक्षिप्त करता है।

शंका—यहाँपर प्रतिभागका प्रमाण क्या है?

समाधान—यहाँपर जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण निषेक भागहार प्रतिभागका प्रमाण है।

§ ३७५ इसप्रकार निक्षेप करता हुआ अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होने तक निक्षेप करता जाता है। पुनः अन्तिम कृष्टिसे अपूर्व स्पर्धकोंकी आदि वर्गणामें असंख्यात गुणहीन जीवप्रदेशोंको सिंचितकर उससे आगे विशेष हानिरूपसे सिंचित करता है ऐसा जानना चाहिये। पुनः दूसरे समयमें प्रथम समयमें अपकर्षित किये गये जीवप्रदेशोंसे असंख्यातगुणे जीवप्रदेशोंको अपकर्षित करके उस कालमें रची जानेवाली प्रथम अपूर्व कृष्टिमें बहुत जीवप्रदेशोंको सिंचित करता है। दूसरी कृष्टिमें असंख्यातवें भागप्रमाण विशेषहीन जीवप्रदेशोंको निक्षिप्त करता है। इस प्रकार निक्षेप करता हुआ

उवरि असंखेज्जदिभागहीणं णिसिंचदि, तत्थ पुव्वणिसित्तजीवपदेसमेत्तेण एगकिट्टी-विसेसमेत्तेण च। एत्तो उवरि सव्वत्थ विसेसहीणे चेव णिक्खिवदि जाव चरिमकिट्टि त्ति। किट्टीफद्दयसंधीए पुव्वुत्तो चेव कमो परूवेयव्वो। एवमंतोमुहुत्तमेत्तकालमसंखेज्ज-गुणहाणीए सेढीए अपुव्वकिट्टीओ णिव्वत्तेदि। जीवपदेसे पुण असंखेज्जगुणाए सेढीए ओकड्डियूण किट्टीसु णिसिंचदि जाव किट्टीकरणद्धाए चरिमसमओ त्ति। संपहि एदस्सेवत्थस्स फुडीकरणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

* एत्थ अंतोमुहुत्तं करेदि किट्टीओ असंखेज्जगुणाए सेढीए।

§ ३७६ सुगमं।

* जीवपदेसाणमसंखेज्जगुणाए सेढीए।

§ ३७७ सुगममेदं पि सुत्तं। संपहि एवं णिव्वत्तिज्जमाणीसु किट्टीसु हेट्ठिम-हेट्ठिमकिट्टीदो उवरिमउवरिमकिट्टीणं केवडिओ गुणगारो होदि त्ति आसंकाए णिरा-यरणट्ठं किट्टीगुणगारपमाणमुवरिमसुत्तेण णिद्दिसइ—

* किट्टीगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

दूसरे समयमें की जानेवाली अपूर्व कृष्टियोंकी अन्तिम कृष्टि तक निक्षिप्त करता जाता है। पुनः दूसरे समयमें पहलेकी अन्तिम कृष्टिसे प्रथम समयमें रची जानेवाली अपूर्व कृष्टियोंकी जो जघन्य कृष्टि है उसके ऊपर असंख्यातवें भागहीन जीवप्रदेशोंको सिंचित करता है, क्योंकि उसमें पूर्वमें निक्षिप्त किये जीवप्रदेशमात्र और एक कृष्टि विशेषमात्र निक्षिप्त करता है। इससे आगे सर्वत्र अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होने तक विशेषहीन ही जीवप्रदेशोंको निक्षिप्त करता है। कृष्टि और स्पर्धककी सन्धिमें पूर्वोक्त क्रम ही कहना चाहिये। इसप्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे अपूर्वकृष्टियोंको रचता है। परन्तु कृष्टिकरण कालके अन्तिम समय तक कृष्टियोंमें असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे जीवप्रदेशोंको सिंचित करता है। अब इसी अर्थके स्पष्टीकरण करनेकेलिये आगेका सूत्रप्रबन्ध आया है—

* यहाँपर असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे कृष्टियोंको अन्तर्मुहूर्तकाल तक करता है।

§ ३७६ यह सूत्र सुगम है।

* असंख्यातगुणीश्रेणिरूपसे जीवप्रदेशोंको करता है।

§ ३७७ यह सूत्र भी सुगम है। अब यहाँपर रची जानेवाली कृष्टियोंमें अधस्तन-अधस्तन कृष्टियोंसे उपरिम-उपरिम कृष्टियोंका कितना गुणकार होता है ऐसी आशंकाका निराकरण करनेके-लिये आगेके सूत्रद्वारा कृष्टियोंके गुणकारके प्रमाणका निर्देश करते हैं—

* कृष्टिगुणकार पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

§ ३७८ एतदुक्तं भवति—जहण्णकिट्टीए सरिसधणियकिट्टीओ असंखेज्जपदरमेत्तीओ अत्थि, तत्थ एगजहण्णकिट्टीए जोगाविभागपडिच्छेदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदे एगजीवपदेसमस्सियूण तदणंतरोवरिमएगकिट्टीए जोगाविभागपडिच्छेदा होंति। एवं बिदियादिकिट्टीसु वि गुणगारपरूवणा णेदव्वा जाव चरिमकिट्टि त्ति। पुणो एगचरिमकिट्टीए जोगाविभागपडिच्छेदे पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदे अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए एगजीवपदेसाविभागपडिच्छेदा होंति। तदो उवरि जीवपदेसा फद्दयसमयाविरोहेण अविभागपडिच्छेदेहिं विसेसाहिया भवंति त्ति दट्ठव्वं। एवमेगजीवपदेसमस्सियूण भणिदं।

§ ३७९ अथवा जहण्णकिट्टीए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदाए बिदियकिट्टी भवदि। एवं गुणगारो णेदव्वो जाव चरिमकिट्टि त्ति। एस गुणगारो जाव सरिसधणियाणि पेक्खियूण भणिदो। पुणो चरिमकिट्टीए सरिसधणियसव्वाविभागपडिच्छेदसमुदायादो अपुव्वफद्दयादिवग्गणाए सरिसधणियसव्वाविभागपडिच्छेदसमूहो असंखेज्जगुणहीणो त्ति वत्तव्वो, उवरिमअविभागपडिच्छेदगुणगारादो हेट्ठिमजीवपदेसगुणगारस्सासंखेज्जगुणत्तदंसणादो। को एत्थ गुणगारो? सेढीए असंखेज्जदिभागो। सेसं जाणिय वत्तव्वं। एवं किट्टीगुणगारपदुप्पायणमुहेण किट्टीलक्खण-

---

§ ३७८ उक्त कथनका यह तात्पर्य है—जघन्य कृष्टिके सदृश धनवाली कृष्टियाँ असंख्यात जगप्रतरप्रमाण हैं। वहाँ एक जघन्य कृष्टिके योगसम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेदोंको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर एक जीवप्रदेशके आश्रयसे जघन्य कृष्टिके अनन्तर उपरिम एक कृष्टिमें योगसम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। इसी प्रकार दूसरी आदि कृष्टियोंमें भी अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होने तक गुणकार प्ररूपणा जाननी चाहिये। पुनः एक अन्तिम कृष्टिके योगसम्बन्धी अविभाग प्रतिच्छेदोंको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर अपूर्व स्पर्धकोंकी आदिवर्गणामें एक जीवप्रदेशके अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। इसके आगे जीवप्रदेश आगमानुसार अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा विशेष अधिक होते हैं ऐसा जानना चाहिये। इस प्रकार एक जीवप्रदेशका आश्रयकर कहा है।

§ ३७९ अथवा जघन्य कृष्टिको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित करनेपर दूसरी कृष्टि होती है। इस प्रकार अन्तिम कृष्टिके प्राप्त होनेतक यह गुणकार जानना चाहिये। यह गुणकार जबतक सदृश धनवाली कृष्टियाँ हैं उनको देखकर कहा है। पुनः अन्तिम कृष्टिके सदृश धनवाले पूरे अविभागप्रतिच्छेदसमुदायसे अपूर्व स्पर्धकोंकी आदि वर्गणामें सदृश धनवाले सब अविभागप्रतिच्छेदोंका समूह असंख्यात गुणहीन होता है ऐसा कहना चाहिये, उपरिम अविभागप्रतिच्छेद गुणकारसे अधस्तन जीवप्रदेशगुणकार असंख्यातगुणा देखा जाता है।

शंका—यहाँपर गुणकारका प्रमाण क्या है?

समाधान—यहाँपर गुणकारका प्रमाण जगश्रेणीके असंख्यातवें भाग है।

परूवणं कादूण संपहि जोगकिट्टीणमेदासिमंतोमुहुत्तमेत्तकालेण णिव्वत्तिज्जमाणाणं पमाणविसेसावहारणट्ठं उत्तरसुत्तारंभो—

*** किट्टीओ सेढीए असंखेज्जदिभागो ।**

§ ३८० कुदो ? सेढिपढमवग्गमूलस्स वि असंखेज्जदिभागभूदाणमेदासिं सेढीए असंखेज्जदिभागमेत्तसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो । संपहि अपुव्वफद्दएहिंतो वि असंखेज्जगुणहीणपमाणत्तमेदासिमविरुद्धमिदि जाणावणफलमुत्तरसुत्तं—

*** अपुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो ।**

§ ३८१ एयगुणहाणिट्ठाणंतरफद्दयसलागाणमसंखेज्जदिभागमेत्ताणि अपुव्वफद्दयाणि होंति । पुणो एदेसिं पि असंखेज्जदिभागमेत्तीओ एदाओ किट्टीओ एयफद्दयवग्गणाणमसंखेज्जदिभागपमाणाओ दट्ठव्वाओ त्ति एसो एदस्स सुत्तस्स भावत्थो । एवमंतोमुहुत्तं किट्टीकरणद्धमणुपालेमाणस्स किट्टीकरणद्धाए जहाकमं णिट्ठिदाए तदो से काले जो परूवणाविसेसो तण्णिण्णयविहाणट्ठमुत्तरो सुत्तपबंधो—

*** किट्टीकरणद्धे णिट्ठिदे से काले पुव्वफद्दयाणि अपुव्वफद्दयाणि च णासेदि ।**

शेष कथन जानकर कहना चाहिये । इस प्रकार कृष्टिगुणकारके प्रतिपादनद्वारा कृष्टियोंके लक्षणका प्ररूपण करके अब अन्तर्मुहूर्तप्रमाणकालकेद्वारा रची जानेवाली इन योगसम्बन्धी कृष्टियोंके प्रमाणविशेषके अवधारणकरनेकेलिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

*** योगसम्बन्धी कृष्टियाँ जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।**

§ ३८० क्योंकि, जगश्रेणिके प्रथम वर्गमूलके भी असंख्यातवें भागप्रमाण इनके जगश्रेणिके असंख्यातवें भागप्रमाण की सिद्धि निर्बाधरूपसे उपलब्ध होती है । अब इनका अपूर्व स्पर्धकोंसे भी असंख्यात गुणहीनपना अविरुद्ध है इस बातका ज्ञान करानेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** वे योगसम्बन्धी कृष्टियाँ अपूर्व स्पर्धकोंके भी असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।**

§ ३८१ एक गुणहानि स्थानान्तरकी स्पर्धकशलाकाओंके असंख्यातवें भागप्रमाण अपूर्व स्पर्धक होते हैं । पुनः इनके भी असंख्यातवें भागप्रमाण ये योगकृष्टियाँ एक स्पर्धकसम्बन्धी वर्गणाओंके असंख्यातवें भागप्रमाण जानना चाहिये । इस प्रकार यह इस सूत्रका भावार्थ है । इस प्रकार कृष्टियोंको करनेकेलिये अन्तर्मुहूर्त कालका पालन करनेवाले इस जीवके कृष्टिकरणकालके यथाक्रम समाप्त होनेपर उसके बाद अनन्तर कालमें जो प्ररूपणाविशेष है उसका निर्णय करनेकेलिये आगेका सूत्रप्रबन्ध आया है—

*** कृष्टिकरणकालके समाप्त होनेपर अनन्तर समयमें पूर्व स्पर्धकों और अपूर्व स्पर्धकोंका नाश करता है ।**

§ ३८२ जाव किट्टीकरणद्धाए चरिमसमओ ताव पुव्वफद्दयाणि अपुव्वफद्दयाणि च अविणट्ठसरूवाणि दीसंति, तदसंखेज्जदिभागमेत्ताणं चेव सरिसधणियजीवपदेसाणं समयं पडि किट्टीकरणसरूवेण[1] परिणमणुवलंभादो। पुणो से काले पुव्वापुव्वफद्दयाणि सव्वाणि चेव अप्पणो सरूवपरिच्चाएण किट्टीसरूवेण परिणमंति जहण्णकिट्टिप्पहुडि जाव उक्कस्सकिट्टि त्ति ताव एदासु किट्टीसु सरिसधणियसरूवेण तेसिं तक्कालमेव परिणमणणियमदंसणादो। एवं किट्टीकरणद्धा समत्ता। संपहि एत्तो पाए अंतोमुहुत्तकालं किट्टीगदजोगो होदूण सजोगि अद्धावसेसमणुपालेदि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

* अंतोमुहुत्तं किट्टीगदजोगो होदि। गयत्थमेदं सुत्तं।

§ ३८३ संपहि किट्टीगदजोगमेसो वेदमाणो किमंतोमुहुत्तमेत्तकालमवट्ठिदभावेण वेदेदि, आहो अण्णहा त्ति एवंविहाए आसंकाए णिराकरणं कस्सामो। तं जहा—पढमसमयकिट्टीवेदगो किट्टीणमसंखेज्जे भागे वेदेदि। पुणो बिदियसमए पढमसमयवेदिदकिट्टीणं हेट्ठिमोवरिमासंखेज्जभागविसयाओ किट्टीओ भगसरूवं छंडिय मज्झिमकिट्टीसरूवेण वेदिज्जंति त्ति पढमसमयजोगादो बिदियसमयजोगो असंखेज्जगुणहीणो होइ। एवं तदियादिसमएसु वि णेदव्वं। तदो पढमसमए बहुगीओ किट्टीओ वेदेदि, बिदिय-

---

§ ३८२ जब तक कृष्टिकरणके कालका अन्तिम समय है तब तक पूर्वस्पर्धक और अपूर्व स्पर्धक अविनष्टरूपसे दिखाई देते हैं, क्योंकि उनके असंख्यातवें भागप्रमाण ही सदृश धनवाले जीवप्रदेशोंका प्रत्येक समयमें कृष्टिकरणरूपसे परिणमन उपलब्ध होता है। पुनः तदनन्तर समयमें सभी पूर्व और अपूर्व स्पर्धक अपने स्वरूपका त्याग करके कृष्टिरूपसे परिणमन करते हैं, क्योंकि जघन्य कृष्टिसे लेकर उत्कृष्ट कृष्टिके प्राप्त होने तक उन कृष्टियोंमें सदृश धनरूपसे उनका उस कालमें परिणमनका नियम देखा जाता है। इस प्रकार कृष्टिकरणकाल समाप्त हुआ। अब इसके बाद अन्तर्मुहूर्तकाल तक कृष्टिगत योगवाला होकर सयोगिकालमें जो अवशेष काल रहा उसका पालन करता है, इस बातका ज्ञान करानेकेलिये आगेके सूत्रका अवतार हुआ है—

* अन्तर्मुहूर्तकाल तक कृष्टिगत योगवाला होता है।

§ ३८३ अब कृष्टिगत योगका वेदन करनेवाला यह सयोगीकेवली क्या अन्तर्मुहूर्त कालतक अवस्थित भावसे वेदन करता है या अन्य प्रकारसे वेदन करता है? इस तरह इस प्रकारकी आशंकाका निराकरण करेंगे। यथा—प्रथम समयमें कृष्टिवेदक कृष्टियोंके असंख्यात बहुभागका वेदन करता है। पुनः दूसरे समयमें प्रथम समयमें वेदी गई कृष्टियोंके अधस्तन और उपरिम असंख्यात भागविषयक कृष्टियाँ अपने स्वरूपको छोड़कर मध्यम कृष्टिरूपसे वेदी जाती हैं। इस प्रकार प्रथम समयसम्बन्धी योगसे दूसरे समयसम्बन्धी योग असंख्यात गुणहीन होता है। इस प्रकार तृतीय आदि समयोंमें भी जानना चाहिये। इसलिये प्रथम समयमें बहुत कृष्टियोंका वेदन करता है, दूसरे समय-

---

१. प्रेसकापीप्रतौ किट्टीसरूवेण इति पाठः।

समए विसेसहीणाओ वेदेदि, एवं जाव चरिमसमओ त्ति विसेसहीणकमेण किट्टीओ वेदेदि त्ति वत्तव्वं ।

§ ३८४ अथवा पढमसमए थोवाओ किट्टीओ वेदेदि, हेट्ठिमोवरिमासंखेज्जदिभाग-विसयाणं चेव किट्टीणं पढमसमये विणासिज्जमाणाणं पहाणभावेण विवक्खियत्तादो । बिदियसमये असंखेज्जगुणाओ वेदेदि, पढमसमए विणासिदकिट्टीहिंतो बिदियसमए असंखेज्जगुणाओ किट्टीओ हेट्ठिमोवरिमासंखेज्जदिभागपडिबद्धाओ विणासेदि त्ति भणिदं होदि । एवमंतोमुहुत्तमसंखेज्जगुणाए सेढीए किट्टीगदजोगमेसो वेदेदि, समयं पडि मज्झिमकिट्टिआयारेण परिणामिज्जमाणाणं किट्टीणमसंखेज्जगुणभावेण पवुत्तिदंसणादो । पढमादिसमएसु जहाकमं वेदिदकिट्टीणं जीवपदेसा बिदियादिसमएसु णिप्फंदसरूवेणा-जोगा[1] होदूण चिट्ठंति त्ति किण्ण इच्छिज्जदे ? ण, एक्कम्मि जीवे सजोगाजोगपज्ज-याणमक्कमेण पवुत्तिविरोहादो ।

§ ३८५ तदो समयं पडि हेट्ठिमोवरिमासंखेज्जदिभागकिट्टीओ असंखेज्जगुणाए सेढीए मज्झिमकिट्टीआयारेण परिणामिय विणासेदि त्ति सिद्धं । ण च एवंविहो अत्थो सुत्ते णत्थि त्ति आसंकणिज्जं, 'किट्टीणं चरिमसमयअसंखेज्जे भागे णासेदि' त्ति उवरि

में विशेषहीन कृष्टियोंका वेदन करता है । इस प्रकार अन्तिम समयतक विशेषहीनक्रमसे कृष्टियोंका वेदन करता है ऐसा कहना चाहिये ।

§ ३८४ अथवा प्रथम समयमें स्तोक कृष्टियोंका वेदन करता है, क्योंकि प्रथम समयमें अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागविषयक कृष्टियाँ ही विनाश होती हुई प्रधानरूपसे विवक्षित हैं । दूसरे समयमें असंख्यातगुणी कृष्टियोंका वेदन करता है, क्योंकि प्रथम समयमें विनाशको प्राप्त हुई कृष्टियोंसे दूसरे समयमें अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागसे सम्बन्ध रखनेवाली असंख्यातगुणी कृष्टियोंका विनाश करता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालतक असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे यह जीव कृष्टिगत योगका वेदन करता है, क्योंकि प्रत्येक समयमें मध्यम कृष्टिरूपसे परिणमन करनेवाली कृष्टियोंकी असंख्यातगुणरूपसे प्रवृत्ति देखी जाती है ।

शंका—प्रथमादि समयोंमें क्रमसे वेदी गई कृष्टियोंके जीवप्रदेश द्वितीयादि समयोंमें अपरि-स्पन्दस्वरूपसे अयोगी होकर स्थित रहते हैं, ऐसा क्यों नहीं मानते ?

समाधान—नहीं, क्योंकि एक जीवमें अक्रमसे सयोगरूप और अयोगरूप पर्यायोंकी प्रवृत्ति होनेमें विरोध आता है ।

§ ३८५ तदनन्तर प्रतिसमय अधस्तन और उपरिम असंख्यातवें भागप्रमाण कृष्टियोंको असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे मध्यम कृष्टियोंके आकारसे परिणमाकर विनाश करता है, यह सिद्ध हुआ । इस प्रकारका अर्थ सूत्रमें नहीं है ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि 'अन्तिम समयमें कृष्टियोंके असंख्यात बहुभागका नाश करता है' इस प्रकार आगे कहे जानेवाले सूत्रमें स्पष्टरूपसे

१. प्रेसकापीप्रतौ जोगो इति पाठः ।

भण्णमाणसुत्ते परिप्फुडमेवेदस्सत्थविसेसस्स पडिबद्धत्तदंसणादो । एवमंतोमुहुत्तमेत्तकालं किट्टीगदजोगमणुहवंतस्स सुहुमयरकायजोगे वट्टमाणस्स सजोगिकेवलिणो तदवत्थाए झाणपरिणामो केरिसो होदि त्ति आसंकाए णिरारेगीकरणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो—

* सुहुमकिरियापडिवादिझाणं झायदि ।

§ ३८६ सूक्ष्मक्रियायोगो यस्मिंस्तत्सूक्ष्मक्रियं, न प्रतिपततीत्येवं शीलमप्रतिपाति, सूक्ष्मतरकाययोगावष्टम्भविजृम्भितत्वात् सूक्ष्मक्रियमधः प्रतिपाताभावादप्रतिपाति तृतीयं शुक्लध्यानं तदवस्थायां ध्यायतीत्युक्तं भवति । किमस्य ध्यानस्य फलमिति चेत् ? योगास्रवस्यात्यन्तनिरोधनं सूक्ष्मतरकायपरिस्पन्दस्याप्यत्र निरन्वयनिरोधदर्शनात् । तथोक्तं—

तृतीयं काययोगस्य सर्वज्ञस्याद्भुतास्थितेः ।
योगक्रियानिरोधार्थं शुक्लध्यानं प्रकीर्तितम् ॥१॥
इति ।

सकलपदार्थविषयध्रुवोपयोगपरिणते केवलिन्येकाग्रचिंतानिरोधासंभवध्यानानुपपत्तिरित्यभीष्टत्वात् इति चेत् ? सत्यमेतत्, सकलविदः साक्षात्कृताशेषपदार्थस्याक्रमोपयोगपरिणतस्यैकाग्रचिन्तानिरोधलक्षणध्यानानुपपत्तिरित्यभीष्टत्वात् । किं तु योगनिरोधमात्रकर्मास्रवनिरोधलक्षणध्यानफलप्रवृत्तिमभिसमीक्ष्य तथोपचारप्रकल्पनमिति न

इस अर्थ विशेषका सम्बन्ध देखा जाता है । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालतक कृष्टिगत योगका अनुभव करनेवाले अतिसूक्ष्म काययोगमें विद्यमान सयोगिकेवलीके उस अवस्थामें ध्यान परिणाम कैसा होता है ? ऐसी आशंका होनेपर निःशंक करनेकेलिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

* तथा सूक्ष्म क्रियारूप अप्रतिपाती ध्यानको ध्याता है ।

§ ३८६ जिसमें सूक्ष्म क्रियारूप योग हो वह सूक्ष्मक्रियारूप तथा नीचे प्रतिपात नहीं होनेसे अप्रतिपाति; ऐसे तीसरे शुक्लध्यानको उस अवस्थामें ध्याता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—इस ध्यानका क्या फल है ?

समाधान—योगके आस्रवका अत्यन्त निरोध करना इसका फल है, क्योंकि सूक्ष्मतर कायपरिस्पन्दका भी यहाँपर अन्वयके बिना निरोध देखा जाता है । कहा भी है—

काययोगी और अद्भुत स्थितिवाले सर्वज्ञके योगक्रियाका निरोध करनेकेलिये तीसरा शुक्लध्यान कहा गया है ॥ १ ॥

शंका—समस्त पदार्थोंको विषय करनेवाले ध्रुव उपयोगसे परिणत केवली जिनमें एकाग्र चिन्तानिरोधका होना असम्भव है इसलिये इष्ट होनेसे ध्यानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती ।

किंचिद् व्याहन्यते, चिन्ताहेतुत्वेन भूतपूर्वत्वाच्चिन्ता योगः, तस्यैकाग्रत्वेन निरोध-मेकाग्रचिन्तानिरोध इति व्याख्यानसमाश्रयणाद्वा न कश्चिद्दोषः। तथा चोक्तं—

अंतोमुहुत्तमद्धं चिंतावत्थाणमेयवत्थुम्मि।
छदुमत्थाणं ज्झाणं जोगणिरोधो जिणाणं तु ॥१॥

§ ३८७ तस्मात्सूक्तं सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिसंज्ञितं परमशुक्लध्यानमेवं लक्षणमस्मि-न्नवस्थांतरे योगनिरोधकेवली कर्मादानसामर्थ्यनिरन्वयनिरोधार्थं ध्यायतीति। एवं ध्यायतोऽस्य परमर्षेः परमशुक्लध्यानाग्निना प्रतिसमयमसंख्यातगुणश्रेण्या कर्मनिर्जरा-मनुपालयतः स्थित्यनुभागकांडकानि च यथाक्रमं निपातयतो योगशक्तिः क्रमेण हीयमाना सयोगकेवलिगुणस्थानचरिमसमये निर्मूलतः प्रणश्यतीत्येतत्प्रतिपादयितुकामः सूत्रमुत्तरं पठति—

* किट्टीणं चरिमसमये असंखेज्जे[1] भागे णासेदि।

समाधान—यह कहना सत्य है, क्योंकि जिन्होंने समस्त पदार्थोंका साक्षात्कार किया है और जो क्रमरहित उपयोगसे परिणत हैं ऐसे सर्वज्ञदेवके एकाग्रचिन्तानिरोधलक्षण ध्यान नहीं बन सकता, क्योंकि यह अभीष्ट है। किन्तु योगके निरोधमात्रसे होनेवाले कर्मास्रवके निरोधलक्षण ध्यानफलकी प्रवृत्तिको देखकर उस प्रकारके उपचारकी कल्पना की है, इसलिये कुछ भी हानि नहीं है। अथवा चिन्ताका हेतु होनेसे भूतपूर्वपनेकी अपेक्षा चिन्ताका नाम योग है, उसके एकाग्रपनेसे निरोध करना एकाग्रचिन्तानिरोध है। इस प्रकारके व्याख्यानका आश्रय करनेसे यहाँ ध्यान स्वीकार किया है, इसलिये कोई दोष नहीं है। उस प्रकार कहा भी है—

* छद्मस्थोंका एक वस्तुमें अन्तर्मुहूर्त कालतक चिन्ताका अवस्थान होना ध्यान है, परन्तु केवली जिनोंका योगका निरोध करना ही ध्यान है।

§ ३८७ इसलिये ठीक कहा है कि योगका निरोध करनेवाले केवली भगवान् कर्मके ग्रहणकी सामर्थ्यका निरन्वय निरोध करनेकेलिये सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती संज्ञक परम शुक्लध्यान ऐसे लक्षण-वाले ध्यानको ध्याते हैं। इस प्रकार ध्यान करनेवाले, परम शुक्लध्यानरूप अग्निकेद्वारा प्रति-समय असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे कर्मनिर्जराका पालन करनेवाले तथा स्थितिकाण्डकका और अनुभागकाण्डकका क्रमसे पतन करनेवाले इस परम ऋषिके योगशक्ति क्रमसे हीन होती हुई सयोगकेवली गुणस्थानके अन्तिम समयमें पूरी तरहसे नष्ट होती है। इस प्रकार इस बातके प्रतिपादन करनेको इच्छासे आगेके सूत्रको कहते हैं—

* कृष्टिवेदक सयोगिकेवली जीव कृष्टियोंके अन्तिम समयमें असंख्यात बहुभागका नाश करता है।

---

१. प्रेसकापीप्रतौ असंखेज्जा इति पाठः।

§ २८८ किट्टीवेदगपढमसमयप्पहुडि समए समए किट्टीणमसंखेज्जदिमभागमसंखेज्जगुणाए सेढीए खवेदूण णासेमाणो सजोगिगुणट्ठाणचरिमसमए किट्टीणमसंखेज्जे भागे विणासेदि, तत्तो परं जोगपवुत्तीए अच्चंतुच्छेददंसणादो त्ति एसो एत्थ सुत्तत्थसमुच्चओ ।

§ २८९ संपहि णामागोदवेदणीयाणं चरिमट्ठिदिखंडयमागाएंतो जेत्तियसजोगिअद्धा सेसमजोगिकालो च सव्वो, एत्तियमेत्तट्ठिदीओ मोत्तूण गुणसेढिसीसएण सह उवरिमसव्वट्ठिदीओ आगाएदि । ताधे चेव पदेसग्गमोकड्डियूण उदये थोवं देदि । से काले असंखेज्जगुणं, एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए णिक्खिवमाणो गच्छइ जाव ट्ठिदिखंडयजहण्णट्ठिदीदो हेट्ठिमाणंतरट्ठिदि त्ति ।

§ ३९० संपहि एदं चेव गुणसेढीसीसयं जादं । इमादो गुणसेढीसीसयादो ट्ठिदिखंडयस्य जा जहण्णट्ठिदी तिस्से असंखेज्जगुणं देदि । तत्तो उवरिमाणंतरट्ठिदिप्पहुडि विसेसहीणं णिक्खिवमाणो गच्छदि जाव चिराण गुणसेढिसीसयं ति । पुणो चिराणादो गुणसेढिसीसयादो उवरिमाणंतरट्ठिदीए असंखेज्जगुणहीणं देदि । तदो उवरि सव्वत्थ विसेसहीणं संछुहदि । एत्तो प्पहुडि गलिदसेसगुणसेढी च जायदे । एवं णेदव्वं जाव चरिमट्ठिदिखंडयदुचरिमफालि त्ति ।

---

§ ३८८ कृष्टिवेदकके प्रथम समयसे लेकर समय-समयमें कृष्टियोंके असंख्यातवें भागका असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे क्षय करके नाश करता हुआ सयोगिकेवली गुणस्थानके अन्तिम समयमें कृष्टियोंके असंख्यात बहुभागका नाश करता है, क्योंकि उसके बाद योगप्रवृत्तिका अत्यन्त उच्छेद देखा जाता है इस प्रकार यह यहाँ सूत्रका समुच्चयरूप अर्थ है ।

§ ३८९ अब नाम, गोत्र और वेदनीयकर्मोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकको ग्रहण करता हुआ जितना सयोगीकाल शेष है और सब अयोगीकाल है तत्प्रमाण स्थितियोंको छोड़कर गुणश्रेणिशीर्षकके साथ उपरिम सब स्थितियोंको ग्रहण करता है । उसी समय प्रदेशपुंजका अपकर्षण करके उदयमें अल्प प्रदेशपुंजको देता है, अनन्तर समयमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको देता है । इस प्रकार असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे निक्षेप करता हुआ स्थितिकाण्डकको जघन्य स्थितिसे अधस्तन अनन्तर स्थितिके प्राप्त होने तक जाता है ।

§ ३९० अब यही गुणश्रेणिशीर्ष हो गया । इस गुणश्रेणिशीर्षसे स्थितिकाण्डककी जो जघन्य स्थिति है उसमें असंख्यातगुणा देता है । उससे उपरिम अनन्तर स्थितिसे लेकर विशेष हीन प्रदेशपुंजका निक्षेप करता हुआ पुरानी गुणश्रेणिशीर्ष तक निक्षेप करता जाता है । पुनः पुराने गुणशीर्षसे लेकर उपरिम अनन्तर स्थितिमें असंख्यात गुणहीन प्रदेशपुंज देता है । उससे आगे सर्वत्र विशेषहीन प्रदेशपुंज निक्षेप करता है । यहाँसे लेकर गलितशेष गुणश्रेणि हो जाती है । इस प्रकार अन्तिम स्थितिकाण्डकको द्विचरमफालि हो जाना चाहिये ।

§ ३९१ पुणो चरिमट्ठिदिखंडयचरिमफालीदव्वं घेत्तूण उदये पदेसग्गं थोवं देदि। से काले असंखेज्जगुणं देदि। एवमसंखेज्जगुणाए सेढीए णिक्खिवमाणो गच्छदि जाव अजोगिचरिमसमओ त्ति। संपहि एदम्मि चेव समये जोगणिरोहकिरियाए सजोगिअद्धाए च परिसमत्ती। एत्तो पाए णत्थि गुणसेढी ठिदि-अणुभागघादो वा। केवलमधट्ठिदीए कम्मणिज्जरमसंखेज्जगुणाए सेढीए अणुपालेदि त्ति घेत्तव्वं। एत्थेव सादावेदणीयस्स पयडिबंधवोच्छेदो, ऊणचालीसपयडीणमुदीरणाओ वोच्छेदो च दट्ठव्वो। ताधे चेव आउअसमाणि णामागोदवेदणीयाणि ट्ठिदिसंतकम्मेण जादाणि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तारंभो--

* जोगम्हि णिरुद्धम्हि आउअसमाणि कम्माणि होंति।

§ ३९२ केवलिसमुग्घादकिरियाए जोगणिरोहकालब्भंतरट्ठिदिअणुभागघादेहि य घादिदसेसाणि णामागोदवेदणीयाणि एण्हिमाउगसरिसाणि होदूण अजोगिअद्धामेत्तट्ठिदिसंतकम्माणि जादाणि त्ति वुत्तं होइ। एवमेत्तिएण परूवणापबंधेण सजोगिगुणट्ठाणमणुपालिय तदद्धाए परिसमत्ताए जहावसरपत्तमजोगिगुणट्ठाणं पडिवज्जदि त्ति पदुप्पाएमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ।

* तदो अंतोमुहुत्तं सेलेसिं य पडिवज्जदि।

---

§ ३९१ पुनः अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके द्रव्यको ग्रहण करके उदयमें स्तोक प्रदेशपुंजको देता है। तदनन्तर समयमें असंख्यातगुणे प्रदेशपुंजको देता है। इस प्रकार असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे निक्षेप करता हुआ अयोगि केवलीके अन्तिम समय तक जाता है। अब इसी समयमें योगनिरोधक्रिया और सयोगिकेवलीके कालकी समाप्ति होती है। इससे आगे गुणश्रेणि और स्थितिघात तथा अनुभागघात नहीं है। केवल अधःस्थितिकेद्वारा असंख्यातगुणी श्रेणिरूपसे कर्मनिर्जराका पालन करता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिये। यहीपर सातवेदनीयके प्रकृतिबन्धकी व्युच्छित्ति होती है तथा उनतालीस प्रकृतियोंकी उदीरणाव्युच्छित्ति जाननी चाहिये। उसी समय आयुके समान नाम, गोत्र और वेदनीयकर्म स्थितिसत्कर्म रूपसे हो जाते हैं, इस बातका ज्ञान करानेकेलिये आगेके सूत्रका आरम्भ करते हैं—

* योगका निरोध होनेपर [स्थितिकी अपेक्षा] आयुके समान कर्म होते हैं।

§ ३९२ केवलिसमुद्घातक्रियाद्वारा योगनिरोधरूप कालके भीतर स्थितिघात और अनुभागघातकेद्वारा घात करनेसे शेष रहे नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म इस समय आयुकर्मके समान होकर अयोगिकेवलीके कालके बराबर उनका स्थितिसत्कर्म हो जाता है, यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार इतने प्ररूपणाप्रबन्धद्वारा सयोगिकेवली गुणस्थानका पालन करके उस कालके समाप्त होनेपर यथावसर प्राप्त अयोगिकेवली गुणस्थानको प्राप्त होता है, इस बातका प्रतिपादन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* तदनन्तर अयोगकेवली जिन अन्तर्मुहूर्त काल तक शैलेश्य पदको प्राप्त करते हैं।

§ ३९३ ततोऽन्तर्मुहूर्तमयोगिकेवली भूत्वा शैलेश्यमेव भगवानलेश्यभावेन प्रतिपद्यत इति सूत्रार्थः। किं पुनरिदं शैलेश्यं नाम[1]? शीलानामीशः शीलेशः, तस्य भावः शैलेश्यं, सकलगुणशीलानामेकाधिपत्यप्रतिलम्भनमित्यर्थः। यद्येवं नारम्भणीयमिदं विशेषणं; भगवत्यर्हत्परमेष्ठिनि सयोगकेवल्यवस्थायामेव सकलगुणशीलाधिपत्यस्याविकलस्वरूपेण परिप्राप्तात्मलाभत्वात्, अन्यथा तस्यापरिपूर्णगुणशीलत्वेऽस्मदादिवत्परमेष्ठितानुपपत्तेः इति? सत्यमेतत् सयोगकेवलिन्यपि परिप्राप्तात्मस्वरूपाशेषगुणनिधाने निष्कलंके परमोपेक्षालक्षणयथाख्यातविहारशुद्धिसंयमस्य परमकाष्ठामधितिष्ठितरति-सकलगुणशीलभारस्याविकलस्वरूपापेक्षणाविर्भाव इत्यभ्युपगमात्। किंतु तत्र योगास्रवमात्रसत्त्वापेक्षया सकलसंवरो निःशेषकर्मनिर्जरैकफलो न समुत्पन्नः। स पुनरयोगिकेवलिनि निरुद्धनिःशेषास्रवद्वारे निष्प्रतिपक्षस्वरूपेण लब्धात्मलाभः परिस्फुरतीत्यनेनाभिप्रायेण शैलेश्यमत्राभ्यनुज्ञातमिति न कश्चिद्दोषावसरः। अत्रायोगिकेवलिगुणस्थानस्वरूपनिरूपणो गाथासूत्रम्—

---

§ ३९३ उसके बाद अन्तर्मुहूर्त काल तक अयोगिकेवली भगवान् होकर अलेश्यभावसे शैलेश पदको प्राप्त होते हैं यह इस सूत्रका अर्थ है।

शंका—यह शैलेशपद क्या है?

समाधान—शीलोंके ईशको शीलेश कहते हैं। उसका भाव शैलेश्य है। 'समस्त गुण और शीलोंके एकाधिपतिपनेकी प्राप्ति' यह इसका भाव है।

शंका—यदि ऐसा है तो इस विशेषणका आरम्भ नहीं करना चाहिये, क्योंकि भगवान् अर्हन्त परमेष्ठीके सयोगकेवली अवस्थामें ही सकल गुणों और शीलोंके अधिपतिपनेको अविकलरूपसे प्राप्त करके आत्मलाभ किया है, अन्यथा उनके अधूरे गुण और शीलपनेके होनेपर उनमें हम लोगोंके समान परमेष्ठिपना नहीं बन सकता है?

समाधान—यह कहना सत्य है, क्योंकि आत्मस्वरूप समस्त गुणोंके समूहको प्राप्त करनेवाले और निष्कलंक ऐसे सयोगिकेवली भगवान् हैं, अतः परम उपेक्षा लक्षण यथाख्यात विहारशुद्धि संयमकी पराकाष्ठापर आरूढ़ हुए तथा समस्त गुणों और शीलोंको वहन करनेवाले उनके पूरी तरहसे स्वरूपके ईक्षण-अवलोकनका आविर्भाव हुआ है ऐसा स्वीकार किया जाता है। किन्तु उनमें योगके निमित्तसे होनेवाले आस्रवमात्रके सत्त्वकी अपेक्षा पूरा संवर और समस्त कर्मोंको निर्जरारूप फल नहीं उत्पन्न हुआ है। परन्तु अयोगिकेवली भगवान्में पूरी तरहसे आस्रवद्वारके रुक जानेपर प्रतिपक्षके बिना स्वरूपसे आत्मलाभकी प्राप्ति स्फुरायमान हो जाती है। इस प्रकार इस अभिप्रायसे उनमें (अयोगिकेवली भगवान्में) शीलेशपना स्वीकार किया गया है, इसलिये कोई दोषका अवसर नहीं है। यहाँ अयोगिकेवली गुणस्थानके स्वरूपका निरूपण करते हुए गाथासूत्र कहते हैं—

---

१. आ० प्रतौ शैलेस्य नाम इति पाठः।

सेलेसिं संपत्तो णिरुद्धणिस्सेस आसवो जीवो ।
कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगो केवली होइ ॥ १ ॥

§ ३९४ एवमन्तर्मुहूर्तमलेश्यभावेन शैलेश्यमनुपालयति भगवत्ययोगि-केवलिनि कीदृशो ध्यानपरिणाम इत्यत आह–

*** समुच्छिण्णकिरियमणियट्टिसुक्कज्झाणं झायदि ।**

§ ३९५ क्रिया नाम योगः । समुच्छिन्ना क्रिया यस्मिंस्तत्समुच्छिन्नक्रियं, न निवर्तत इत्येवं शीलमनिवर्ति, समुच्छिन्नक्रियं च तदनिवर्ति च समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति समुच्छिन्नसर्ववाङ्मनस्काययोगव्यापारत्वादप्रतिपातित्वाच्च समुच्छिन्नक्रियस्यायमन्त्यं शुक्लध्यानमलेश्याबलाधानं कायत्रयबन्धनिर्मोचनैकफलमनुसंधाय स भगवान् ध्यायतीत्युक्तं भवति । पूर्ववदत्रापि ध्यानोपचारः प्रवर्तनीयः, परमार्थवृत्त्या एकाग्रचिन्तानिरोधलक्षणस्य ध्यानपरिणामस्य ध्रुवोपयोगपरिणते केवलिन्यनुपपत्तेः । ततो निरुद्धाशेषास्रवद्वारस्य केवलिनः स्वात्मन्यवस्थानमेवाशेषकर्मनिर्जरणैकफलमिह ध्यानमिति प्रत्येतव्यम् । उक्तं च—

जो शैलेशपनेको प्राप्त हैं, जिन्होंने समस्त आश्रवका निरोध कर लिया है ऐसा जीव कर्मरजसे मुक्त होकर अयोगिकेवली होता है ॥ १ ॥

§ ३९४ इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त कालतक अलेश्यभावसे शैलेशपनेको पालन करते हुए भगवान् अयोगिकेवलीमें कैसा ध्यान परिणाम होता है, इसलिए आगे कहते हैं—

*** अयोगिकेवलि भगवान् समुच्छिन्न क्रिया (योग) रूप अनिवृत्ति (अप्रतिपाती) शुक्लध्यानको ध्याते हैं ।**

§ ३९५ क्रिया नाम योगका है जिस ध्यानमें क्रिया (योग) समुच्छिन्न हो गई वह समुच्छिन्नक्रियारूप ध्यान है तथा जो प्राप्त होनेपर निवर्तन होनेरूप स्वभाववाला नहीं है वह अनिवर्ति ध्यान है । जो समुच्छिन्नक्रियारूप होकर अनिवर्ति ध्यान है वह समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति ध्यान कहलाता है । समस्त वचनयोग, मनोयोग और काययोगके व्यापारके नामशेष हो जानेसे तथा अप्रतिपाती होनेसे समुच्छिन्नक्रियापनेके साथ तथा लेश्याके अभावरूप बलाधानसे युक्त इस अन्तिम शुक्लध्यानको कायत्रयनिमित्तकबन्ध निर्मोचनरूप एक फलका अनुसन्धान करके वे भगवान् ध्याते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । पहलेके समान यहाँपर भी ध्यानका उपचार प्रवृत्त करना चाहिये, क्योंकि परमार्थवृत्तिसे एकाग्रचिन्तानिरोधलक्षण ध्यानपरिणाम ध्रुवोपयोगसे परिणत केवली भगवानमें नहीं बन सकता । इसलिये समस्त आस्रवद्वार जिनका निरुद्ध हो गया है, ऐसे केवली भगवान्‌के अशेष कर्मोंकी निर्जरारूप एक फलवाला अपनी आत्मामें अवस्थान ही यहाँ, ध्यान है ऐसा निश्चय करना चाहिये । कहा भी है—

चतुर्थं ध्यायद्योगस्य शेषकर्मच्छिदुत्तमम् ।
फलमस्याद्भुतं धाम परतीर्थ्यदुरासदम् ॥ १ ॥ इति ।

§ ३९६ स पुनरयोगिकेवली तथाविधेन ध्यानपरिणामातिशयेन निर्दग्धसर्वमलकलंकबन्धनो निरस्तकिट्टधातुपाषाणजात्यकनकवल्लब्धात्मस्वभावस्तथागतिपरिणामस्वाभाव्यात् प्रदीपशिखावदीहैव सिद्ध्यन् सिद्ध एकसमयेनोर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तादित्येतत्प्रतिपादयितुकामः सूत्रमुत्तरं पठति—

* सेलेसिं अद्धाए खीणाए सव्वकम्मविप्पमुक्को एगसमएण सिद्धिं गच्छइ ।

§ ३९७ अयोगिकेवलिगुणस्थानकालः शैलेश्यद्धा नाम । सा पुनः पंचह्रस्वाक्षरोच्चारणकालावच्छिन्नपरिमाणेत्यागमविदां निश्चयः । तस्यां यथाक्रममधःस्थितिगलनेन क्षीणायां सर्वमलकलंकविप्रमुक्तः स्वात्मोपलब्धिलक्षणां सिद्धिं सकलपुरुषार्थसिद्धेः परमकाष्ठानिष्ठामेकसमयेनैवोपगच्छति, कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षानन्तरमेव मोक्षपर्यायाविर्भावोपपत्तेः । उक्तं च—

अयोगिकेवली जिनके शेष कर्मोंका छेद करनेवाला व्युपरतक्रियानिवर्ति नामका चौथा उत्तम शुक्लध्यान होता है जो मिथ्यातीर्थवालोंको दुरासद है, अद्भुत मोक्ष धामकी प्राप्ति इसका फल है ॥ १ ॥

§ ३९६ वह अयोगिकेवली जिन उस प्रकारके ध्यानपरिणामके अतिशयसे समस्त मल और कलंकबन्धनका नाशकर किट्टरूप धातु और पाषाणके निकल जानेपर शुद्ध सोनेके समान आत्मस्वरूपको प्राप्तकर उस प्रकारकी गतिपरिणामरूप स्वभावके कारण जिस प्रकार प्रदीपकी शिखा अन्य पर्यायरूप परिणम जाती है उसी प्रकार यह अयोगिकेवली जिन यहीं सिद्ध होता हुआ सिद्ध स्वरूप वह एक समय द्वारा लोकके अन्ततक ऊपर जाता है । इस प्रकार इस बातका प्रतिपादन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* शैलेश्य पदके क्षीण हो जानेपर समस्त द्रव्य-भाव कर्मोंसे मुक्त होता हुआ यह जीव एक समयद्वारा सिद्धिको प्राप्त होता है ।

§ ३९७ अयोगिकेवली गुणस्थानका काल शैलेशपदका काल है । परन्तु वह अ, इ, उ, ऋ, ऌ इन पाँच ह्रस्व अक्षरोंके उच्चारणमें जितना काल लगता है उतना होता है, ऐसा आगमके जानकारोंका निश्चय है । इस अवस्थामें यथाक्रम अधःस्थितिके गलनेसे शेष कर्मोंके क्षीण होनेपर समस्त मल और कलंकसे मुक्त होता हुआ सकल पुरुषार्थकी सिद्धि होनेसे परमकाष्ठाको प्राप्त अपने आत्माको उपलब्धिलक्षण सिद्धिको एक समयके द्वारा ही प्राप्त कर लेता है अर्थात् सिद्ध पदको प्राप्त एक समयमें लोकाग्रको प्राप्त कर लेता है, क्योंकि समस्त कर्मोंके क्षय होनेके अनन्तर ही मोक्षपर्यायकी उत्पत्ति बनती है । कहा भी है—

कर्मबन्धनबद्धस्य सद्भूतस्यान्तरात्मनः ।
कृत्स्नकर्मविनिर्मोक्षो मोक्ष इत्यभिधीयते ॥ १ ॥

यथा बीजास्तित्वे यवतिलमसूरप्रभृतयः,
प्ररोहंति क्षिप्त्वा भुवि बहुविधप्रत्ययवशात् ।
तनोर्बीजं कर्म क्षयमुपगते कर्मणि तथा,
प्रसूतिर्देहानामसति भवबीजे न भवति ॥ २ ॥ इति ।

§ ३९८ अत्रायोगिकेवली द्विचरिमसमये अनुदयवेदनीय-देवगतिपुरस्सराः द्वासप्ततिः प्रकृतीः क्षपयति, चरिमसमये च सोदयवेदनीयमनुष्यायुर्मनुष्यगतिकास्त्रयोदश प्रकृतीः क्षपयतीति प्रतिपत्तव्यम् । तासां च प्रकृतीनां नामनिर्देशस्तु परिबोधः । ततः सूक्तं—कृत्स्नकर्मक्षयादविकलात्मस्वरूपोपलब्धिरनन्तज्ञानादीनां परमकाष्ठा मोक्ष इति ।

§ ३९९ एतेन प्रदीपनिर्वाणवत्स्कन्धसन्तानोच्छेदादभावमात्रं निर्वाणं परिकल्पयन् वादी प्रतिक्षिप्तः, सर्वपुरुषार्थसिद्धेः परमकाष्ठालक्षणस्य तस्याभावमात्रत्वविरोधात् । अभावमात्रत्वे च प्रेक्षापूर्वकारिणां तदर्थप्रयासवैयर्थ्यात् । न हि कश्चित्सचेतनः पुरुषः आत्माभावाय प्रतीयते न इत्यसमञ्जसोऽयं मोक्षप्रक्रियावतारः ।

कर्मबन्धनसे बद्ध विद्यमान अन्तरात्माके समस्त कर्मोंसे मुक्त हो जानेका नाम मोक्ष है ऐसा कहा जाता है ॥ १ ॥

जैसे बीजके अस्तित्वमें जो, तिल और मसूर आदि पृथिवीमें निक्षिप्त कर अनेक कारणोंके वशसे अंकुरोंको उत्पन्न करते हैं। उसी प्रकार संसारमें शरीरका मूल कारण कर्म है उस कर्मके क्षयको प्राप्त होनेपर शरीरधारियोंके भवबीजके नहीं रहनेपर नवबीजकी उत्पत्ति नहीं होती है ॥२॥

§ ३९८ यहाँपर अयोगिकेवली द्विचरम समयमें अनुदयरूप वेदनीय और देवगति आदि बहत्तर प्रकृतियोंकी क्षपणा करता है और अन्तिम समयमें उदय सहित वेदनीय, मनुष्यायु और मनुष्यगति आदि तेरह प्रकृतियोंकी क्षपणा करता है ऐसा जानना चाहिये। तथा उन प्रकृतियोंका नाम निर्देश सुबोध है। इसलिये शास्त्रमें ठीक ही कहा गया है कि समस्त कर्मोंका क्षय होनेसे शरीररहित अनन्त ज्ञानादिकी परम काष्ठारूप आत्मस्वरूपकी प्राप्ति मोक्ष है।

§ ३९९ इस प्रकार इस कथनसे प्रदीपके निर्वाणके समान स्कन्धसन्तानका उच्छेद हो जाने से आत्माके अभावमात्रका नाम निर्वाण है ऐसी कल्पना करनेवाला वादी निराकृत हो गया, क्योंकि समस्त पुरुषार्थकी सिद्धि होनेसे परम काष्ठालक्षण मोक्षको अभाव माननेमें विरोध आता है तथा मोक्षको अभावमात्र माननेपर प्रेक्षापूर्वक कार्य करनेवालोंकेलिये मोक्षकेलिए पुरुषार्थ करना व्यर्थ हो जाता है और कोई भी सचेतन पुरुष आत्माका अभाव करनेकेलिये प्रतीत नहीं होता है। इस प्रकार मोक्षका अभाव माननेपर मोक्षप्रक्रियाका अवतार करना असमंजस नहीं ठहरेगा।

§ ४०० बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराणां नवानां आत्मगुणानां मूलोद्वर्तनेनोच्छित्तौ सत्यां गुणैर्वियुक्तस्यात्मनः स्वात्मन्यवस्थानं मोक्षो निःश्रेयसमित्यपरे परिकल्पयन्ति, तदप्यनेनैव प्रतिविहितं द्रष्टव्यम्, तत्रापि पुरुषार्थविभ्रंशनं मुक्त्वा पुरुषार्थसिद्धेरत्यन्तमनुपलब्धेर्विशेषलक्षणशून्यस्यावस्तुत्वात् खरविषाणवन्मुक्तात्मनामभावप्रसंगाच्च न समीचीनमेतद्दर्शनम्—

§ ४०१ उपरतकार्यकारणसंबंधस्यात्मनः सुषुप्तपुरुषवदव्यक्तचैतन्यस्वरूपेणावस्थानमपरेषां निर्वाणम्। तदप्यसत्, तत्रापि पूर्वोक्तदोषानुषंगस्यापरिहरणीयत्वादित्यलमसद्दर्शनोपन्यासेन। ततः स्वात्मोपलब्धिरेव सिद्धिरिति सिद्धो नः सिद्धान्तः परसिद्धान्तव्याघातश्च।

§ ४०२ तदेवमनादिकर्मसम्बन्धपरतंत्रः संसारचक्रे परिभ्रमन्नात्मा मोहोदयोत्थापितं रागद्वेषपर्यायं प्रेयो-द्वेषसंज्ञितं[1] मुहुर्मुहुरास्कन्दंस्तत्पूर्विकां प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशप्रविभक्तां चतुष्टयीं[2] सदवस्थां मोहनीयस्येतरकर्मणां च मूलोत्तरप्रकृतिभेदभिन्नां सातत्येन बिभ्राणस्तद्बंधसंक्रमोदयोदीरणापरिणामांश्च सततमात्मसात्कुर्वन् क्रोधमान-

---

§ ४०० बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार इन नौ आत्माके गुणोंका मूलसे उद्वर्तन होकर उच्छेद हो जानेपर गुणों से रहित आत्माका अपनी आत्मामें अवस्थान होनेका नाम मोक्ष है, निश्रेयस् उसीको कहते हैं। इस प्रकार दूसरे मतवाले (वैशेषिक) कल्पना करते हैं सो उनकी उस कल्पनाका पूर्वोक्त कथनसे ही निराकरण जानना चाहिये, क्योंकि उक्त कथनमें भी भ्रष्ट पुरुषार्थको छोड़कर पुरुषार्थकी सिद्धिकी किसी भी प्रकारसे उपलब्धि नहीं होती, क्योंकि विशेष लक्षणसे शून्यको वस्तुपना नहीं प्राप्त होता तथा गधेके सींगोंके समान मुक्तात्माओंके अभावका प्रसंग आता है, इसलिये यह दर्शन समीचीन नहीं है।

§ ४०१ जिस आत्माका कार्य-कारण सम्बन्ध उपरत हो गया है ऐसे आत्माका सोये हुए पुरुषके समान चेतनाके अव्यक्त स्वरूपसे अवस्थित रहना मोक्ष है ऐसा अन्य मतवाले मानते हैं, परन्तु उन मतवालोंका ऐसा कहना भी असत् है, क्योंकि इस मान्यतामें भी अपरिहार्यरूपसे पूर्वोक्त दोष प्राप्त होते हैं, इसलिये असमीचीन दर्शनोंके कथनको पूर्वमें जितनी चर्चा की है वह पर्याप्त है। इनके कथनकी अब और आवश्यकता नहीं। अतएव अपने आत्माकी उपलब्धिका नाम ही सिद्धि (मोक्ष) है, इसलिये उक्त कथनसे हमारा सिद्धान्त सिद्ध हुआ और दूसरोंकेद्वारा माने गये सिद्धान्तोंका व्याघात हो गया।

§ ४०२ इस कारण इस प्रकार अनादि कर्मसम्बन्धसे परतन्त्र हुआ तथा संसारचक्रमें परिभ्रमण करता हुआ यह आत्मा मोहके उदयसे उपस्थित हुए प्रेम और द्वेष संज्ञावाले राग और द्वेष रूप पर्यायको बार-बार प्राप्त होता हुआ तत्पूर्वक मोहनीय और इतर कर्मोंकी मूल और उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे नानारूप स्थिति, अनुभाग और प्रदेशोंकी अपेक्षा विभक्त चार प्रकार की सत्तारूप-

---

1. मु० प्रती प्रेय-द्वेषसंज्ञितं इति पाठः।

2. प्रेसकापीप्रतौ चतुष्टयी इति पाठः।

मायालोभकषायोपयोगांश्च पौनःपुन्येन कालभावोपयोगवर्गणाभिः परिणममाणः लता-दार्वस्थिशैलसमानि च कर्मानुभवस्थानानि मन्दमध्यमोत्कृष्टपरिणामवशादसकृत्प्रवर्तयन् बहुविधपरिवर्तनैरनन्तकृत्वः परिभ्रम्य ततोऽन्तर्लीनभव्यत्वशक्तिसहायः कथंचित्कर्मबंधनेषु द्रव्यादिबाह्यकारणचतुष्टयापेक्षया शिथिलतामापद्यमानेषु संज्ञिपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकत्वादि-लक्षणां प्रायोग्यलब्धिमात्मसात्कुर्वाणः देशनालब्धिं क्षयोपशमविशुद्धिकरणलब्धीश्च[1] यथाक्रममासाद्य ततो दर्शनमोहोपशमप्रतिलम्भान्निसर्गाधिगमयोरन्यतरजं तत्त्वार्थ-श्रद्धानात्मकं शंकाद्यतीचारविप्रमुक्तं प्रशमसंवेगास्तिक्याभिव्यक्तलक्षणं विशुद्धसम्यग्द-र्शनपरिणाममुत्पाद्य तत्समकालमेव विशुद्धं च ज्ञानमधिगम्य समुपलब्धबोधिलाभो निक्षेप-नय-प्रमाण-निर्देश-सत्संख्यादिभिरभ्युपायैर्जीवादिपदार्थानां स्वतत्त्वं विधिवत्परिज्ञाय चेतनाचेतनानां भोगोपभोगसाधनानामुत्पत्तिप्रलय-स्वभावावगमाद्विरक्तो वितृष्णस्त्रि-गुप्तः पंचसमिति-दशलक्षणधर्मानुष्ठानात्फलदर्शनाच्च निर्वाणप्राप्तिप्रयतनायाभिवर्धित-श्रद्धानो भावनाभिर्भावितात्मानुप्रेक्षाभिः स्थिरीकृतविषयानभिष्वङ्गः संवृतात्मा निरास्र-वत्वाद् व्यपगताभिनवकर्मोपचयः परीषहजया[2]द्बाह्याभ्यन्तरतपोऽनुष्ठानादनुभवाच्च

अवस्थाको निरन्तर धारण करता हुआ उन कर्मोंके बन्ध, संक्रम, उदय और उदीरणारूप परिणामों को निरन्तर अपने रूप करता हुआ, क्रोधोपयोग, मानोपयोग, मायोपयोग और लोभोपयोगरूपसे कालोपयोग एवं वर्गणाओंद्वारा और भावोपयोगरूप वर्गणाओंद्वारा पुनः-पुनः परिणमन करता हुआ, लता, दारु, अस्थि और शैलके समान कर्मोंके अनुभाग स्थानोंको मन्द, मध्यम और उत्कृष्ट परिणामोंके वशसे निरन्तर प्रवर्ताता हुआ, नाना प्रकारके परिवर्तनोंद्वारा अनन्त बार परिभ्रमण करके तत्पश्चात् भीतर योग्यतारूपसे प्राप्त भव्यत्व शक्तिकी सहायतावश किसी प्रकार कर्मबन्धनों-के द्रव्यादि बाह्य चार प्रकारके कारणोंकी अपेक्षा शिथिलताको प्राप्त होनेपर संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तकादि लक्षणवाली प्रायोग्यलब्धिको आत्मसात् करता हुआ, देशनालब्धि, क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि और करणलब्धिको क्रमसे प्राप्त करके उनके बलसे दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमके प्राप्त होनेसे निसर्गज और अधिगमज अन्यतर तत्त्वार्थश्रद्धानरूप, शंकादि अतीचारोंसे रहित, प्रशम-संवेग-आस्तिक्यकी अभिव्यक्ति (ज्ञापक) लक्षणवाले विशुद्ध सम्यग्दर्शन परिणामको उत्पन्नकर, उसीके समान कालमें विशुद्ध (आत्मानुभूतिरूप) ज्ञानको प्राप्तकर, इस प्रकार बोधिलाभको प्राप्त करता हुआ निक्षेप, नय, प्रमाण तथा निर्देश अस्तित्व संख्या आदि उपायोंसे जीवादि पदार्थोंके स्वतत्त्वको विधिवत् जानकर भोगोपभोगके साधनरूप चेतन और अचेतन पदार्थोंकी उत्पत्तिस्वभाव और प्रलयस्वभावका ज्ञानहोनेसे विरक्त व तृष्णारहित होता हुआ, तीन गुप्तियोंसे गुप्त (सुरक्षित) हुआ, पाँच समितियों और दशलक्षण धर्मके अनुष्ठानसे युक्त संसार और उनके कारणोंसे प्राप्त हुए चतुर्गति-परिभ्रमणरूप फलके श्रद्धानको प्राप्त हुई विशुद्धिद्वारा बढ़ाता हुआ, भाई-गई आत्मानुप्रेक्षारूप बारह भावनाओंकेद्वारा विषयोंकी अभिलाषासे रहितपने को जिसने स्थिर कर लिया है ऐसा संवृत

---

१. प्रेसकापीप्रतौ लब्धिश्च इति पाठः।

२. आ० प्रतौ परीषहचयात् इति पाठः।

पूर्वोपचितं कर्म निर्जरयन् श्रेण्यारोहणात्पूर्वमेव क्षपितसप्तप्रकृतिकः संयमानुपालन-विशुद्धिस्थानविशेषाणामुत्तरोत्तरप्राप्त्या घटमानोऽत्यन्तप्रहीणार्तरौद्रध्यानाशुभलेश्या-परिणामः सुविशुद्धलेश्याधर्मध्यानपरिचयादवाप्तसमाधिबलः, उत्तमसंहननचारित्रोत्तम-देहधारी भवन् उपशमश्रेणिप्रायोग्यान् परिणामान् यथाक्रममुल्लंघ्य मोक्षनिःश्रेणिनि-विशेषां क्षपकश्रेणिमारोहंस्तत्रापूर्वानिवृत्तिकरण-सूक्ष्मसाम्परायक्षपक-गुणस्थानेषु प्रथम-शुक्लध्यानेन प्रवर्तमानः पूर्वोक्तेनानुक्रमेण मोहनीयं क्षयं नीत्वा ततः क्षीणकषायभाव-मास्थाय तत्र द्वितीयशुक्लध्यानाग्निना ज्ञानदृगावरणान्तरायप्रकृतीरपुनर्भवाय पूर्वोदितेन विधिना भस्मसाद्भावमानीय स्वयंभूत्वपर्यायेण परिणतः सर्वज्ञेयज्ञानलक्ष्मीमनुभूय ततो यथाक्रममसंख्यातगुणश्रेण्या कर्मप्रदेशान्निर्जरयन् भव्यजनहितोपदेशाय विहृत्यो-पसंहृतविहारोऽन्तर्मुहूर्तशेषायुष्को यदा भवति तदा तीर्थकरकेवली इतरकेवली वा समु-द्घातेनान्यथा वा समीकृताघातिचतुष्टयस्थितिविशेषस्तृतीयशुक्लध्यानेन विशुद्धयोगत्वा-दन्तर्मुहूर्तमयोगिगुणस्थाने शैलेश्यमलेश्यभावेन प्रतिपद्य ततः शेषकर्मक्षयाद्भवबंधन-निर्मुक्तो निर्दग्धपूर्वोपादानेन्धनो निरुपदा इव वह्निः पूर्वोपात्तभववियोगात् हेत्वभा-वाच्चोत्तरस्याप्रादुर्भावादनन्तसंसारदुःखमतिक्रान्तश्चरमदेहात् किंचिन्न्यूनजीवघनपरि-

---

आत्मारूप होता हुआ निरास्रव होनेसे नये कर्मोंके उपचयसे रहित होता हुआ, परीषहजय और बाह्याभ्यन्तर तपके अनुष्ठानके अनुभवसे पूर्वमें उपचित हुए कर्मोंकी निर्जरा करता हुआ, श्रेणिपर आरोहण करनेके पूर्व ही दर्शनमोहनीयकी तीन और चार अनन्तानुबन्धी इन सात मोहनीयकर्म-सम्बन्धी प्रकृतियोंका क्षय करके संयमका अनुपालन और विशुद्धिस्थान विशेषोंकी उत्तरोत्तर प्राप्तिसे आर्तध्यान, रौद्रध्यान और अशुभ लेश्या परिणामोंको अत्यन्त क्षीण करके सुविशुद्ध लेश्यारूप धर्म्य-ध्यान परिणामसे समाधिको प्राप्त होकर उत्तम संहनन, उत्तम चारित्र और उत्तम देहका धारी होता हुआ उपशमश्रेणिके योग्य परिणामोंको क्रमसे उल्लंघन करके मोक्षकी श्रेणिरूप भेदरहित क्षपक श्रेणिपर आरोहण करता हुआ उसमें अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायरूप क्षपक गुणस्थानोंमें प्रथम शुक्लध्यानरूपसे प्रवर्तमान होता हुआ पूर्वोक्त क्रमसे मोहनीय कर्मका क्षय करके उसके बाद क्षीणकषायभावको प्राप्तकर वहाँ दूसरे शुक्लध्यानरूप अग्निकेद्वारा ज्ञाना-वरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मको प्रकृतियोंका पुनः वे उत्पन्न न हो जांय इसलिये पूर्वोक्त विधिसे भस्मसाद्भावको प्राप्त करके स्वयम्भूरूप अपनी पर्यायपरिणत होता हुआ समस्त ज्ञेयरूपसे ज्ञानलक्ष्मीका अनुभव करके तत्पश्चात् क्रमसे असंख्यात गुणश्रेणिद्वारा कर्मप्रदेशोंकी निर्जरा करता हुआ भव्यजनोंको हितका उपदेश देनेकेलिये विहार करके अन्तमें विहारका उपसंहार करता हुआ जब अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु शेष रहती है तब तीर्थंकर केवली या सामान्य केवली या समुद्घातसे या अन्य प्रकारसे चार अघाति कर्मोंको स्थिति विशेषको समान करके तृतीय शुक्लध्यानकेद्वारा विशुद्ध योगरूप होनेसे अन्तर्मुहूर्त कालतक अयोगिकेवली गुणस्थानमें अलेश्यपने और शीलके ईश्वरपनेको प्राप्तकर उसके बाद शेष कर्मोंका क्षय होनेसे भवबन्धनसे मुक्त होता हुआ, पहले प्राप्त किये गये ईंधनको प्रतिपक्ष-रहित वह्निके समान जलाकर पहले प्राप्त हुए भवका वियोग होनेसे, हेतुका अभाव होनेसे और उत्तर भवकी उत्पत्ति न होनेसे अनन्त संसार सम्बन्धी दुःखोंसे मुक्त होता हुआ तथा अन्तिम देहसे

नामस्तदाकार एवामूर्तिः समयेन लोकशिखरमधितिष्ठन्नात्यंतिकमैकान्तिकं निरतिशयं निरुपमं निर्वाणसुखमव्याबाधमचलमनामयमवाप्य शीतीभूतो निर्वृतीति शास्त्रार्थसंग्रहः । उक्तं च—

अनादिकर्मसम्बन्धपरतंत्रो विमूढधीः ।
संसारचक्रमारूढो बंभ्रमीत्यात्मसारथिः ॥ १ ॥
स त्वन्तर्बाह्यहेतुभ्यां भव्यात्मा लब्धचेतनः ।
सम्यग्दर्शनसद्रत्नमादत्ते मुक्तिकारणम् ॥ २ ॥
मिथ्यात्वकर्दमापायात्प्रसन्नतरमानसः ।
ततो जीवादितत्त्वानां याथात्म्यमधिगच्छति ॥ ३ ॥
अहं ममास्रवो बन्धः संवरो निर्जरा क्षयः ।
कर्मणामिति तत्त्वार्थस्तदा समवबुध्यते ॥ ४ ॥
हेयोपादेयतत्त्वज्ञो मुमुक्षुः शुभभावनः ।
संसारिकेषु भोगेषु विरज्यति मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥
[1]एवं तत्त्वपरिज्ञानाद्विरक्तस्यात्मनो भृशं ।
निरास्रवत्वाच्छिन्नायां नवायां कर्मसन्ततौ ॥ ६ ॥

किंचित् न्यून जीवघनपरिणामवाला तदाकार ही अमूर्तिरूपसे लोकके शिखरको प्राप्त होता हुआ आत्यन्तिक, ऐकान्तिक, निरतिशय, निरुपम, अव्याबाध, अचल और आमयरहित निर्वाण सुखको प्राप्तकर परमशान्त दशाको प्राप्त होता हुआ निर्वाणको प्राप्त होता है, यह पूरे शास्त्रका समुच्चयरूप अर्थ है । कहा है—

अनादि कालसे एक क्षेत्रावगाहरूपसे चले आ रहे कर्मोंके सम्बन्धसे परतन्त्र हुआ यह अज्ञानी जीव सारथि बनकर संसाररूपी चक्रपर आरुढ़ हुआ घूमता रहता है ॥ १ ॥

किन्तु जो भव्यात्मा है और जिसने आत्माके अस्तित्वको प्राप्त कर लिया है वह अन्तरंग और बहिरंग हेतुओंकेद्वारा मुक्तिके कारणरूप सम्यग्दर्शनरूपी सच्चे रत्नको प्राप्त करता है ॥ २ ॥

मिथ्यात्वरूपी कीचड़के दूर होनेसे जिसका मानस अत्यन्त प्रसन्न हुआ है वह इस कारण जीवादि पदार्थोंके यथार्थपनेको जाननेमें समर्थ होता है ॥ ३ ॥

मैं ज्ञान-दर्शनरूप चेतनमूर्ति आत्मा हूँ, मेरे कर्मोंका आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और कर्मोंका पूरा क्षयरूप मोक्ष ये सात तत्त्वार्थ भले प्रकार जाननेमें आते हैं ॥ ४ ॥

जिस मुमुक्षुने हेय और उपादेय तत्त्वको जान लिया है तथा जो शुभ भावनावाला है वही सांसारिक भोगोंसे बार-बार विरक्त होता है ॥ ५ ॥

इस प्रकार तत्त्वके परिज्ञानवश विरक्त हुए आत्माके निरास्रव हो जानेके कारण नई कर्मपरम्परा छिन्न हो जाती है अर्थात् नई कर्मपरम्पराका आस्रव रुक जाता है ॥ ६ ॥

---

१. इत आरभ्यामेतनाः श्लोकाः तत्त्वार्थसारे मोक्षप्रकरणे २० तमाङ्कादुपलभ्यन्ते ।

पूर्वार्जितं क्षपयतो यथोक्तैः क्षयहेतुभिः ।
संसारबीजं कार्त्स्न्येन मोहनीयः प्रहीयते ॥ ७ ॥

ततोऽन्तरायज्ञानघ्नदर्शनघ्नान्यनन्तरम् ।
प्रहीयन्तेऽस्य युगपत्त्रीणि कर्माण्यशेषतः ॥ ८ ॥

गर्भसूच्यां विनष्टायां यथा बालो[1] विनश्यति ।
तथा कर्म क्षयं याति मोहनीय-क्षयं गते ॥ ९ ॥

ततः क्षीणचतुष्कर्मा प्राप्तोऽथाख्यातसंयमम् ।
बीजबन्धननिर्मुक्तः स्नातकः परमेश्वरः ॥ १० ॥

शेषकर्मफलोपेक्षः[2] शुद्धो बुद्धो निरामयः ।
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च जिनो भवति केवली ॥ ११ ॥

कृत्स्नकर्मक्षयादूर्ध्वं निर्वाणमधिगच्छति ।
यथा दग्धेन्धनो वह्निर्निरुपादानसन्ततिः ॥ १२ ॥

तदनन्तरमेवोर्ध्वमालोकान्तात्स गच्छति ।
पूर्वप्रयोगासङ्गत्वाबन्धच्छेदोर्ध्वगौरवैः ॥ १३ ॥

तथा यथोक्त कर्मोंके क्षयमें हेतुरूप कारणोंकेद्वारा संसारका मूल कारण मोहनीय कर्म पूरी तरह नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

तदनन्तर इस जीवके अन्तरायकर्म, ज्ञानावरणकर्म और दर्शनावरणकर्म ये तीनों कर्म एक साथ पूरी तरह क्षयको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥

गर्भसूचीके विनष्ट हो जानेपर जैसे बालक मर जाता है वैसे ही मोहनीय कर्मके क्षय हो जानेपर समस्त कर्म क्षयको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ९ ॥

उसके बाद जिसने चार घातिकर्मोंका क्षय कर लिया है और जो अथाख्यात संयमको प्राप्त हुआ है वह बीजबन्धनसे निर्मुक्त, स्नातक एवं परमेश्वर हो जाता है ॥१०॥

तथा वह शेष कर्मोंके फलकी उपेक्षासहित होता हुआ शुद्ध, बुद्ध, निरामय (नीरोग) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी केवली जिन होता है ॥११॥

उसके बाद वह जीव शेष कर्मोंका क्षय हो जानेसे निर्वाणको प्राप्त होता है जैसे कि ईंधनके दग्ध हो जानेपर उपादान सन्ततिसे रहित अग्नि बुझ जाती है ॥ १२ ॥

तदनन्तर ही वह जीव पूर्वप्रयोग, असंगपना, बन्धच्छेद तथा ऊर्ध्वगौरवरूप धर्मके कारण लोकके अन्त तक जाता है ॥१३॥

---

१. आ० प्रती० नालो इति पाठः ।

२. आ० ब० प्रत्योः फलापेक्षः इति पाठः ।

कुलालचक्रे दोलायामिषौ चापि यथेष्यते ।
पूर्वप्रयोगात्कर्मेह तथा सिद्धगतिः स्मृता ।। १४ ।।
मृल्लेपसंगनिर्मोक्षाद्यथा दृष्टाऽप्स्वलाबुनः ।
कर्मसंगविनिर्मोक्षात्तथा सिद्धगतिः स्मृताः ।। १५ ।।
एरण्डयंत्रपेलासु बन्धच्छेदाद्यथा गतिः ।
कर्मबन्धनविच्छेदात् सिद्धस्यापि तथेष्यते ।। १६ ।।
ऊर्ध्वगौरवधर्माणो जीवा इति जिनोत्तमैः ।
अधोगौरवधर्माणः पुद्गला इति चोदितम् ।। १७ ।।
यथाऽधस्तिर्यगूर्ध्वं च लोष्ठवाय्वग्निवीचयः ।
स्वभावतः प्रवर्तन्ते तथोर्ध्वगतिरात्मनाम् ।। १८ ।।
अतस्तु गतिवैकृत्यं तेषां यदुपलभ्यते ।
कर्मणः प्रतिघाताच्च प्रयोगाच्च तदिष्यते ।। १९ ।।
अधस्तिर्यगथोर्ध्वं च जीवानां कर्मजा गतिः ।
ऊर्ध्वमेव स्वभावेन भवति क्षीणकर्मणाम् ।। २० ।।
उत्पत्तिश्च विनाशश्च प्रकाशतमसोरिह ।
युगपद्भवतो यद्वत्तथा निर्वाणकर्मणोः ।। २१ ।।

जिस प्रकार कुम्हारके चक्रमें, हिंडोलामें और बाणमें पूर्वप्रयोग आदि कारणवश क्रिया होती है उसी प्रकार सिद्धगति जाननी चाहिये ।।१४।।

जिस प्रकार पानीमें मिट्टीके लेपका सम्बन्ध छूट जानेसे तूंबडीकी ऊर्ध्वगति देखी जाती है उसी प्रकार कर्मोंके बन्धनके पूरी तरहसे विच्छिन्न हो जानेके कारण सिद्धोंकी ऊर्ध्वगति जाननी चाहिये ।।१५।।

एरण्डकी बोंडीके फूटनेपर बन्धनके छिन्न होनेसे जिस प्रकार एरण्डके बीजकी ऊर्ध्वगति होती है उसी प्रकार कर्मबन्धनका विच्छेद होनेसे सिद्धोंकी भी उर्ध्वगति स्वीकार की गई है ।।१६।।

जिनेन्द्रदेवने जीवोंको ऊर्ध्वगौरवधर्मवाला और पुद्गलोंको अधोगौरवधर्मवाला कहा है।।१७।।

जिस प्रकार ढेला, वायु और अग्निज्वालाकी क्रमसे नीचेकी ओर, तिरछी और ऊपरकी ओर स्वभावतः गति होती है उसी प्रकार आत्माओंकी [मुक्त होनेपर] स्वभावतः ऊर्ध्वगति होती है ।।१८।।

इसलिये उन वस्तुओंमें जो गतिकी विकृति उपलब्ध होती है वह कर्मोंके कारण, प्रतिघातवश या प्रयोगवश कही जाती है ।।१९।।

कर्मोंके विपाकके कारण जीवोंकी नीचेकी ओर, तिरछी और ऊपरकी ओर [अनियमसे] गति होती है किन्तु जिनका कर्म क्षीण हो गया है ऐसे जीवोंकी गति स्वभावसे ही ऊपरकी ओर होती है ।।२०।।

जिस प्रकार इस लोकमें प्रकाशकी उत्पत्ति और अन्धकारका विनाश एक साथ होते हैं उसी प्रकार जीवका निर्वाण और कर्मोंका विनाश एक साथ होते हैं ।।२१।।

दग्धे बीजे यथात्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः ।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुरः ॥ २२ ॥

तन्वी मनोज्ञा सुरभिः पुण्या परमभास्वरा ।
प्राग्भारा नाम वसुधा लोकमूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥ २३ ॥

नृलोकतुल्यविष्कम्भा[1] सितच्छत्रनिभा शुभा ।
ऊर्ध्वं तस्याः क्षितेः सिद्धा लोकान्ते समवस्थिताः ॥ २४ ॥

तादात्म्यादुपयुक्तास्ते केवलज्ञानदर्शने ।
सम्यक्त्वसिद्धतावस्था हेत्वभावाच्च निष्क्रियाः ॥ २५ ॥

ततोऽप्यूर्ध्वंगतिस्तेषां कस्मान्नास्तीति चेन्मतिः ।
धर्मास्तिकायस्याभावात्स हि हेतुर्गतेः परः ॥ २६ ॥

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम् ।
अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः ॥ २७ ॥

स्यादेतदशरीरस्य जन्तोर्नष्टाष्टकर्मणः ।
कथं भवति मुक्तस्य सुखमित्यत्र मे शृणु ॥ २८ ॥

जिस प्रकार बीजके दग्ध हो जानेपर उससे अंकुर सर्वथा उत्पन्न नहीं होता उसी प्रकार कर्म-रूपी बीजके जल जानेपर भवरूपी अंकुरकी उत्पत्ति नहीं होती ॥२२॥

लोकके अग्रभागमें जो पृथिवी अवस्थित है वह छोटी है, मनोज्ञ है, सुगन्धित है, पवित्र है और अत्यन्त देदीप्यमान है। उसका नाम प्राग्भार है ॥२३॥

मनुष्यलोकके समान विस्तारवाली है, सफेद छत्रके समान है और शुभ है। उस पृथिवीके ऊपर लोकके अग्रभागमें सिद्ध भगवान् विराजमान हैं ॥२४॥

तादात्म्य सम्बन्ध होनेके कारण वे सिद्ध परमेष्ठी केवलज्ञान और केवलदर्शनसे सदा उपयुक्त रहते हैं तथा सम्यक्त्व और सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हैं। इसके साथ वे हेतुका अभाव होनेसे परिस्पन्दरूप क्रियासे रहित अर्थात् निष्क्रिय हैं ॥२५॥

लोकके अग्रभागके ऊपर उन सिद्ध भगवन्तोंकी गति किस कारणसे नहीं होती ऐसी यदि आपकी पृच्छा है तो उसका धर्मास्तिकायका अभाव कारण है क्योंकि गतिका वह निमित्तकारण है ॥ २६ ॥

सिद्धोंका सुख संसारसम्बन्धी विषयोंसे रहित, अविनाशीक, अव्याबाध और सर्वोत्कृष्ट होता है ऐसा परम ऋषियोंने कहा है ॥ २७ ॥

कोई पृच्छा करे कि शरीररहित और आठ कर्मोंका नाश करनेवाले मुक्तजीवके सुख कैसे हो सकता है तो इस पृच्छाका उत्तर सुनो ॥२८॥

---

१. आ॰ प्रती॰ अनन्तानन्तविष्कम्भा इति पाठः ।

लोके चतुर्ष्विहार्थेषु सुखशब्दः प्रयुज्यते ।
विषये वेदनाभावे विपाके मोक्ष एव च ।। २९ ।।

सुखो वह्निः सुखो वायुर्विषयेष्विह कथ्यते ।
दुःखाभावे च पुरुषः सुखितोऽस्मीति भाषते ।। ३० ।।

पुण्यकर्मविपाकाच्च सुखमिष्टेन्द्रियार्थजम् ।
कर्मक्लेशविमोक्षाच्च मोक्षे सुखमनुत्तमम् ।। ३१ ।।

सुषुप्त्यवस्थया तुल्यां केचिदिच्छन्ति निर्वृतिम् ।
तदयुक्तं क्रियावत्त्वात्सुखातिशयतस्तथा ।। ३२ ।।

श्रमक्लमभदव्याधिमदनेभ्यश्च संभवात् ।
मोहोत्पत्तेर्विपाकाच्च दर्शनघ्नस्य कर्मणः ।। ३३ ।।

लोके तत्सदृशो ह्यर्थः कृत्स्नेऽप्यन्यो न विद्यते ।
उपमीयेत तद्येन तस्मान्निरुपमं स्मृतम् ।।३४।।

इस लोकमें चार अर्थोंमें सुखशब्द प्रयुक्त होता है। एक इष्ट विषयकी प्राप्तिमें, दूसरा वेदनाके अभावमें, तीसरा साता वेदनीय आदि कर्मोंके विपाकमें और चौथा मोक्षकी प्राप्तिमें ।।२९।।

अग्नि सुखरूप है, वायु सुखरूप है। यहाँ इष्ट विषयोंकी प्राप्तिमें सुख कहा जाता है। दुःखके अभाव होनेपर पुरुष कहता है कि मैं सुखी हूँ। यहाँ वेदनाके अभावमें सुख शब्दका प्रयोग हुआ है ।।३०।।

पुण्य कर्मके उदयसे इन्द्रियाँ और इष्ट पदार्थोंकी अनुकूलतासे सुख उत्पन्न होता है। यहाँ विपाक अर्थमें सुख शब्दका प्रयोग हुआ है। तथा कर्मक्लेशके अभावसे मोक्षमें सर्वोत्कृष्ट सुख होता है। यहाँ मोक्षमें सुख शब्दका प्रयोग हुआ है ।।३१।।

कितने ही पुरुष मानते हैं कि निर्वाण सुषुप्त अवस्थाके समान है किन्तु उनका वैसा मानना अयुक्त है, क्योंकि सांसारिक सुखकी प्राप्तिमें किया देखी जाती है जबकि मोक्षसुख निष्क्रिय आत्मा-का धर्म है। सांसारिक सुखके प्राप्त होनेके बाद पश्चात्ताप एवं अकुलता देखी जाती है जबकि मोक्षसुख आकुलतासे रहित है ।।३२।।

सुषुप्त अवस्थाकी उत्पत्ति श्रम, खेद, नशा, व्याधि और कामके अधीन होनेसे और इनके सम्भव होनेसे होती है। तथा उसमें दर्शनावरण, निद्रादि कर्मोंके विपाकसे मोहकी उत्पत्ति होती जाती है ।।३३।।

समस्त लोकमें मोक्षसुखके समान अन्य कोई भी पदार्थ नहीं पाया जाता जिसके साथ उस मोक्षसुखकी उपमा दी जाय, इसलिये वह निरुपम (उपमारहित) सुख है ।।३४।।

प्रत्यक्षं तद्भगवतामर्हतां तैश्च भाषितम् ।
गृह्यतेऽस्तीत्यतः प्राज्ञैर्न छद्मस्थपरीक्षया ॥३५॥
इति ।

एवमेत्तिएण पबंधेण णिव्वाणफलपज्जवसाणं खवणाविहिं सचूलियं परिसमाणिय तदो पच्छिमक्खंधे समत्ते खवणाहियारो समप्पइ त्ति जाणावणट्ठमुवसंहारमाह—

* खवणदंडओ समत्तो ।

॥ इति ॥

वह मोक्षसुख अरहन्त भगवन्तोंके प्रत्यक्ष है तथा उनके द्वारा उस सुखका कथन हुआ है, इसलिये विद्वज्जनोंके द्वारा 'वह है' इस प्रकार स्वीकार किया जाता है। किन्तु छद्मस्थोंकी परीक्षाके द्वारा वह स्वीकार नहीं किया जाता ॥३५॥

इस प्रकार इतने प्रबन्धकेद्वारा निर्वाणफलकी प्राप्ति तक चूलिका सहित क्षपणाविधिको समाप्त कर तदनन्तर पश्चिमस्कन्धके समाप्त होनेपर क्षपणा नामका अधिकार समाप्त होता है, इस बातका ज्ञान करानेकेलिये उपसंहारपरक सूत्रको कहते हैं—

* इस प्रकार 'क्षपणादण्डक' समाप्त हुआ ।

॥ इति ॥

परिशिष्ट

१. [अ] मूलगाथा और चूर्णिसूत्र

[1]एस कमो ताव जाव सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयअणिल्लेविदं । [2]पढमे ट्ठिदिखंडए णिल्लेविदे उदए पदेसग्गं दिस्सदि तं थोवं । विदियाए ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं । एवं ताव जाव गुणसेढिसीसयं । गुणसेढिसीसयादो अण्णा च एक्का ठिदि त्ति असंखेज्जगुणं दिस्सदि । तत्तो विसेसहीणं जाव उक्कस्सिया मोहणीयस्स ठिदि त्ति ।

सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडए पढमसमयणिल्लेविदे गुणसेढिं मोत्तूण केण कारणेण सेसिगासु ठिदीसु एगगोवुच्छासेढी जादा त्ति एदस्स साहणट्ठमिमाणि अप्पाबहुअपदाणि ।

पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स मोहणीयस्स गुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ । अंतरट्ठिदीओ संखेज्जगुणाओ । सुहुमसांपराइयस्स पढमट्ठिदिखंडयं मोहणीये संखेज्जगुणं पढमसमयसुहुमसांपराइयस्स मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं संखेज्जगुणं ।

[4]लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए जाव तिण्णि आवलियाओ सेसाओ ताव लोभस्स विदियकिट्टीदो लोभस्स तदियकिट्टीए संछुभदि पदेसग्गं, तेण परं ण संछुभदि, सव्वं सुहुमसांपराइयकिट्टीसु संछुभदि ।

[5]लोभस्स विदियकिट्टिं वेदयमाणस्स जा पढमट्ठिदी तिस्से पढमट्ठिदीए आवलियाए समयाहियाए सेसाए ताधे जा लोभस्स तदियकिट्टी सा सव्वा णिरवयवा सुहुमसांपराइयकिट्टीसु संपत्ता । जा विदियकिट्टी तिस्से दो आवलिया मोत्तूण समयूणे उदयावलियपविट्ठं च सेसं सव्वं सुहुमसांपराइयकिट्टीसु संकंतं । ताधे चरिमसमयबादरसांपराइओ मोहणीयस्स चरिमसमयबंधगो ।

[6]से काले पढमसमयसुहुमसांपराइओ । ताधे सुहुमसांपराइयकिट्टीणमसंखेज्जा भागा उदिण्णा । हेट्ठा अणुदिण्णाओ थोवाओ । उवरि अणुदिण्णाओ विसेसाहियाओ । [8]मज्झे उदिण्णाओ सुहुमसांपराइयकिट्टीओ असंखेज्जगुणाओ ।

---

१. पृ० १ । २. पृ० २ । ३. पृ० ३ । ४. पृ० ४ । ५. पृ० ५ । ६. पृ० ७ । ७. पृ० ८ । ८. पृ० ९ ।

सुहुमसांपराइयस्स संखेज्जेसु ठिदिखंडयसहस्सेसु गदेसु जमपच्छिमं ठिदिखंडयं मोहणीयस्स तम्हि ट्ठिदिखंडये उक्कीरमाणे जो [1]मोहणीयस्स तस्स गुणसेढिणिक्खेवस्स अग्गग्गादो संखेज्जदिभागो आगाइदो ।

[2]तम्हि ठिदिखंडये उक्किण्णे तदो प्पहुडि मोहणीयस्स णत्थि ठिदिघादो । जत्तियं सुहुमसांपराइयद्धाए सेसं तत्तियं मोहणीयस्स ठिदिसंतकम्मं सेसं ।

[3]इदाणिं सेसाणं गाहाणं सुत्तफासो कायव्वो । तत्थ ताव दसमी सुत्तगाहा ।

(१५४) [4]किट्टीकदम्मि कम्मे कं बंधदि कं च वेदयदि अंसे ।
संकामेदि च के के केसु असंकामगो होइ ॥२०७॥

[5]एदिस्से पंच भासगाहाओ । तासिं समुक्कित्तणा ।

(१५५) दससु च वस्सस्संतो बंधदि णियमा दु सेसगे अंसे ।
देसावरणीयाइं जेसिं ओवट्टणा अत्थि ॥२०८॥

[6]एदिस्से गाहाए विहासा । [7]एदीए गाहाए तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो च अणुभागबंधो च णिद्दिट्ठो । तं जहा । कोहस्स पढमकिट्टिचरिमसमयवेदगस्स तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदि बंधो संखेज्जेहिं वस्ससहस्सेहिं परिहाइदूण दसण्हं वस्साणमंतो जादो । अधाणुभागबंधो तिण्हं घादिकम्माणं किं सव्वघादी देसघादि त्ति । एदेसिं घादिकम्माणं जेसिमोवट्टणा अत्थि ताणि देसघादीणि बंधदि, [8]जेसिमोवट्टणा णत्थि ताणि सव्वघादीणि बंधदि । ओवट्टणासण्णा पुव्वं परूविदा ।

एत्तो विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा । [9]तं जहा ।

(१५६) चरिमो बादररागो णामागोदाणि वेदणीयं च ।
वस्सस्संतो बंधदि दिवसस्संतो य जं सेसं ॥२०९॥

[10]विहासा । [11]चरिमसमयबादरसांपराइयस्स णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिबंधो वस्सं देसूणं । तिण्हं घादिकम्माणं मुहुत्तपुधत्तं ट्ठिदिबंधो । एत्तो तदियाए भासगाहाए-समुक्कित्तणा । तं जहा ।

(१५७) चरिमो य सुहुमरागो णामा-गोदाणि वेदणीयं च ।
दिवसस्संतो बंधदि भिण्णमुहुत्तं तु जं सेसं ॥२१०॥

[12]विहासा । चरिमसमयसुहुमसांपराइयस्स णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो अट्ठमुहुत्ता । वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो बारसमुहुत्ता । तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तो । एत्तो चउत्थीए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

---

१. पृ० १० । २. पृ० १२ । ३. पृ० १३ । ४. पृ० १४ । ५. पृ० १५ । ६. पृ० १६ । ७. पृ० १७ । ८. पृ० १८ । ९. पृ० १९ । १०. पृ० १९ । ११. पृ० २० । १२. पृ० २१ ।

(१५८) अध मदि-सुदआवरणे च अंतराइए च देसमावरणं ।
लद्धी य वेदयदे सव्वावरणं अलद्धी य ॥२११॥

[1]लद्धीए विहासा । जदि सव्वेसिमक्खराणं खओवसमो गदो तदो सुदावरणं मदिआवरणं [2]च देसघादिं वेदयदि । अध एक्कस्स वि अक्खरस्स ण गदो खओवसमो तदो सुद-मदि-आवरणाणि सव्वघादीणि वेदयदि । [3]एवमेदेसिं तिण्हं घादिकम्माणं जासिं पयडीणं खओवसमो गदो तासिं पयडीणं देसघादिउदयो । जासिं पयडीणं खओवसमो ण गदो तासिं पयडीणं सव्वघादिउदओ ।

[4]एत्तो पंचमीए भासगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१५९) जस-णाममुच्चगोदं वेदयदि णियमसा अणंतगुणं ।
गुणहीणमंतरायं से काले सेसगा भज्जा ॥२१२॥

[5]विहासा जस-णाममुच्चगोदं च अणंतगुणाए सेढीए वेदयदि । सेसाओ णामाओ कधं वेदयदि । [6]जसणामं परिणामपच्चइयं मणुसतिरिक्खजोणियाणं । [7]जाओ असुहाओ परिणामपच्चइगाओ ताओ अणंतगुणहीणाए सेढीए वेदयदि त्ति । अंतराइयं सव्वमणंतगुणहीणं वेदयदि । भवोपग्गहियाओ णामाओ छव्विहाए वड्ढीए छव्विहाए हाणीए भजिदव्वाओ । [8]केवलणाणावरणीयं केवलदंसणावरणीयं जदि सव्वघादिं वेदयदि णियमा अणंतगुणहीणं वेदयदि । सेसं चउव्विहं णाणावरणीयं जदि सव्वघादिं वेदयदि णियमा अणंतगुणहीणं वेदयदि । अध देसघादिं वेदयदि, एत्थ छव्विहाए वड्ढीए छव्विहाए हाणीए भजिदव्वं । एवं चेव दंसणावरणीयस्स जं सव्वघादिं वेदयदि तं णियमा अणंतगुणहीणं । जं देसघादिं वेदयदि तं छव्विहाए वड्ढीए छव्विहाए हाणीए भजिदव्वं । [9]एवमेसा दसमी मूलगाहा किट्टीसु विहासिदा समत्ता । एत्तो एक्कारसमी मूलगाहा

(१६०) [10]किट्टीकदम्मि कम्मे कं वीचारो दु मोहणीयस्स ।
सेसाणं कम्माणं तहेव के के दु वीचारो ॥२१३॥

एदिस्से भासगाहा णत्थि । [11]विहासा । एसा गाहा पुच्छासुत्तं । तदो मोहणीयस्स पुव्वभणिदं । [12]तदो वि पुण इमिस्से गाहाए फस्सकण्णकरणमणुसंवण्णेयव्वं । ठिदिघादेण १, ट्ठिदिसंतकम्मेण २, उदएण ३, उदीरणाए ४, ट्ठिदिखंडगेण ५, अणुभागघादेण ६, ठिदिसंतकम्मेण ७, अणुभागसंतकम्मेण ८, बंधेण ९, बंधपरि-

१. पृ० २६ । २. पृ० २७ । ३. पृ० २८ । ४. पृ० २९ । ५. पृ० ३१ ।
६. पृ० ३२ । ७. पृ० ३३ । ८. पृ० ३४ । ९. पृ० ३५ । १०. पृ० ३६ ।
११. पृ० ३७ । १२. पृ० ३८ ।

हाणीए १० । [1]सेसाणि कम्माणि एदेहिं चीचारेहिं अणुमग्गियव्वाणि । अणुमग्गिदे समत्ता एक्कारसमी मूलगाहा भवदि । [2]एक्कारस्स होंति किट्टीए त्ति पदं समत्तं ।

[3]एत्तो चत्तारि क्खवणाए त्ति । तत्थ पढममूलगाहा—

(१६१) किं वेदेंतो किट्टिं खवेदि किं चावि संछुहंतो वा ।
संछोहणमुदयेण च अणुपुव्वं अणणुपुव्वं वा ॥२१४॥

[4]एदिस्से एक्का भासगाहा । तं जहा ।

(१६२) पढमं विदियं तदियं वेदेंतो चावि संछुहंतो वा ।
चरिमं वेदयमाणो खवेदि उभयेण सेसाओ ॥२१५॥

[5]विहासा । तं जहा । [6]पढमं कोहस्स किट्टिं वेदेंतो वा खवेदि, अधवा अवेदेंतो संछुहंतो । जे दो आवलियबंधा दुसमयूणा ते अवेदेंतो खवेदि केवलं संछुहंतो चेव । [7]पढमसमयवेदगप्पहुडि जाव तिस्से किट्टीए चरिमसमयवेदगो त्ति ताव एदं किट्टिं वेदेंतो खवेदि । एवमेदं पि पढमकिट्टिं दोहिं पयारेहिं खवेदि किंचि कालं वेदेंतो किंचि कालमवेदेंतो संछुहंतो । जहा पढमकिट्टिं खवेदि तहा विदियं तदियं चउत्थं जाव एक्कारसमित्ति । [8]कोहणी बादरसांपराइयकिट्टीए अव्वहारो । चरिमं वेदेमाणो त्ति अहिप्पायो वा सुहुमसांपराइयकिट्टी वा चरिमा, तदो तं चरिमकिट्टिं वेदेंतो खवेदि, ण संछुहंतो । [9]सेसाणं किट्टीणं दो दो आवलियबंधे दुसमयूणे चरिमे संछुहंतो चेव खवेदि, ण वेदेंतो । चरिमकिट्टिं वज्ज दो आवलियदुसमयूणे च वज्जणं सेसकिट्टीणं तमुभयेण खवेदि । [10]किं उभयेणेत्ति वेदेंतो च संछुहंतो च एवमुभयं । [11]एत्तो विदियमूलगाहा ।

(१६३) जं वेदेंतो किट्टिं खवेदि किं चावि बंधगो तिस्से ।
जं चावि संछुहंतो तिस्से किं बंधगो चावि ॥२१६॥

[12]एदिस्से गाहाए एक्का भासगाहा । जहा ।

(१६४) जं चावि संछुहंतो खवेदि किट्टिं अबंधगो तिस्से ।
सुहुमम्हि सांपराए अबंधगो बंधनिदरासिं ॥२१७॥

[13]विहासा । जं खवेदि किट्टिं णियमा तिस्से बंधगो मोत्तूण दो आवलियबंधे दुसमयूणे सुहुमसांपराइयकिट्टीओ च ।

[14]एत्तो तदिया मूलगाहा । तं जहा ।

१. पृ० ४० । २. पृ० ४१ । ३. पृ० ४२ । ४. पृ० ४३ । ५. पृ० ४४ । ६. पृ० ४५ । ७. पृ० ४६ । ८. पृ० ४७ । ९. पृ० ४८ । १०. पृ० ४९ । ११. पृ० ५० । १२. पृ० ५१ । १३. पृ० ५२ । १४. पृ० ५३ ।

(१६५) जं जं संवेदि किट्टिं ट्ठिदि-अणुभागेसु केसुदीरेदि ।
संछुहदि अण्णकिट्टिं के काले तासु अण्णासु ॥२१८॥

[1]एदिस्से दस मूलगाहाओ । तत्थ पढमाए भासगाहाए समुक्कित्तणाए ।

(१६६) बंधो व संकमो वा णियमा सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु ।
सव्वेसु चाणुभागेसु संकमो मज्झिमो उदओ ॥२१९॥

[2]'बंधो व संकमो वा णियमा सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु' त्ति एदं पुच्छासुत्तं । तं जहा । [3]बंधो व संकमो वा णियमा सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु त्ति एदं णव्वदि णिद्दिट्ठं त्ति एदं पुण पुच्छिदे किं सव्वेसु ट्ठिदिविसेसेसु, आहो ण सव्वेसु । तदो वत्तव्वं ण सव्वेसु त्ति। किट्टी-वेदगे पगदं ति चत्तारि मासा एत्तिगाओ ट्ठिदीओ वज्झंति । आवलियपविट्ठाओ मोत्तूण सेसाओ संकामिज्जंति । [4]सव्वेसु चाणुभागेसु संकमो मज्झिमो उदयो त्ति एदं सव्वं वाकरणसुत्तं । सव्वाओ किट्टीओ संकमंति । [5]जं किट्टिं वेदयदि तिस्से मज्झिमकिट्टीओ उदिण्णाओ । [6]एत्तो विदियाए भासगाहाए समुक्कित्तणा । जहा—

(१६७) संकामेदि उदीरेदि चावि सव्वेहिं ट्ठिदिविसेसेहिं ।
किट्टीए अणुभागे वेदेंतो मज्झिमो णियमा ॥२२०॥

[7]विहासा । एसा वि गाहा पुच्छासुत्तं । [8]किं सव्वे ट्ठिदिविसेसे संकामेदि उदीरेदि वा आहो ण वत्तव्वं । आवलियपविट्ठं मोत्तूण सेसाओ सव्वाओ ट्ठिदीओ संकामेदि उदीरेदि च । जं किट्टिं वेदेदि तिस्से मज्झिमकिट्टीओ उदीरेदि । एत्तो तदियाए भास-गाहाए समुक्कित्तणा ।

(१६८) ओकड्डदि जे अंसे से काले किण्णु ते पवेसेदि ।
ओकड्डिदे च पुव्वं सरिसमसरिसे पवेसेदि ॥२२१॥

[9]विहासा । एसा वि गाहा पुच्छासुत्तं । ओकड्डदि जे अंसे से काले किण्णु ते पवेसेदि आहो ण ? वत्तव्वं । पवेसेदि ओकड्डिदे च पुव्वमणंतरपुव्वगेण । [10]सरिस-मसरिसे त्ति णाम का सण्णा । जदि जे अणुभागे उदीरेदि एक्किस्से वग्गणाए सव्वे ते सरिसा णाम । अध जे उदीरिदे अणेगासु वग्गणासु ते असरिसा णाम । [11]एदीए सण्णाए से काले जे पवेसेदि ते असरिसे पवेसेदि । [12]एत्तो चउत्थीए भासगाहाए समुक्कित्तणा । तं जहा ।

१. पृ० ५५ । २. पृ० ५७ । ३. पृ० ५८ । ४. पृ० ५९ । ५. पृ० ६० ।
६. पृ० ६१ । ७. पृ० ६२ । ८. पृ० ६३ । ९. पृ० ६५ । १०. पृ० ६६ ।
११. पृ० ६७ । १२. पृ० ६८ ।

(१६९) उक्कड्डदि जे अंसे से काले किण्णु ते पवेसेदि ।
उक्कड्डिदे च पुव्वं सरिसमसरिसे पवेसेदि ॥२२२॥

एदं पुच्छासुत्तं । [1]एदिस्से गाहाए किट्टीकरणप्पहुडि णत्थि अत्थो । हंदि किट्टीकारगो किट्टीवेदगो वा ट्ठिदि-अणुभागेण उक्कड्डदि त्ति । [2]जो किट्टीकम्मंसिगवदिरित्तो जीवो तस्स एसो अत्थो पुव्वं परूविदो । [3]एत्तो पंचमी भासगाहा ।

(१७०) बंधो व संकमो वा उदयो वा तह पदेस अणुभागे ।
बहुगं ते थोवं जे जहेव पुव्वं तहेवेण्हिं ॥२२३॥

[4]विहासा । तं जहा । संकामगे च चत्तारि मूलगाहाओ तत्थ जा चउत्थी मूलगाहा तिस्से तिण्णि भासगाहाओ तासिं जो अत्थो सो इमिस्से वि पंचमीए गाहाए अत्थो कायव्वो । [5]एत्तो छट्ठी भासगाहा ।

(१७१) जो कम्मंसो पविसदि पओगसा तेण णियमसा अहिओ ।
पविसदि ठिदिक्खएण दु गुणेण गणणादियंतेण ॥२२४॥

[6]विहासा । जत्तो पाए असंखेज्जाणं समयबद्धाणमुदीरगो तत्तो पाए जमुदीरिज्जदि पदेसग्गं तं थोवं । जमधट्ठिदिगं पविसदि तमसंखेज्जगुणं । [7]असंखेज्ज-लोगभागे उदीरिणा अणुत्तसिद्धी । [8]एत्तो सत्तमी भासगाहा । [9]तं जहा ।

(१७२) आवलियं च पविट्ठं पओगसा णियमसा च उदयादी ।
उदयादि पदेसग्गं गुणेण गणणादियंतेण ॥२२५॥

[10]विहासा । तं जहा । जमावलियपविट्ठं पदेसग्गं तमुदये थोवं । विदिय-ट्ठिदीए असंखेज्जगुणं । एवमसंखेज्जगुणाए सेढी जाव सव्विस्से आवलियाए ।

[11]एत्तो अट्ठमी भासगाहा । तं जहा ।

(१७३) जा वग्गणा उदीरेदि अणंता तासु संकमदि एक्का ।
पुव्वपविट्ठा णियमा एक्किस्से होंति च अणंता ॥२२६॥

[12]विहासा । तं जहा । जा संगहकिट्टी उदिण्णा तिस्से उवरि । असंखेज्जदि-भागो हेट्ठा वि असंखेज्जदिभागो किट्टीणमणुदिण्णो । मज्झागारे असंखेज्जा भागा किट्टीणमुदिण्णा । [13]तत्थ जाओ अणुदिण्णाओ किट्टीओ तदो एक्केक्का किट्टी

---

१. पृ० ६९ । २. पृ० ७० । ३. पृ० ७१ । ४. पृ० ७२ । ५. पृ० ७४ ।
६. पृ० ७५ । ७. पृ० ७६ । ८. पृ० ७८ । ९. पृ० ७९ । १०. पृ० ८० ।
११. पृ० ८१ । १२. पृ० ८४ । १३. पृ० ८५ ।

सव्वासु उदिण्णासु किट्टीसु संकमदि । एदेण कारणेण जा वग्गणा उदीरेदि अणंता तासु संकमदि एक्का त्ति भण्णदि । एक्किस्से वि उदिण्णाए किट्टीए केत्तियाओ किट्टीओ संकमंति । [1]जाओ आवलियपुव्वपविट्ठाओ उदयेण अधट्ठिदिगं विपच्चंति ताओ सव्वाओ एक्किस्से उदिण्णाए किट्टीए संकमंति । एदेण कारणेण पुव्वपविट्ठा एक्किस्से अणंता त्ति भण्णंति । [2]एसो णवमी भासगाहा ।

(१७४) जे चावि य अणुभागा उदीरदा णियमसा पओगेण ।
तेयप्पा अणुभागा पुव्वपविट्ठा परिणमंति ॥२२७॥

विहासा । जाओ किट्टीओ उदिण्णाओ ताओ पडुच्च अणुदीरिज्जमाणिगाओ वि[3] किट्टीओ जाओ अधट्ठिदिगमुदयं पविसंति ताओ उदीरिज्जमाणि याणं किट्टीणं सरिसाओ भवंति । एसो दसमी भासगाहा ।

(१७५) [4]पच्छिम आवलियाए समयूणाए दु जे य अणुभागा ।
उक्कस्स हेट्ठिमा मज्झिमासु णियमा परिणमंति ॥२२८॥

[5]विहासा । पच्छिमआवलिया त्ति का सण्णा ? जा उदयावलिया सा पच्छिमावलिया । तदो तिस्से उदयावलियाए उदयसमयं मोत्तूण सेसेसु समयेसु जा संगहकिट्टीवेदिज्जमाणिगा तिस्से अंतरकिट्टीओ सव्वाओ ताव धरिज्जंति जाव ण उदयं पविट्ठाओ त्ति । [6]उदयं जाधे पविट्ठाओ ताधे चेव तिस्से संगहकिट्टीए अग्गकिट्टिमादिं कादूण उवरि असंखेज्जदिभागो जहण्णियं किट्टिमादिं कादूण हेट्ठा असंखेज्जदिभागो च मज्झिमकिट्टीसु परिणमदि । खवणाए चउत्थीए मूलगाहाए समुक्कित्तणा ।

(१७६) [7]किट्टीदो किट्टिं पुण संकमदि खएण किं पयोगेण ।
किं सेसगम्हि कीट्टीए संकमो होदि अण्णिस्से ॥२२९॥

[8]एदिस्से वे भासगाहाओ ।

(१७७) किट्टीदो किट्टिं पुण संकमदे णियमसा पओगेण ।
किट्टीए सेसगं पुण दो आवलियाए जं बद्धं ॥२३०॥

[9]विहासा । जं संगहकिट्टिं वेदेदूण तदो से काले अण्णसंगहकिट्टिं पवेदयदि, तदो तिस्से पुव्वसमयवेदिदाए संगहकिट्टीए जे दो आवलियबद्धा [10]दुसमयूणा आवलियपविट्ठा च अस्सिं समए वेदिज्जमाणिगाए संगहकिट्टीए पओगसा संकमंति ।

१. पृ० ८६ । २. पृ० ८७ । ३. पृ० ८८ । ४. पृ० ८९ । ५. पृ० ९० ।
६. पृ० ९१ । ७. पृ० ९२ । ८. पृ० ९३ । ९. पृ० ९४ । १०. पृ० ९५ ।

एसो पढमभासगाहाए अत्थो । एत्तो विदियभासगाहाए समुक्कित्तणा—

(१७८) [1]समयूणा च पविट्ठा आवलिया होदि पढमकिट्टीए ।
पुण्णा जं वेदयदे एवं दो संकमे होंति ॥२३१॥

[2]विहासा । तं जहा । अण्णं किट्टिं संकममाणस्स पुव्ववेदिदाए समयूणा उदयावलिया वेदिज्जमाणिगाए किट्टीए पडिवुण्णा उदयावलिया; एवं किट्टीवेदगस्स उक्कसेण दो आवलियाओ । [3]ताओ वि किट्टीदो किट्टिं संकममाणस्स से काले एक्का उदयावलिया भवदि । चउत्थी मूलगाहा खवणाए समत्ता । एसा परूवणा पुरिसवेदगस्स कोहेण उवट्ठिदस्स ।

[4]पुरिसवेदयस्स चेव माणेण उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । [5]तं जहा । अंतरे अकदे णत्थि णाणत्तं । अंतरे कदे णाणत्तं । अंतरे कदे कोहस्स पढमट्ठिदी णत्थि, माणस्स अत्थि । [6]सा केम्महंती । जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स कोहस्स पढमट्ठिदी, कोहस्स चेव खवणद्धा तद्देही चेव एम्महंती माणेण उवट्ठिदस्स माणस्स पढमट्ठिदी । [7]जम्हि कोहेण उवट्ठिदो अस्सकण्णकरणं करेदि, माणेण उवट्ठिदो तम्हि काले कोहं खवेदि । [8]कोहेण उवट्ठिदस्स जा किट्टीकरणद्धा माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि काले अस्सकण्णकरणद्धा । [9]कोहेण उवट्ठिदस्स जा कोहस्स खवणद्धा माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि काले किट्टीकरणद्धा । कोहेण उवट्ठिदस्स जा माणस्स खवणद्धा, माणेण उवट्ठिदस्स तम्हि चेव काले माणस्स खवणद्धा ।

एत्तो पाए जम्हि जहा कोहेण उवट्ठिदस्स विही तहा माणेण उवट्ठिदस्स ।

[10]पुरिसवेदस्स मायाए उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो । तं जहा । कोहेण उवट्ठिदस्स जम्महंती कोहस्स पढमट्ठिदी । कोहस्स चेव खवणद्धा माणस्स च खवणद्धा मायाए उवट्ठिदस्स एम्महंती मायाए पढमट्ठिदी ।

[11]कोहेण उवट्ठिदो जम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि कोहं खवेदि । कोहेण उवट्ठिदो जम्हि किट्टीओ करेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि माणं खवेदि । [12]कोहेण उवट्ठिदो जम्हि कोहं खवेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि । कोहेण उवट्ठिदो जम्हि माणं खवेदि, मायाए उवट्ठिदो तम्हि किट्टीओ करेदि । [13]कोहेण उवट्ठिदो जम्हि माय खवेदि तम्हि चेव मायाए उवट्ठिदो मायं खवेदि । एत्तो पाए लोभं खवेमाणस्स णत्थि णाणत्तं ।

---

१. पृ० ९६ । २. पृ० ९७ । ३. पृ० ९८ । ४. पृ० ९९ । ५. पृ० १०० ।
६. पृ० १०१ । ७. पृ० १०२ । ८. पृ० १०३ । ९. पृ० १०४ । १०. पृ० १०५ ।
११. पृ० १०६ । १२. पृ० १०७ । १३. पृ० १०८ ।

पुरिसवेदस्स लोभेण उवट्ठिदस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो।[1] जाव अंतरं ण करेदि ताव णत्थि णाणत्तं। अंतरं करेमाणो लोभस्स पढमट्ठिदिं ठवेदि। सा केम्महंती। जद्देही कोहेण उवट्ठिदस्स कोहस्स पढमट्ठिदी, कोहस्स माणस्स मायाए च खवणद्धा तद्देही लोभेण उवट्ठिदस्स पढमट्ठिदी।[2] कोहेण उवट्ठिदो जम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि माणं खवेदि। कोहेण उवट्ठिदो जम्हि कोहं खवेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि माणं खवेदि। कोहेण उवट्ठिदो जम्हि माणं खवेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि अस्सकण्णकरणं करेदि।[3] कोहेण उवट्ठिदो जम्हि मायं खवेदि, लोभेण उवट्ठिदो तम्हि किट्टीओ करेदि। कोहेण उवट्ठिदो जम्हि लोभं खवेदि, तम्हि चेव लोभेण उवट्ठिदो लोभं खवेदि। एसा सव्वा सण्णिकासणा पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स।

[4]इत्थिवेदेण उवट्ठिदस्स खवगस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो। तं जहा जाव अंतरं ण करेदि ताव णत्थि णाणत्तं। अंतरं करेमाणो इत्थीवेदस्स खवणद्धा तद्देही इत्थीवेदस्स उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स पढमट्ठिदी। णवुंसयवेदं खवेमाणस्स णत्थि णाणत्तं, णवुंसयवेदे खीणे इत्थीवेदं खवेइ। जम्महंती पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदखवणद्धा तम्महंती इत्थीवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थीवेदस्स, खवणद्धा।[5] तदो अवगदवेदो सत्तकम्मंसे खवेदि। सत्तण्हं पि कम्माणं तुल्ला[6] खवणद्धा।[7] सेसेसु पदेसु णत्थि णाणत्तं।

एत्तो णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स खवगस्स णाणत्तं वत्तइस्सामो। जाव अंतरं ण करेदि ताव णत्थि णाणत्तं अंतरं करेमाणो णवुंसयवेदस्स पढमट्ठिदिं ठवेदि।[8] जम्महंती इत्थीवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थिवेदस्स पढमट्ठिदी तम्महंती णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स पढमट्ठिदी। तदो अंतर-दुसमयकदे णवुंसयवेदं खवेदुमाढत्तो। जद्देही पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स खवणद्धा तद्देही णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स णवुंसयवेदस्स खवणद्धा गदा, ण ताव णवुंसयवेदो खीयदि।[9] तदो से काले इत्थीवेदं खवेदुमाढत्तो, णवुंसयवेदं पि खवेदि। पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स जम्हि इत्थीवेदो खीणो तम्हि चेव णवुंसयवेदेण उवट्ठिदस्स इत्थवेद-णवुंसयवेदा च दो वि खिज्जंति। तदो अवगतवेदो सत्त कम्मंसे खवेदि। सत्तण्हं कम्माणं तुल्ला खवणद्धा। सेसेसु पदेसु जधा पुरिसवेदेण उवट्ठिदस्स अहीणमदिरित्तं तत्थ णाणत्तं।

[11]जाधे चरिमसमयसुहुमसांपराइओ जादो ताधे णामा-गोदाणं ट्ठिदिबंधो अट्ठ-मुहुत्ता। वेदणीयस्स ट्ठिदिबंधो बारसमुहुत्ता। तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिबंधो अंतोमुहुत्तं।

---

१. पृ० १०९। २. पृ० ११०। ३. पृ० १११। ४. पृ० ११२। ५. पृ० ११३।
६. पृ० ११४। ७. पृ० ११४। ८. पृ० ११५। ९. पृ० ११६। १०. पृ० ११७।
११. पृ० ११८।

तिण्हं घादिकम्माणं ट्ठिदिसंतकम्मं अंतोमुहुत्तं । णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्म-मसंखेज्जाणि वस्साणि । मोहणीयस्स ट्ठिदिसंतकम्मं णस्सदि ।

[1]तदो पढमसमयखीणकसायो जादो । [2]ताधे चेव ट्ठिदि-अणुभाग- पदेसस्स अबंधगो । [3]एवं जाव चरिमसमयाहियावलियछदुमत्थो ताव तिण्हं घादिकम्माण-मुदीरगो । [4]तदो दुचरिमसमये णिद्दा-पयलाणमुदयसंतवोच्छेदो । [5]तदो णाणावरण-दंसणावरण-अंतराइयाणमेगसमयेण संतोदयवोच्छेदो । [6]एत्थुद्देसे खीणमोहद्धाए पडिबद्धा एक्का मूलगाहा विहासियव्वा । तिस्से समुक्कित्तणा ।

(१७९) खीणेसु कसायेसु य सेसाणं के व होंति वीचारा ।
खवणा वा अक्खवणा वा बंधोदयणिज्जरा वापि ॥२३२॥

[7]संपहि एत्थुद्देसे एक्का संगहणमूलगाहा विहासियव्वा । तिस्से समुक्कित्तणा

(१८०) [8]संकामणमोवट्टण-किट्टीखवणाए खीणमोहंते ।
खवणा य आणुपुव्वी बोद्धव्वा मोहणीयस्स ॥२३३॥

[9]तदो अणंतकेवलणाण-दंसण-वीरियजुत्तो जिणो केवली सव्वण्हो सव्वदरिसी भवदि सजोगिजिणो त्ति भण्णइ । [10]असंखेज्जगुणाए सेढीए पदेसग्गं णिज्जरेमाणो विहरदि त्ति । [11]चरित्तमोहक्खवणा त्ति समत्ता । [12]तदो अणंतकेवलणाण-दंसण-वीरियजुदो जिणो केवली सव्वण्हो सव्वदरिसी भवदि सजोगिजिणो त्ति भण्णइ ।

[ब] खवणाहियारचूलिया

[13]अणमिच्छमिस्ससम्मं अट्ठ णवुंसित्थिवेदछक्कं च ।
पुंवेदं च खवेदि दु कोहादीए च संजलणे ॥१॥
[14]अथ थीण गिद्धिकम्मं णिद्दाणिद्दा य पयलपयला य ।
अथ णिरय-तिरियणामा झीणा संछोहणादीसु ॥२॥
[15]सव्वस्स मोहणीयस्स आणुपुव्वी य संकमो होइ ।
लोभकसाये णियमा असंकमो होइ बोद्धव्वो ॥३॥
संछुहदि पुरिसवेदे इत्थिवेदं णवुंसयं चेव ।
सत्तेव णोकसाये णियमा कोधम्हि संछुहदि ॥४॥

---

१. पृ० ११९ । २. पृ० १२० । ३. पृ० १२३ । ४. पृ० १२४ । ५. पृ० १२५ ।
६. पृ० १२६ । ७. पृ० १२८ । ८. पृ० १२८ । ९. पृ० १३० । १०. पृ० १३६ ।
११ पृ० १४४ । १२. पृ० १३० । १३. पृ० १३९ । १४. पृ० १४० । १५. पृ० १४१ ।

कोहं संछुहइ माणे माणं मायाए णियमसा छुहइ ।
मायं च छुहइ लोहे पडिलोमो संकमो णत्थि ॥५॥
जो जम्हि संछुहंतो णियमा बंधम्हि होइ संछुहणा ।
बंधेण हीणदरगे अहिये वा संकमो णत्थि ॥६॥
[1]बंधेण होइ उदयो अहिओ उदयेण संकमो अहिओ ।
गुणसेढि अणंतगुणा बोद्धव्वा होइ अणुभागे ॥७॥
बंधेण होइ उदयो अहिओ उदयेण संकमो अहिओ ।
गुणसेढि असंखेज्जा च पदेसग्गेण बोद्धव्वा ॥८॥
उदयो च अणंतगुणो संपहि बंधेण होइ अणुभागे ।
से काले उदयादो संपहि बंधो अणंतगुणो ॥९॥
[2]चरिमे बादररागे णामागोदाणि वेदणीयं च ।
वस्सस्संतो बंधदि दिवसस्संतो य जं सेसं ॥१०॥
जं चावि संछुहंतो खवेइ किट्टिं अबंधगो तिस्से ।
सुहुमम्हि संपराये अबंधगो बंधमियराणं ॥११॥
[3]जाव ण छदुमत्थादो तिण्हं घादीण वेदगो होइ ।
अथ अंतरेण खइयो सव्वण्हू सव्वदरिसी य ॥१२॥

[ख] पच्छिमखंध-अत्थाहियार

[4]पच्छिमक्खंधे त्ति अणियोगद्दारे तम्हि इमा मग्गणा । [5]अंतोमुहुत्ते आउगे सेसे तदो आवज्जिदकरणे कदे तदो केवलिसमुग्घादं करेदि । [6]पढमसमये दंडं करेदि । [7]तम्हि ट्ठिदीए असंखेज्जे भागे हणइ । [8]सेसस्स च अणुभागस्स अप्पसत्थाणमणंता भागे हणदि । [9]तदो विदियसमए कवाडं करेदि । तम्हि सेसिगाए ट्ठिदीए असंखेज्जे भागे हणइ । [10]सेसस्स च अणुभागस्स अप्पसत्थाणमणंते भागे हणइ । तदो तदियसमये मंथं करेदि । [11]ट्ठिदि-अणुभागे तहेव णिज्जरयदि । तदो चउत्थसमये लोगं पूरेदि । [12] लोगे पुण्णे एक्का वग्गणा जोगस्स त्ति समजोगो त्ति णायव्वो । लोगे पुण्णे अंतोमुहुत्तं ट्ठिदिं ठवेदि । [13]संखेज्जगुणमाउआदो । एदेसु चदुसु समएसु अप्प-

---

१. पृ० १४२ । २. पृ० १४३ । ३. पृ० १४५ । ४. पृ० १४७ । ५. पृ० १४९ ।
६. पृ० १५१ । ७. पृ० १५२ । ८. पृ० १५३ । ९. पृ० १५४ । १०. पृ० १५५ ।
११. पृ० १५६ । १२. पृ० १५७ । १३. पृ० १५८ ।

सत्थकम्मंसाणमणुभागस्स अणुसमय-ओवट्टणा । [1]एगसमइओ ट्ठिदिखंडयस्स घादो । [2]एत्तो सेसिगाए ट्ठिदीए संखेज्जे भागे हणइ । सेसस्स च अणुभागस्स अणंते भागे हणइ । एत्तो पाए ट्ठिदिखंडयस्स अणुभागखंडयस्स च अंतोमुहुत्तिया उक्कीरणद्धा ।

[3]एत्तो अंतोमुहुत्तं गंतूण बादरकायजोगेण बादरमणजोगं णिरुंभइ । [4]तदो अन्तोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण बादरवचिजोगं णिरुंभइ । तदो अन्तोमुहुत्तेण बादर-कायजोगेण बादर-उस्सासणिस्सासं णिरुंभइ । [5]तदो अन्तोमुहुत्तेण बादरकायजोगेण तमेव बादरकायजोगं णिरुंभइ ।

[6]तदो अन्तोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुममणजोगं णिरुंभइ । तदो अंतोमुहुत्तेण सुहुमकायजोगेण सुहुमवचिजोगं णिरुंभइ । तदो अंतोमुहुत्तेण सुहुम-कायजोगेण सुहुमउस्सासं णिरुंभइ । [7]तदो अन्तोमुहुत्तं गंतूण सुहुमकायजोगेण सुहुम-कायजोगं णिरुंभमाणो इमाणि करणाणि करेदि ।

पढमसमये अपुव्वफद्दयाणि करेदि पुव्वफद्दयाणं हेट्ठदो । [8]आदिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डदि । जीवपदेसाणं च असंखेज्जदिभागमो-कड्डदि । [10]एवमंतोमुहुत्तमपुव्वफद्दयाणि करेदि । [9]असंखेज्जगुणहीणाए सेढीए जीवपदे-साणं [11]च असंखेज्जगुणाए सेढीए । [12]अपुव्वफद्दयाणि सेढीए असंखेज्जदिभागो । सेढिवग्गमूलस्स वि असंखेज्जदिभागो । पुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो सव्वाणि अपुव्वफद्दयाणि । [13]एत्तो अन्तोमुहुत्तं किट्टीओ करेदि । [14]अपुव्वफद्दयाणमादिवग्गणाए अविभागपडिच्छेदाणमसंखेज्जदिभागमोकड्डिज्जदि । जीवपदेसाणमसंखेज्जदिभाग-मोकड्डदि । [15]एत्थ अन्तोमुहुत्तं करेदि किट्टीओ असंखेज्जगुणाए सेढीए । जीवपदेसा-णमसंखेज्जगुणाए सेढीए । किट्टीगुणगारो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । [16]किट्टीओ सेढीए असंखेज्जदिभागो । अपुव्वफद्दयाणं पि असंखेज्जदिभागो । किट्टीकरणद्धे णिट्ठिदे से काले पुव्वफद्दयाणि अपुव्वफद्दयाणि च णासेदि । अन्तोमुहुत्तं किट्टीगदजोगो होदि । सुहुमकिरियापडिवादिझाणं झायदि । [17]किट्टीणं चरिमसमये असंखेज्जे भागे णासेदि । [18]जोगम्हि णिरुद्धम्हि आउअ-समाणि कम्माणि होंति । तदो अन्तोमुहुत्तं सेलेसिं य पडिवज्जदि । [19]समुच्छिण्णकिरियमणियट्टिसुक्कज्झाणं झायदि । सेलेसिं अद्धाए झीणाए सव्वकम्मविप्पमुक्को एगसमएण सिद्धिं गच्छइ ।

●

१. पृ० १५९ । २. पृ० १६१ । ३. पृ० १६२ । ४. पृ० १६३ । ५. पृ० १६४ ।
६. पृ० १६५ । ७. पृ० १६६ । ८. पृ० १६७ । ९. पृ० १६८ । १०. पृ० १६९ ।
११. पृ० १६९ । १२. पृ० १७० । १३. पृ० १७१ । १४. पृ० १७२ । १५. पृ० १७४ ।
१६. पृ० १७६ । १७. पृ० १८० । १८. पृ० १८२ । १९. पृ० १८४ ।

२. अवतरणसूची

●

३. ऐतिहासिक-नामसूची

४. ग्रन्थ-नामोल्लेख

५. न्यायोक्ति

६. उपदेशभेद

१५८ एत्थ दुवे उवएसा अत्थि त्ति के वि भणंति। तं कथं?

महावाचयाणमज्जमंखुखमणाणमुवदेसेण लोगे पूरिदे आउगसमं णामा-गोदवेदणीयाणं ठिदिसंतकम्मं ठवेदि महावाचयाणं णागहत्थिखवणाणमुवएसेण लोगे पूरिदे णामा-गोद-वेदणीयाणं ट्ठिदिसंतकम्ममंतोमुहुत्त-पमाणं होदि। होंतं पि आउगादो संखेज्जगुणमेत्तं ठवेदि त्ति। णवरि एसो वक्खाणसंपदाओ चुण्णिसुत्त-विरुद्धो। चुण्णिसुत्ते मुत्तकंठमेव संखेज्जगुणमाउआदो त्ति णिद्दिट्ठत्तादो। तदो पवाइज्जंतोवएसो एसो चेव पहाणभावेणावलंबेयव्वो, अण्णहा सुत्तपडिणियत्तावत्तीदो।

●

शुद्धिपत्र

जयधवला भाग १

पुराना संस्करण

पृष्ठ	पंक्ति	प्रश्न या सुझाव	समाधान
९	१६	"सो ऐसा भी निश्चय नहीं करना चाहिए", इसकी जगह 'सो ऐसा भी निश्चय नहीं करना चाहिए कि सरागसंयम ही गुणश्रेणिनिर्जरा का कारण है।' ऐसा पाठ चाहिए। (नवीन संस्करण पृ० ८ पं० १५)	यह वाक्य आचार्य ने इस अपेक्षा से लिखा है कि सरागसंयम के काल में जो रत्नत्रयरूप आत्म-परिणाम होता है वह असंख्यातगुणी कर्मनिर्जरा का कारण है। उस संयम में जितना रागांश है वह बन्ध का हेतु है, इसलिए उपचार से सरागसंयम को भी कर्मनिर्जरा का कारण कहा गया है। परमार्थ से देखा जाए तो रत्नत्रय-परिणाम स्वयं होता है और उस समय कर्म-निर्जरा स्वयं होती है, ऐसा इनमें अविनाभाव सम्बन्ध है। इस अपेक्षा से रत्नत्रय कर्म-निर्जरा का कारण है, यह यहाँ विवक्षित है। उसमें उपचार करके यहाँ सरागसंयम को भी कर्मनिर्जरा का कारण कहा गया है।
२४	१४	"केवलज्ञानावरण कर्म केवलज्ञान का पूरी तरह से घात नहीं कर सकता है," इस कथन की जगह 'केवलज्ञानावरण कर्म ज्ञान का पूरी तरह घात नहीं कर सकता है'; ऐसा हो तो ठीक है। (नवीन संस्करण पृ० २१, पं० २६-२७)	सामान्य ज्ञानशक्ति का कभी घात होता नहीं, इसीलिए मूल में जो कथन आया है, वह ठीक है। उसी के अनुसार हमने उक्त वाक्य लिखा है। उसमें विवाद नहीं होना चाहिए।
५८	१९	"यदि जीव और शरीर में एक क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्ध नहीं माना जायगा तो जीव के गमन करने पर शरीर को गमन नहीं करना चाहिए।" यहाँ 'एक क्षेत्रावगाहरूप सम्बन्ध' की जगह 'बन्ध-सम्बन्ध'; ऐसा होना चाहिए। (नवीन संस्करण पृ० ५२, पं० २७-२८)	यहाँ एक क्षेत्रावगाह के विषय में जो शंका उपस्थित की गई है वह ठीक होकर भी प्रकरण के अनुसार उसका खुलासा हो जाता है। वह इस प्रकार है कि निमित्त-नैमित्तिकरूप से एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध है, इतना यहाँ विशेष जानना चाहिए। यहाँ जीव का कर्म के साथ बन्ध, उदय आदि रूप निमित्त-नैमित्तिक एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध है और धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्यों का जीव-पुद्गल के गति, स्थिति और अवगाह में निमित्त-नैमित्तिकरूप से एक क्षेत्रावगाह सम्बन्ध है। यहाँ कालद्रव्य की अपेक्षा कथन नहीं किया। प्रकरण के अनुसार यह उक्त संशोधन का खुलासा है। जीव और कर्म का बन्ध की अपेक्षा जो एकत्व कहा गया है वह असद्भूत व्यवहार नय से ही कहा गया है, परमार्थ से नहीं।

पुराना संस्करण

पृष्ठ	पंक्ति	प्रश्न या सुझाव	समाधान
६३	१४	यहाँ "अर्थात् स्थितिबन्ध का अभाव" के स्थान पर 'अर्थात् स्थिति का क्षय', होना चाहिए। इसी तरह पं० १५-१६ में "अर्थात् नवीन कर्मों में स्थिति नहीं पड़ती है", इसके स्थान पर 'अर्थात् स्थिति का क्षय होता है', ऐसा चाहिए।	शंकाकार ने जो शंका उपस्थित की है वह इस अपेक्षा से ठीक नहीं है। क्योंकि वहाँ मूल में उद्धृत गाथा का अर्थ मात्र किया गया है। यहाँ भाई कहना चाहते हैं कि स्थिति के क्षय से कर्मों का क्षय होता है, सो केवल स्थिति के ही क्षय से कर्मों का अभाव नहीं होता। परन्तु प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशों के बन्ध के अभाव से कर्मों का क्षय होता है। यहाँ बन्ध से मतलब निमित्त-नैमित्तिकरूप से जीव के साथ चिरकाल से बन्ध को प्राप्त हुए कर्म लेना चाहिए; यहाँ नवीन बन्ध से मतलब नहीं है।
६७	१०	"यदि कहा जाय कि केवली अभूतार्थ का प्रतिपादन करते हैं ...... ।" यहाँ 'अभूतार्थ' के स्थान पर 'असत्य' होना चाहिए। [नवीन संस्करण पृ० ६० पं० २०]	यहाँ अभूतार्थ शब्द असत्य के अर्थ में ही आया है, इसलिए जिज्ञासुओं को वैसा ही समझना चाहिए। सुझाव प्रदाता ने जो समयसार गाथा ४६ का उद्धरण देकर अपने कथन की पुष्टि करनी चाही है वह ठीक नहीं है। क्योंकि केवली भगवान् ने जैसा ज्ञेय है वैसा ही जाना है।
१०५	१४	यहाँ इस पंक्ति में 'शुद्धयोग' शब्द जो छपा है वह नहीं होना चाहिए। [नवीन संस्करण पृ० ९६ पं० १३]	इस सम्बन्ध में "शुद्धमनोवाक्कायक्रियाः" इस वाक्य के आधार पर शुद्ध-योग यह अर्थ [गाथा का अर्थ करते हुए] किया गया है। यह तो हम जानते हैं कि योग शुभ या अशुभ दो ही प्रकार का होता है तथा वह औदयिकभाव स्वरूप है, यह भी हम जनते हैं। पर प्रकृत में शुभ उपयोग के साथ शुद्ध योग यह अर्थ गाथा से फलित होने से हमने वैसा ही अर्थ किया है।
२३२	१७-२१	"एक समयवर्ती पर्याय अर्थपर्याय है और चिरकालस्थायी पर्याय व्यञ्जनपर्याय है"; क्या यह हमारा चिन्तन ठीक है; संक्षेप में समझाइए। [नवीन संस्करण पृ० २११ पं० १९-२३]	इस विषय में हमारा इतना कहना है कि पर्याय चाहे अर्थपर्याय हो या व्यञ्जनपर्याय हो, वह प्रत्येक समय में बदलती है। व्यंजनपर्याय को जो चिरस्थायी कहा गया है वह प्रत्येक समय में होने वाली पर्यायों में सदृशपने की विवक्षा से ही कहा गया है। ऐसा ही अन्यत्र जानना।

पुराना संस्करण

पृष्ठ	पंक्ति	प्रश्न या सुझाव	समाधान
२५१	५-६	"कार्य की पूर्ववर्ती पर्याय को प्रागभाव और उत्तरवर्ती पर्याय को प्रध्वंसाभाव कहते हैं"; इसकी जगह ऐसा लिखना उचित होगा :—'कार्य से पूर्ववर्ती पर्याय में कार्य का प्रागभाव रहता है तथा कार्य से उत्तरकालवर्ती पर्याय में कार्य का प्रध्वंसाभाव होता है'। [नवीन संस्करण पृ० २२७ पं० ३१-३२]	जो पुस्तक में छपा है वह संक्षिप्त है। विस्तृत खुलासा इस प्रकार है—अव्यवहित पूर्ववर्ती पर्याय-युक्त द्रव्य को प्रागभाव कहते हैं और अव्यवहित उत्तरपर्याय युक्त द्रव्य को कार्य कहते हैं। पूर्ववर्ती पर्याययुक्त द्रव्य का अव्यवहित उत्तरकालवर्ती पर्याय-युक्त द्रव्य प्रध्वंसाभाव है।
२६२	९-१०	द्रव्यार्थिक नयों का विषय मुख्यरूप से द्रव्य होते हुए भी गौणरूप से पर्याय भी लिया गया है। सुझाव :—द्रव्यार्थिक नय का विषय गौणरूप से भी पर्याय नहीं है। [नवीन संस्करण पृ० २३७ पं० ३०-३१]	वर्तमानग्राही नैगम नय की दृष्टि को भी संगृहीत करने के अभिप्राय से ही हमने यह वाक्य लिखा है कि द्रव्यार्थिक नय का विषय मुख्यरूप से द्रव्य होते हुए भी गौणरूप से पर्याय भी लिया गया है।
२६४	५	में "सुद्धे" के स्थान मे 'असुद्धे' होना चाहिए। [नवीन संस्करण पृ० २४० पं० ४]	सुझाव ठीक है। पर प्रतियों में सुद्धे पाठ उपलब्ध हुआ, इसलिये वैसा रहने दिया है
२६६	४	§ २१६ से नया पेरा नहीं होना चाहिए [नवीन संस्करण पृ० २४१]	विषय स्फोट का होने से नया पेरा किया गया है।
२८९	४	मूल पाठ में 'भवा' है, किन्तु भवा के पश्चात् कोष्ठक में "भावा" बढ़ा दिया है। अर्थ करते हुए पंक्ति २१ में भव न लिखकर भाव लिख दिया है; सो क्यों? [नवीन संस्करण पृ० २६३ पं० २]	यहाँ प्रागभाव के विनाश की विवक्षा होने से द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव की अपेक्षा कथन करना मुख्य है। इसलिए भव के स्थान में भाव, यह संशोधन किया है। ऐसा करने पर गाथा से कोई विरोध भी नहीं आता; क्योंकि गाथा में जिन प्रकृतियों का उदय भव को निमित्त करके होता है, यह दिखाना मुख्य है। यहाँ वह विवक्षा नहीं है।
२९४	२९	"पदार्थ की" के स्थान पर 'कार्य की' होना चाहिए। [नवीन संस्करण पृ० २६८ पं० २-४]	दृष्टान्त को ध्यान में रखकर 'पदर्थ' अर्थ किया है। उसके स्थान में कार्य पद स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है।
३५९		पंक्ति १ में "आवरणस्स" के स्थान पर 'आवारयस्स' पद चाहिए तथा पंक्ति ११ में "आवरण का" की जगह 'आवारक का'; ऐसा पाठ होना ठीक लगता है। [नवीन संकरण पृ० ३२६-२७-२८]	प्रकृत में आवरण से ही आवरण करने वाले का ग्रहण हो जाता है, इसलिए मूलपाठ में संशोधन नहीं किया; मूल प्रति के अनुसार ही पाठ रहने दिया है।

पुराना संस्करण

पृष्ठ	पंक्ति	प्रश्न या सुझाव	समाधान
४०१	१३-१५	"त्रसनाली के चौदह भागों में से कुछ कम ६ भाग और एक भाग, दो भाग आदि रूप जो स्पर्श कहा है वह क्रम से सामान्य नारकी और दूसरी, तीसरी आदि पृथिवियों के नारकियों का अतीतकालीन स्पर्शन जानना चाहिए।" [नवीन संस्करण पृ० ३६६ पं० १९] प्रश्न—यह अतीतकालीन स्पर्शन किस अपेक्षा से बनेगा ?	मारणान्तिक समुद्घात तथा उपपाद की अपेक्षा यह अतीतकालीन स्पर्शन जानना चाहिए।
४०३	१४-१५	"मारणांतिक और उपपाद-पद-परिणत उक्त जीव ही त्रस नाली के बाहर पाये जाते हैं, इस बात का ज्ञान कराने के लिए उक्त जीवों का अतीतकालीन स्पर्शन दो प्रकार का कहा है"। [नवीन संस्करण पृ० ३६८] कृपया इसका खुलासा करें	खुलासा इस प्रकार है–मारणांतिक समुद्घात और उपपात परिणत उक्त जीव त्रसनाली के बाहर भी पाए जाते हैं इसका ज्ञान कराने के लिए उक्त जीवों का अतीतकालीन स्पर्शन सर्व लोक कहा है और विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा त्रसनाली के चौदह भागों में से ८ भाग स्पर्शन कहा है। इस प्रकार अतीतकालीन स्पर्शन दो प्रकार का कहा है।
४०३	२६-२९	यहाँ दूसरे विशेषार्थ में लिखा है–"वैक्रियिकशरीर नाम कर्म के उदय से जिन्हें वैक्रियिक शरीर प्राप्त है उनका मारणांतिक समुद्घात त्रस नाली के भीतर मध्यलोक से नीचे ६ राजू और ऊपर ७ राजू क्षेत्र में ही होता है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए यहाँ अतीतकालीन स्पर्शन दो प्रकार का कहा है। [नवीन संस्करण पृ० ३६८ पं० २६-२९] कृपया स्पष्ट खुलासा करिए।	बात यह है कि वैक्रियिक शरीर वालों द्वारा मारणांतिक समुद्घात की अपेक्षा त्रसनाली के भीतर मध्यलोक से नीचे ६ राजू और ऊपर ७ राजू; इस तरह तेरह राजू स्पर्शन बनता है। तथा विहारवत् स्वस्थान की अपेक्षा स्पर्शन कुछ कम ८ राजू [ऊपर ६ राजू, नीचे ८ राजू] बनता है। इस तरह कुछ कम १३ राजू तथा कुछ कम ८ राजू। इस तरह अतीतकालीन स्पर्शन दो प्रकार का बन जाता है। शेष सुगम है।

जयधवला भाग २

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६	२२	मरण और व्याघात की	मरण की।
५१	६	सुझाव—"संजदा० वत्तव्वं" के स्थान पर 'संजदा० (जहाक्खाद०) वत्तव्वं' चाहिए।	मूल प्रति में संजदा० ऐसा पाठ है। उसके स्थान में यह सुझाव है। समाधान यह है कि मणपज्जव० संजदा० ऐसा पाठ है। इसमें मणपज्जव के आगे '०' ऐसा संकेत है। उससे जैसे केवलज्ञानियों का ग्रहण हो जाता है उसी प्रकार संजदा० के आगे जो '०' ऐसा संकेत है उससे अपनी विशेषतासहित संयत के उत्तर-भेदों का भी ग्रहण हो जाता है; क्योंकि यहाँ उक्त जीवों में यथासम्भव सभी मार्गणाओं में मोहनीय की विभक्ति और अविभक्ति से युक्त संख्यात जीव ही होते हैं।
५६	५	'सुहुमबाउ० अपज्ज० वणप्फदि' के स्थान में सुझाव :— "सुहुमबाउ० अपज्ज० [बादरवणप्फदि-पत्तेय० बादरवणप्फदिपत्तेय अपज्ज० बादरणिगोदपदिट्ठिद० बादरणिगोद-पदिट्ठिद-अपज्ज०] वणप्फदि" ऐसा पाठ चाहिए।	सुझाव ठीक है। मूलताड़प्रतियों से ही इसका निर्णय हो सकता है कि यह सुझाया गया अंश जोड़ना ठीक है, अथवा अन्य मार्गणाओं में इन्हें गर्भित समझा गया है।
५८	१०	मनुष्यों में मोहनीय विभक्ति वाले मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनी कितने	सामान्य मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियों में मोहनीय विभक्ति वाले कितने
६३	४	"सुहुमपुढवि०" के स्थान में सुझाव— '[बादरवणप्फदि पत्तेय० बादरवणप्फदि पत्तेय अपज्ज० बादरणिगोदपदिट्ठिद० बादरणिगोदपदिट्ठिद अपज्ज०] सुहुम-पुढवि०' ऐसा पाठ चाहिए।	पृष्ठ ५६ पं०५ के सुझाव का जो समाधान किया है वही यहाँ पर समझना चाहिए।
६८	४	"खेत्तभंगो।" के स्थान में सुझाव :— 'खेत्तभंगो [वेउव्विय-विहत्ति० केवडिय० खे० पोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदिभागो; अट्ठ-तेरह-चोद्दस भागा वा देसूणा]'	मूल ताडपत्रीय प्रतियों में सुझाव के अनुसार पाठ होना चाहिए तभी वह ग्राह्य हो सकता है। अन्यथा ओघ के अनुसार जानना चाहिए। किन्तु स्पर्शन प्ररूपणा में वैक्रियिककाययोगियों का स्पर्शन मूल में छूटा हुआ मान लें तो सुझाव के अनुसार "वेउव्विय-विहत्ति० केव० खेत्तं फोसिदं ? लोगस्स असंखेज्जदि-भागो, अट्ठ-तेरस-चोद्दसभागा वा देसूणा", यह स्पर्शन बन जायगा। यह ताडपत्रीय प्रतियों से विशेष मालूम पड़ सकता है।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९५	१२	पुरुष वेद के समान है।	पुरुषवेदी के समान है।
१०१	२९	मिथ्यात्व को	सासादन को
१०८	२४-२५	विशेष की अपेक्षा ···अन्तर्मुहूर्त है।	× × ×
१२६	१	एवं मणुसपज्ज०	एवं मणुस-मणुसपज्ज०
१३०	१४	पुरुषवेद के	पुरुषवेदी के
१३४	१०	कृष्ण आदि तीन	कापोत, पीत, पद्म; ये तीन
१३४	२०	शेष का	शेष दो का
१५१	४	एवं कायजोगि-ओरालियमिस्स०	एवं कायजोगि-ओरालिय-ओरालिय-मिस्स०
१५१	२२	इसी प्रकार काययोगी, औदारिक मिश्रकाययोगी	इसी प्रकार काययोगी, औदारिककाययोगी, औदारिक-मिश्रकाययोगी
१५८	४	एवं पंचिंदिय	एवं पढमपुढवि-पंचिंदिय-
१५८	२२	इसी प्रकार पंचेन्द्रिय	इसी प्रकार प्रथम पृथिवी, पंचेन्द्रिय
१८०	२३	अविभक्ति वाले	विभक्ति वाले
१९४	४	[अट्ठक०]	बारसक०
१९४	२०	आठ कषाय	बारह कषाय
२२८	२३	किसी भी जीव के	किसी भी मिथ्यादृष्टि जीव के
२२९	९	एवं सामाइय-छेदोव०	एवं संजद-सामाइय-छेदोव०
२२९	३१	इसी प्रकार सामायिक	इसी प्रकार संयत सामायिक
२४२	२२	स्त्री वेद के ···किसी एक के	पुरुष वेद के
२४२	२५	स्त्रीवेद	स्त्रीवेद या नपुंसकवेद
२४२	२८	अतः अन्य वेद	अतः पुरुषवेद
२४३	२८	या नपुंसकवेद	×
२४३	३०	दो समय	एक समय
२४३	३१	दो समय	एक समय
२४९	२६	आयु के	काल के
२५५	१८	जीव असंख्यातवे	जीव पल्य के असंख्यातवें
२५८	५	सम्यक् प्रकृति की	सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की
२५८	११	सम्यग्मिथ्यात्व की	सम्यक्त्व प्रकृति की
२६०	१६	काल ओघ के	काल तिर्यञ्च ओघ के
२६०	२९	सम्यग्मिथ्यात्व	सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व-
२६१	१	सम्यग्मिथ्यात्व की	सम्यक् प्रकृति की
२६५	४-५	ओघ के समान	देव ओघ के समान
२७५	२४	मिथ्यात्व में	सासादन में
२८७	१४	तीनों	सब
२८७	१८	तीनों	सब
२८७	२२	तीनों	सब
२९२	२३	तीनों लेश्या वालों के	×

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१२	३	संयतासंयत	×
३१२	९	संयतासंयत	×
३१५	११	अनाहारक काययोगियों में	अनाहारकों में
३१५	२४	४९०४९	५९०४९
३१५	३०	२३	१३
३२०	१५	योनिमती	योनिनी (इसी प्रकार सर्वत्र योनिमती के स्थान में योनिनी समझना, क्योंकि 'तिर्यंच' पद के साथ 'योनि' पद लगाने का नियम है। अतः स्त्रीवेदी तिर्यंचों के लिये तिर्यंच्योनिनी कहा जायेगा।
३२०	१९	ज्योतिषी देवों तक	लब्ध्यपर्याप्तकों को छोड़कर ज्योतिषी देवों तक
३२८	३०	स्त्रीवेदी मनुष्यों	मनुष्यिनियों (स्त्रीवेदी मनुष्यों की संज्ञा ही मनुष्यिनी है। आगे भी इसी प्रकार समझना चाहिये।)
३२८	११	कृतकृत्यवेदक सम्य०	कृतकृत्यवेदक और क्षायिकसम्य०
३२८	१२	२२	२२ व २१
३४५	२५	और नपुंसकवेद	×
३४८	३	तेवीस-तेरस	तेवीस-बावीस-तेरस (स्त्रीवेदी का अर्थ द्रव्य से पुरुष हो और भाव से स्त्रीवेदी, ऐसा जानना।)
३४८	१४	एक मास पृथक्त्व	मास पृथक्त्व (एक मास पृथक्त्व का भी वही अर्थ है। फिर भी स्पष्टता के लिये संशोधन में ले लिया है।)
३४८	२६	तेईस-तेरह	तेईस-बाईस-तेरह
३४९	२३	और नपुंसकवेदी	×
३४९	२४-२५	तथा नपुंसकवेदी जीव वर्षपृथक्त्व	×
३५४	३१	२१	×
३५५	८	सात	छह
३६४	२०	दो ... तीन	तीन ... दो
३७६	११	तथा सौधर्म	तथा सामान्य देव व सौधर्म
३७९	३	संखेज्जगुणा	असंखेज्जगुणा।
३७९	१५	संख्यातगुणे	असंख्यातगुणे
३८२	७	सव्वत्थोवा एकवि०, चउवीसवि० संखे० गुणा, एकवीस०	सव्वत्थोवा एकवीस० चउवीसवि० संखे० गुणा एकविह०
३८२	२४-२५	एक विभक्ति वाले .... इनसे इक्कीस	इक्कीस विभक्ति वाले .... इनसे एक०
३८६	४	सत्तम	सत्त०
३८६	१७	सातवीं पृथिवी के	सातों पृथिवियों के
३९३	२७	अपर्याप्त	पर्याप्त
३९७	२३	है। अवस्थित	है। अल्पतर विभक्ति का जघन्य अन्तर दो समय कम दो आवलि और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध-पुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है। अवस्थित
३९७	३१	अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रूप से	×

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४०७	१८	कृष्ण आदि तीन	पीत आदि तीन
४१०	१०	अपज्ज०	अपज्ज० तसअपज्ज०
४१०	३१	अपर्याप्तक जीवों में	अपर्याप्तक तथा त्रस अपर्याप्तक जीवों में
४११	८	मणपज्जव० सामा-	मणपज्जव० संजद० सामा-
४११	२८	मन:पर्ययज्ञानी	मन:पर्ययज्ञानी, संयत, सामा-
४१६	८	अंतोमुहुत्तं	अंतोमुहुत्तं। एवं अपगदवे०। णवरि अप्प० जहु० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया।
४१६	२८	अन्तर्मुहूर्त है।	अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अपगतवेदी के जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि अल्पतर विभक्ति स्थान वाले जीवों का जघन्य एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है।
४२२	२९	पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य	पंचेन्द्रिय तिर्यंच सामान्य
४२७	४	सण्णि०	असण्णि०
४२७	१३	संज्ञी	असंज्ञी
४२८	१९	देव० विकलेन्द्रिय	देव, सभी एकेन्द्रिय, सभी विकलेन्द्रिय,
४४९	२९-३०	प्रारम्भ में पल्य....उद्वेलना करावें	प्रारम्भ में अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करावें
४५०	५	और पल्य का असंख्यातवाँ भाग कम	×
४५१	७	पज्जत्त-ओरालियमिस्स	पज्जत्त-तस अपज्ज० ओरालिय
४५१	२३	अपर्याप्त औदारिक-मिश्र	अपर्याप्त, त्रस अपर्याप्त, औदारिक-मिश्र
४५४	३	संखेज्जभागहाणी जहण्णुक्क०	संखेज्जभागहाणी-संखेज्जगुणहाणी जहण्णुक्क०
४५४	१५	संख्यातभागहानि का जघन्य	संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि का जघन्य
४५५	३	संजदासंजद०। चक्खु०	संजदासंजद०। असंजद तिरिक्खभंगो चक्खु०
४५५	१५	चाहिए। चक्षुदर्शनी	चाहिए। असंयत जीवों का तिर्यंचों के समान भंग है। चक्षुदर्शनी
४६०	३	एवं मणपज्जव०	एवं अपगदवेदी-मणपज्जव०
४६०	१५	इसी प्रकार मन:पर्ययज्ञानी	इसी प्रकार अपगतवेदी, मन:पर्ययज्ञानी
४६२	८	सण्णित्ति०	सुक्क० सण्णित्ति०
४६२	२४	संज्ञी जीवों का	शुक्ल लेश्या वाले और संज्ञी जीवों का
४६४	८	सण्णि	असण्णि
४६४	२६	संज्ञी	असंज्ञी
४६४	३०	असंख्यातवें भाग	संख्यातवें भाग
४६८	९	मिस्स०-आहार-मिस्स० अकसा०	मिस्स० आहार० आहारमिस्स० अपगदवेद० अकसा०
४६८	२८	योगी, आहारमिश्रकाययोगी, अकषायी	योगी, आहारककाययोगी, आहारकमिश्रकाययोगी अपगतवेदी, अकषायी
४६९	११	श्रुतज्ञानी	श्रुत अज्ञानी
४२८	१०	जहाक्खाद० उवसम०,	जहाक्खाद० अभवसि० उवसम०
४२८	२६	यथाख्यातसंयत-उपशम	यथाख्यातसंयत अभवसिद्धिक, उपशम
४२८	२९-३१	अभव्यों के....नहीं किया है।	×

जयधवला भाग ३

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	४	पत्तेय अपज्ज०- तेउ-	पत्तेयअपज्ज०- [सुहुमपुढवि० पज्जत्ताप[illegible] -आउ० पज्जत्तापज्जत्त०-] तेउ-
१०	१४	जलकालिक	जलकायिक
१०	१५	अग्निकायिक, वायुकायिक	सूक्ष्म पृथ्वीकायिक, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त, सूक्ष्मजलकायिक, सूक्ष्म जलकायिक पर्याप्त, सूक्ष्म जलकायिक अपर्याप्त, अग्निकायिक, वायुकायिक
११	३	बादरे इंदियपज्ज०- बादरपुढवि० बादर पुढविपज्ज०	बादरे इंदियपज्ज०- पुढवि, बादरपुढवि०- बादरपुढविपज्ज०- आउ०-
११	११	संयतासंयत	असंयत सम्यग्दृष्टि या संयतासंयत
११	२०	पर्याप्त, बादर पृथिवीकायिक	पर्याप्त, पृथ्वीकायिक, बादरपृथ्वीकायिक
११	२१	कायिक पर्याप्त, बादर जलकायिक	कायिक पर्याप्त, जलकायिक, बादरजलकायिक,
१२	२७	उत्कृष्ट	जघन्य
१८	१८	बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त	बादर एकेन्द्रिय तथा उसके पर्याप्त
१८	२७	उत्कृष्ट किसके.	उत्कृष्ट स्थिति किसके
१९	१४-१५	मोहनीय की स्थिति	मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति
१९	३१	घात करके	घात न करके
३१	२१	सत्त्वकाल एक समय कम	सत्त्वकाल एक समय है, अनुत्कृष्ट स्थिति का जघन्य सत्त्वकाल एक समय कम
४२	१५	स्थिति का जघन्य सत्त्वकाल	स्थिति का सत्त्वकाल
४६	३१	शेष	×
४६	३२	मिथ्यादृष्टि	सासादन सम्यग्दृष्टि
४७	३२-३३	(बीच में) ×	इस प्रकार कालानुगम समाप्त हुआ ।
४८	४	कायजोगि०	×
४८	१४	काययोगी	×
५०	१४	सत्ता-	पत्ता
५४	३४	मत्यज्ञानी, श्रतज्ञानी	मत्यज्ञानी श्रुताज्ञानी
७२	७	एवं पंचकाय-सुहुम-	एवं सुहुम
७२	३०-३१	पांचों स्थावर काय	×
७७	११	संयतासंयत के....इन गुणस्थानों को	संयतासंयत व शुक्ललेश्या वालों के .... इन मार्गणा स्थानों को
८३	२१-२२	और यहाँ मनुष्य जीव ही मरकर उत्पन्न होते हैं ।	और यह उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यादृष्टि मनुष्यों से मरकर उत्पन्न होने वाले जीवों के ही संभव है ।
८४	६	चक्खु०- ओहिदंसण०	चक्खु०- अचक्खु०- ओहिदंसण०
८४	२८	चक्षुदर्शनी अवधि	चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधि
११०	१२	सामान्य तिर्यञ्चों में	सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३४	२५	हानिवाले जीव सबसे....अवस्थान इन दोनों वाले जीव समान होते	हानि सबसे....अवस्थान दोनों समान होते
१३४	२६	हानिवाले जीवों से विशेष	हानि से विशेष
१३४	३२	अवस्थान वाले जीव सबसे	अवस्थान सबसे
१३४	३३	हानिवाले जीव संख्यात गुणे हैं।	हानि संख्यात गुणी है।
१३५	२२	अवस्थान वाले जीव सबसे	अवस्थान सबसे
१३५	२३	हानिवाले जीव असंख्यात गुणे हैं।	हानि असंख्यातगुणी है।
१३५	२९	अवस्थान इन तीनों वाले जीव समान हैं।	अवस्थान, ये तीनों समान हैं।
१४२	२८	अन्तिम काण्डक की	काण्डक की } यदि अन्तिम काण्डक की अन्तिम फालि के समय ही संख्यातभाग हानि होती तो अपगतवेदी के संख्यातभाग हानि का अन्तर अन्तर्मुहूर्त न कहते।
१४३	३२	अन्तिम काण्डक की	काण्डक की
१४७	१०	असंखे० भागहाणी	संखे० भागहाणी
१४७	२९	असंख्यातभाग हानि का	संख्यातभाग हानि का
१५०	१८	अन्तिम स्थिति-काण्डक की	स्थिति काण्डक की
२०९	१५	दो महिना में	×
२३५	३२	अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक पर्याप्त	अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर अग्निकायिक पर्याप्त
२३५	३३	वायुकायिक, बादर वायुकायिक पर्याप्त	वायुकायिक, बादर वायुकायिक, बादर वायुकायिक पर्याप्त
२५४	४	भवसि०- आहारए.	भवसि०- सण्णि० आहारए
२५४	१६	भव्य और	भव्य, संज्ञी, और
२६४	२०	असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय के	असंज्ञी के
२८०	२७	समय अन्तर्मुहूर्त	समय कम अन्तर्मुहूर्त
३७७	२१	पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के	पञ्चेन्द्रियों के
३७७	२८-३१	तथा स्त्रीवेद....कर लेना चाहिये	तथा स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवों का स्पर्श पञ्चेन्द्रियों के समान है।
४९९	५	[अज०]	× [“तं तु” का अर्थ महाबंध पुस्तक ३ में यह किया है “जघन्य भी होती है अजघन्य भी। यदि अजघन्य होती है है तो एक समय से लेकर पल्य के असंख्यातवें भाग तक]
४९९	१९	जीव के अप्रत्याख्यानावरण	जीव के मिथ्यात्व और अप्रत्याख्यानावरण
४९९	२०-२१	नियम से........या अजघन्य ?	×
४९९	३४	असंख्यातगुणी	असंख्यातवें भाग
५००	१०	किं ज० अज० ? अज०,	किं ज० अज० (भय एवं जुगुप्सा के सम्बन्ध में [अज] पत्र ५०३, ५०४, ५०७, ५०९, ५१४ पर भी बढ़ाया गया है, सब सातों जगह (अज०) लेखक से रहा गया हो ऐसा असंभव प्रतीत होता है। और (अज०) के बिना भी अर्थ ठीक हो जाता है)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५००	३०	नियम से अजघन्य होती है। जो	जघन्य भी होती है, अजघन्य भी। यदि अजघन्य होती है तो
५०२	१९-२०	स्थिति जघन्य होती है जो अपनी	स्थिति जघन्य भी होती है अजघन्य भी। यदि अजघन्य होती है तो वह अपनी ("तंतु" मूल में है। पत्र ५०१ § ८४९ कहा है कि मिथ्यात्व की जघन्य के)
५०३	१२	कि० ज० अज०	कि०ज० अज० ? (सभय बारह कषाय, भय जुगुप्सा जघन्य भी होते हैं अर्थात् भय जुगुप्सा बारह कषाय तीनों एक साथ जघन्य भी होते हैं)
५०४	११	कि ज० (अज०) ? अज,०	कि ज० अज० ?
५०४	१४	नियम से अजघन्य होती है जो अपनी	जघन्य भी होती है अजघन्य भी। यदि अजघन्य होती है तो वह अपनी
५०४	३२-३३	नियम से अजघन्य होती है, जो अपनी	जघन्य भी होती है अजघन्य भी। यदि अजघन्य होती है तो वह अपनी
५०५	३	संखे० गुणब्भहिया	असंखे गुणब्भहिया
५०५	१८	संख्यातगुणी	असंख्यातगुणी
५०७	८	कि० ज० (अज०) ? अज०, तं तु	कि० ज० अज० ?, तं तु
५०७	२८	नियम से अजघन्य होती है। फिर भी वह	जघन्य भी होती है। अजघन्य भी। यदि अजघन्य होती है तो वह
५०९	१०	कि० ज० [अज] ? अज०,	कि० ज० अज० ?
५०९	३०	नियम से अजघन्य होती है फिर भी वह	जघन्य भी होती है अजघन्य भी। यदि अजघन्य होती है तो वह
५१४	४	कि ज० (अजह०) ? अजह० तं तु०	कि ज० अजह० ? तं तु
५१४	२१	नियम से अजघन्य होती है। जो अपनी	जघन्य भी होती है, अजघन्य भी। यदि अजघन्य होती है तो वह अपनी
५३१	२३	संख्यातगुणी	असंख्यातगुणी
५३७	९	ज० ट्ठिदि० संखे० गुणा।	× यत्स्थिति विशेष अधिक होती है संख्यातगुणी नहीं होती। यहाँ पर तो वह ही शब्द है जो पत्र ५३७ पंक्ति ११ व पत्र ५३८ पंक्ति १ में हैं जिनका अर्थ ५३५ पंक्ति ४ के अनुसार नीचे शुद्ध किया जा रहा है। यहाँ पर इसका कोई प्रयोजन नहीं।
५३७	२७	इसमे यत्स्थिति विभक्ति संख्यातगुणी है।	×
५३७	३१	पर यत्स्थिति संख्यातगुणी है।	पर यह स्थिति विभक्ति संख्यातगुणी है, क्योंकि इसमें निषेकों के समयों का ग्रहण किया है।
५३८	१५-१६	,, ,,	,, नोट—पृष्ठ ५३५ पंक्ति ४ का जो अभिप्राय है वह ही यहाँ पर है, किन्तु यहाँ पर संक्षेप कर दिया है। किन्तु जो अर्थ ५३५ पंक्ति १९ में किया है वह यहाँ पर होना चाहिए।
५४३	१४	चक्खु० ओहिदंस०	चक्खु० [अचक्खु०-] ओहिदंस०
५४३	३३	चक्षुदर्शनवाले, अवधि-	चक्षुदर्शनवाले, अचक्षुदर्शनवाले, अवधि-

जयधवला भाग ४

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०	३४	भंग तिर्यंचों के	भंग पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के
३१	४	णवरि मणुसपज्ज०	णवरि मणुस-मणुसपज्ज०
३१	१२	मनुष्य इन	मनुष्यनी इन
३१	१५	मनुष्य पर्याप्तकों में	मनुष्य व पर्याप्तकों में
३३	३	असंखे० भागो । सम्मत्त-	असंखे० भागो । अवट्ठि० ओघं । सम्मत्त-
३३	२०	भागप्रमाण है । सम्यक्त्व	भाग प्रमाण है । अवस्थित स्थितिविभक्ति का काल ओघ के समान है । सम्यक्त्व
३६	२७	और अल्पतर	×
३६	२८	दो	तीन
५५	९	असंखेज्जा भागा	संखेज्जा भागा
५५	३६	असंख्यात	संख्यात
८९	१२ (कोष्टक ५)	नहीं हैं । यदि हैं तो भुज० अल्प० अव०	नही है । यदि है तो भुज० अल्प० अव० अवक्तव्य०
८९	१७ (कोष्टक ३)	,,	,,
१४४	२०	एक सागर पृथक्त्व	सागर पृथक्त्व
१४८	१६	मिथ्यात्व की स्थिति	मिथ्यात्व की जघन्य स्थिति
१६७	२५	संख्यातभाग हानि	असंख्यातभाग हानि
१६८	१८	असंख्यातवें	संख्यातवें
१७७	१७	अपर्याप्तकों के समान	पर्याप्तकों के समान
२१६	१२	मिच्छत्त० असंखे० गुणहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु०	×
२१६	१२	संखेज्जगुणहाणी०	असंखेज्जभागहाणी०
२१६	१३	उक्क० अंतोमु० । अणंताणु०	उक्क० अंतोमु० । मिच्छत्त० असंखे० गुणहाणी० जहण्णुक्क० अंतोमु० । अणंताणु०
२१६	३२	संख्यातगुणहानि का	असंख्यातभाग हानि का
२३१	४	सव्वेंदिय पुढवि०	सव्वे इंदिय [सव्वसुहुम]-पुढवि०
२३१	१६	सब एकेन्द्रिय, पृथिवकायिक	सब एकेन्द्रिय, सब सूक्ष्म, पृथ्वीकायिक
२८१	२६	स्वस्थान में	शंका—स्वस्थान में
२८१	२९	शंका—ऐसा रहते हुए संख्यात भाग हानि विभक्ति वालों से	ऐसा रहते हुए
२९६	२८	तथा सब उपरिम भाग भी	उससे सब उपरिम भाग
३००	२३-२४	असंख्यातवें भाग प्रमाण	असंख्यात बहुभाग प्रमाण
३१९	३४	स्थितिसत्कर्म	स्थिति सत्कर्मस्थान
३२२	२२	स्थितिसत्कर्म प्राप्त	स्थितिसत्कर्मस्थान प्राप्त

●

जयधवला भाग ५

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५	१२	जिसके	किसके
१६	२१	शरीरग्रहण के	शरीरपर्याप्ति के ग्रहण के
१७	२७	शरीरग्रहण के	शरीरपर्याप्ति के ग्रहण के
१९	८	उपरिम ग्रैवेयक में	देवों में
२१	२२	त्रस पर्याप्तक	त्रस अपर्याप्तक
२७	१९	अनुत्कृष्ट	उत्कृष्ट
२८	३४	उत्कृष्ट काल	जघन्य काल
३१	१३	अपनी अपनी	अपनी
३२	२०	अनुभाग से अधिक का बंध कर लिया	अनुभागबन्ध कर मरण कर लिया
३९	२२	अनन्तर नीचे उतर कर	अनन्तर नीचे सासादन में उतरकर
३९	२२-२३	साथ रहकर अजघन्य अनुभाग कर लेता है।	साथ रहकर मर जाता है
४५	२०	पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों में	पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकों में
४६	२१	अवगत वेदियों में	अपगतवेदियों में
७१	४	सणक्कुमार	सहस्सार
७१	२७	सनत्कुमार	सहस्रार
७१	३५	सनत्कुमार आदि	सहस्रार आदि
८०	२७	अनुभाग के काल में एक समय शेष हो	अनुभाग का बंध हुआ, वे अगले समय में मरण को प्राप्त होकर एकेन्द्रिय आदि में उत्पन्न होंगे
८२	५	जह० जहण्णेण	जह० जहण्णुक्कस्सेण
८२	१९	जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है	जघन्य व उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है
९९	२०	काल तक समान अनुभाग	काल तक असंज्ञी के समान अनुभाग
१००	२१	ओघ से तीनों ही	ओघ से तथा सामान्य तिर्यंचों में तीनों ही
१११	१९	सब सबसे थोड़ी है।	सबसे थोड़ी है।
१२०	२०	मनुष्य अपर्याप्त	मनुष्य पर्याप्त
१२४	३२-३३	संख्यातगुणे हैं। असंख्यात गुणवृद्धि विभक्ति वाले	संख्यातगुणे हैं। संख्यातगुणवृद्धि विभक्ति वाले जीव संख्यातगुणे हैं, असंख्यातगुणवृद्धि विभक्ति वाले
१३२	१७	और क्रोध	क्रोध
१४३	१८	भी नाश करके	भी नाश करने के पूर्व
१५३	१७	अनुनव	अनुभाग
१६२	१९	क्योंकि जघन्य	क्योंकि नवीन बंध जघन्य
१६२	२१	विशुद्ध से	विशुद्धि से

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८०	९	एवं पढमाए	[णवरि सम्मामिच्छत्तस्स अणुक्कस्साणुभागो णत्थि] एवं पढमाए
१८०	३३	समान है। इसी प्रकार	समान है। [किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्व का अनुत्कृष्ट अनुभाग सत्कर्म नहीं होता] इसी प्रकार
१८३	७	तप्पाओग्गविसुद्धस्स ।	तप्पाओग्गविसुद्धस्स । [सम्मत्त० सम्मामिच्छ० जह० णत्थि]
१८३	२५	होता है।	होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व का जघन्य अनुभाग सत्कर्म नही होता।
१९४	२१	अर्थात् यद्यपि	अर्थात्
१९८	२०	सम्यग्मिथ्यात्व में सम्यक्त्व के	सम्यग्मिथ्यात्व के समान सम्यक्त्व का
१९९	९	सगट्ठिदी । अणंताणु०	सगट्ठिदी । [सम्मामि० उक्कस्स भंगो] अणंताणु०
१९९	२७	स्थिति प्रमाण है। अनन्तानुबंधी-चतुष्क के	स्थिति प्रमाण है [सम्यग्मिथ्यात्व का उत्कृष्ट के समान भंग है] अनंतानुबंधीचतुष्क के
२०२	१६	प्रकृति के	प्रकृति विभक्ति के
२२१	३४	§ ३४५	§ ३४६
२२२	२०	§ ३४६	§ ३४७
२२२	३०	सर्वार्थसिद्धि तक के	सर्वार्थसिद्धि के
२२२	३३	अनुभाग ही पाया	उत्कृष्ट अनुभाग ही पाया
२२२	३५	§ ३४७ अब	§ ३४८ अब
२३१	९	देसूणा । अणंताणु०	देसूणा० । (सम्मामिच्छत्ताणं एवं चेव । णवरि जहण्णं णत्थि) अणंताणु०
२३१	३०	स्पर्शन किया है। अनन्तानुबंधी चतुष्क की	स्पर्शन किया है। सम्यग्मिथ्यात्व में भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु जघन्य अनुभाग विभक्ति नहीं है। अनंतानुबंधी चतुष्क की
२५३	११	सम्मत्त० सिया	सम्मत्त० (सम्मामिच्छ०) सिया
२५३	१८	शेष तीन कषायों की	शेष तीन अनन्तानुबंधी कषायों की
२५३	३३-३४	सम्यक्त्व कदाचित् होता है	सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् होता है
२५४	३	सम्मत्त० बारसक०	सम्मत्त० (सम्मामिच्छ०)- बारसक०
२५४	१७-१८	सम्यक्त्व, बारह कषाय	सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय
२६१	१५	नरकबंध के	नवक बंध के
२६१	२३	स्पर्धक अपने को	स्पर्धकपने को
२६४	३२	लोभ का	उससे अनन्तानुबंधी लोभ का
२७७	१४	भीरत	भीतर
२७८	२८	और छब्बीस	और उत्कृष्ट काल छब्बीस
३०२	२७	परिणा वाले	परिणामवाले
३१०	३०	एक आवली है	दो आवली है।
३१७	७	भंगा । पंचि०	भंगा । [तिण्णि मणुसेसु सम्मामि० भंगा णव] पंचि०
३१७	२४	होते हैं। पंचेन्द्रिय	होते है। [तीन मनुष्यों में सम्यग्मिथ्यात्व के ९ भंग होते हैं] पंचेन्द्रिय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३३	१५	अनुभा स्थान	अनुभाग स्थान
३३३	२८	संज्ञा है ?	संज्ञा कैसे है ?
३४०	३१	होता, क्योंकि	होगा, क्योंकि
३४०	३२	अभाव है ।	अभाव है, किन्तु ऐसा है नहीं
३४५	१२	आत	सात
३४७	२४	प्रमाण परूवणा	प्रमाण-प्ररूपणा
३५१	१४	बंधने वाला अनुभाग	बंधने वाला जघन्य अनुभाग
३५२	२८	उत्कष्ट	उत्कृष्ट
३५४	१५	प्रथम कृण हानि	प्रथम गुणहानि
३५४	३५	प्रसाण से	प्रमाण से
३८८	२३	पञ्चादानुपूर्वी	पश्चादानुपूर्वी
३८९	३	ट्ठाणाणंप माणुप्पत्तीदो ।	ट्ठाणाणं पमाणुप्पत्तीदो ।
३८९	२२	सर्वोत्कृष्ट परिणामों के	सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि-परिणामों के

जयधवला भाग ६

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६	३३	प्रदेश विभक्ति	प्रदेश वृद्धि
६५	३५	भव ८ होता है ।	भाग ८ होता है ।
११९	३	संजल०- पुरिस वेद	संजल०- [इत्थि०] -पुरिसवेद०
११९	४	इत्थि णवुंस०	णवुंस०
११९	२०	कषाय और पुरुषवेदकी	कषाय, स्त्रीवेद और पुरुषवेद की
११९	२१	स्त्रीवेद और नपुंसक वेद की	नपुंसकवेद की
१३७	३	उत्पकर्षित	उत्कर्षित
१४३	३२	अन्योन्यान्यास	अन्योन्याभ्यास
१४३	३३	उत्सम्म	उत्पन्न
१५६	२६	गोपुवृछा	गोपुच्छा
१५८	२६	अनुसरण	अननुसरण
२२१	३०	एम निषेक को	एक निषेक को
२५८	३३	विसंयोनारूप	विसंयोजनारूप
२५८	२७	कये द्रव्य के	गये द्रव्य के
२७६	९	ओदारेद णि	ओदारेदव्वाणि
२७६	२५	नपुंसकवेद की दो समय की	नपुंसकवेद की एक समय की
२८५	२९	क्षपिरुकर्माश की	क्षपितकर्मांश की

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९१	३०	इसलिए इससे एक समय पीछे आकर	इसलिए इस आवली के अन्त से एक समय पीछे आकर
२९४	चरम पंक्ति	चार अंतिम समय	चतुश्चरम समय
२९५	२४	द्विचरम	त्रिचरम
२९८	१९	वेदवले	वेदवाले
३०६	२९	३४०१२२३४	३४०१२२२४
३०६	२९	८×४२५१४२८=३४०१२२३४	८×४२५१५२८=३४०१२२२४
३०६	३०	$\frac{8}{8}^{6}$×६४२५१५२८	$\frac{36}{8}$×४२५१५२८
३७६	१५	सद्रप	सद्रूप
३८७	३४	बन्ध कर पुनः	विसंयोजना कर पुनः

●

जयधवला भाग ७

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
विषय परिचय :			
१३	९	तक न्यूतन	तक नूतन
१३	२२	(एक समय	(एक समय
मूल ग्रन्थ :			
४२	३१	बारहवें कल्प तक तिर्यंच भी	बारहवें कल्प तक मिथ्यादृष्टि तिर्यंच भी
४८	२५	की जघन्य प्रदेश-विभक्तिवाले	की जघन्य और अजघन्य प्रदेश विभक्ति वाले
४८	२७	जीवों ने लोक के	जीवों ने लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है। अजघन्य प्रदेश-विभक्ति वाले जीवों ने लोक के
४८	२९	जघन्य प्रदेश विभक्ति वाले	जघन्य और अजघन्य प्रदेश विभक्ति वाले
४९	६	णवरि अणंताणु०	णवरि [सम्म० सम्मामि०] अणंताणु०
४९	२७	कि अनंतानुबन्धी चतुष्क को	कि सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क की
६३	१८	नियम से अधिक	नियम से विशेष अधिक
६५	८	भागब्भहिया।	गुणब्भहिया।
६५	२२	प्रदेश विभक्ति होती है	प्रदेश विभक्ति भी होती है।
६५	२२	प्रदेश विभक्ति होती है	प्रदेश विभक्ति भी होती है।
६५	२५	असंख्यातवें भाग अधिक	असंख्यातगुणी अधिक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७०	२२	प्रदेश विभक्ति होती है।	प्रदेश विभक्ति भी होती है।
१०४	२४	प्रदेश गुहानि स्थानान्तर	प्रदेशगुणहानि स्थानान्तर
११२	१८	उसका संज्वलनों का	उसका चारों संज्वलनों का
११३	३२	विकृति	विकृति
१३५	१४	सम्मामि०। अप्प० कस्स० अण्णद०।	सम्मामि० अप्प० कस्स ? अण्णद०।
१३५	३४-३५	अन्यतर सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि के होती है	अन्यतर के होती है। सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्व की
१३७	२३	उपशम सम्यक्त्व के समय	उपशम सम्यक्त्व के और क्षपणा के समय
१३८	१४	भी	ही
१४८	१९-२२	या अधिक से अधिक ...पृथक्त्व प्रमाण कहा है।	×
१४८	२८	अन्तर वही है। अनंतानुबंधी चतुष्क की	अन्तर वही है (अर्थात् देशोन ३१ सागर है) अनन्तानुबन्धी चतुष्क की
१५१	२८	इनमें अवस्थित विभक्ति	इनमें छः नो कषायों की अवस्थित विभक्ति
१६१	२०	आठ बटे चौदह	आठ बटे और कुछ कम नौ बटे चौदह
१६६	९	भुज० जह०	भुज० [अवत्त०] जह०
१६६	२७	भुजगार विभक्ति का जघन्य	भुजगार विभक्ति और अवक्तव्य विभक्ति का जघन्य
१७८	३३	गुणितकर्मांशिक	क्षपितकर्मांशिक
१८४	१५	गुण श्रेणियों के स्तिबुक संक्रमण के द्वारा उदय में आ गई है	गुणश्रेणियों में स्तिबुक-संक्रमण के द्वारा उदय में आ रहे हैं।
१८५	१३	आदेसेण मिच्छत्त-	आदेसेण [णेरइय०] मिच्छत्त-
१८५	१४	उक्क० वड्ढी। हाणी	उक्क० हाणी। वड्ढी
१८५	३१	आदेश से मिथ्यात्व	आदेश से नारकियों में मिथ्यात्व
१८५	३३	उत्कृष्ट वृद्धि	उत्कृष्ट हानि
१८५	३३	उत्कृष्ट हानि	उत्कृष्ट वृद्धि
१८७	१८	जुगुप्सा की जघन्य हानि	जुगुप्सा की जघन्य वृद्धि, हानि
१८७	२६	अवक्तव्य वृद्धि है।	अवक्तव्य विभक्ति है।
१९१	१०	आदेसेण मिच्छ०	आदेसेण [णेरइय०] मिच्छ०
१९१	२७	आदेश से मिथ्यात्व की	आदेश से नारकियों में मिथ्यात्व की
१९१	३३	तब उसके	तब तक उसके
२०३	६	भागवड्ढी० अवट्ठि	भागवड्ढी हाणी० अवट्ठि०
२०३	२२	भागवृद्धि और	भागवृद्धि, असंख्यातभागहानि और
२०६	८	असंखे० गुणवड्ढी० णत्थि	संखे० गुणवड्ढी णत्थि
२०६	२६	असंख्यातगुणवृद्धि का	संख्यातगुणवृद्धि का
२०६	३०	पुरुषवेद की असंख्यातगुणहानि	पुरुषवेद और नपुंसकवेद की असंख्यातगुणहानि
२०७	१	पलिदो० असंखे० भागहा०	पलिदो०। असंखे० भागहा०
२०७	१७	और एक समय है	और असंख्यातभागहानि का एक समय है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१६	१३	गुणहाणि० अणंताणु०	गुणहाणि० [सम्मत्त-सम्मामि० अवत्त० असंखे०गुणवड्ढि० असंखे० भागवड्ढि] अणंताणु०
२१६	३३	वाले और अनन्तानुबन्धी	वाले सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व की अवक्तव्य, असंख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि वाले और अनन्तानुबन्धी
२१७	१३	अवट्ठि०-असंखे०	अवट्ठि-संखे०
२१७	३५	असंख्यातगुणवृद्धि वाले	संख्यातगुणवृद्धि वाले
२१८	४	सव्वपदा	[सव्वदेव०] सव्वपदा
२१८	१९	तिर्यञ्च और सब मनुष्यों में	तिर्यञ्च, सब मनुष्य और सब देवों में
२२१	२६	नपुंसकवेद की	पुरुषवेद की
२२६	१३	गुणवड्ढि-हाणि०	गुणहाणि०
२२६	३४	असंख्यातगुणवृद्धि	×
२३५	२९	'क्षीमक्षीणं'	'क्षीणमक्षीणं'
२५४	२८	नकक बंध की	नवकबन्ध की
२५६	२०	ऊपर प्रथम स्थिति में	ऊपर द्वितीय स्थिति में
२८५	२८	आवली प्रमाण गोपुच्छा	आवली-प्रमाण गुणश्रेणीरूप गोपुच्छा
२९३	१४	अनन्तानुन्वी	अनन्तानुबन्धी
३०१	१२	यकि	यदि
३०१	१८	अम्तिम	अन्तिम
३२३	२९	स्वामिस्व	स्वामित्व
३४२	२६	काल लक	काल तक
३५८	२२	उत्कृष्ट द्रव्य	जघन्य द्रव्य
३६०	१७	क्यों वैसा	क्योंकि वैसा
३६७	३१	अध:निषेक स्थिति प्राप्त	यथानिषेक-स्थिति प्राप्त
४०१	३३	यथानिषेककाल	यथानिषेक संचयकाल
४०१	३४-३५	यथानिषेक काल	यथानिषेक संचय काल
४०१	३५	,, ,,	,, ,,
४३०	१७	जघन्य सत्कर्म के	जघन्य स्थिति सत्कर्म के
४४०	२८	उदयस्थिति प्राप्त	अनन्तानुबन्धी के उदय स्थिति प्राप्त
४४२	२६	यथानिषेक-स्थिति प्राप्त	बारह कषाय के यथानिषेक स्थिति प्राप्त

●

जयधवला भाग ८

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३	१०	एक समय बाकी है	एक समय अधिक उदयावली बाकी है
७२	२१	चाहिये। किन्तु इतनी	चाहिये। दूसरी से सप्तम पृथ्वी तक भी इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी
११२	२९	तीसरा स्थान इक्कीस प्रकृतियों	तीसरा स्थान चौबीस प्रकृतियों
१२३	१२	दो मान के बिना	सं० क्रोध और दो मान के बिना
१२३	१३	दो माया के बिना	सं० मान और दो माया के बिना
१२६	१७	प्रतिग्रस्थान	प्रतिग्रहस्थान
१३५	१९	मान संज्वलन का	मान संज्वलनरूप
१३६	२३	जीव ने तीन प्रकार के क्रोध	जीव ने क्रमशः तीन प्रकार के क्रोध
१३६	२५	क्योंकि जो	तथा जो
१६५	२४	अन्तकरण	अन्तरकरण
१७८	२६	तक जानना	तक तथा मिश्रगुणस्थान में जानना
२३३	१३	परिणामानुगम की	परिमाणानुगम की
२४५	३०	होने तक पूरी	होने पर पूरी
२५०	२६	आवति का	आवली का
२५१	३४	१५ – १ = १५	१६ – १ = १५
२५४	२०	असंख्यतवा	असंख्यातवाँ
२५८	१७	स्थिति का	अग्रस्थिति का
२६४	३२-३३	जघन्य स्थिति संक्रम अद्धाच्छेद होने के बाद	असंक्रामक होकर
२८४	१८	मोहनीय की स्थिति का	मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति का
३३५	१३	उपार्धपुद्गल परिवर्तन	कुछ कम दो छ्यासठ सागर
३४५	३४	सम्पन्न भंग है।	समान भंग है।
३५०	२१	विशेष अधिक	असंख्यातगुणी
३५०	२८	सिथ्यात्व का	मिथ्यात्व का
३७१	२४	कुल विशेषता	कुछ विशेषता
३८३	११	वस्ससहस्साणि	वस्साणि०
३८३	२८	हजार	×
३८६	३०	जीवराशि के संख्यातवें	जीवराशि के असंख्यातवें
४११	३०	सर्वार्थसिद्धि तक के	नवग्रैवेयक तक के
४२८	२३	है किन्तु इनमें	है कि इनमें

●

जयधवला भाग ९

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८४	३३	अनुभागविभक्ति के	प्रदेशविभक्ति के
१८५	२३	,, ,,	,, ,,
१८५	२६	अनुभाग विभक्तिसम्बन्धी	प्रदेश विभक्तिसम्बन्धी
१९३	२६	आनरत	आनत
१९३	२८	मनुब्यों में	मनुष्यों में
१९५	१५	सत्कर्भ के	सत्कर्म के
२०५	२६	क्षपितकर्मांशिक विधि से	कर्मांशिक विधि से
२०८	२९	अंतिम समय में द्विचरम स्थिति-काण्डक का	द्विचरम स्थितिकाण्डक के अंतिम समय में
२१६	३३	अनुद्दिशले	अनुदिश से
२१६	३३	लेकस्सर्वार्थसिद्धि	लेकर सर्वार्थसिद्धि
२१७	१३	सन्यक्त्व के	सम्यक्त्व के
२१७	३२	न्मौर	और
२१८	२०-२१	उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है।	उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य प्रदेश संक्रामक का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है।
२१८	२७	इसी प्रबार	इसी प्रकार
२१८	३२	सन्यक्त्व का	सम्यक्त्व का
२१९	१२	मिथ्यात्व में रखकर	×
२१९	३१	मोकबायों का	नोकषायों का
२२०	३४	मय और	भय और
२२१	८	सन्यक्त्व	सम्यक्त्व
२२१	१६	सन्यक्त्व	सम्यक्त्व
२२१	२१	सम्यग्मिथ्यात्व	सम्यग्मिथ्यात्व
२२१	२५	विशेष	विशेष
२२१	२८	भोकषायों	नोकषायों
२२२	१५	नारकी के प्रथम	देवों के प्रथम
२२२	१७	प्रवृत्तियों के	प्रकृतियों के
२२२	३१	समय एक समय कम	समय कम
२२४	२२	जो सूत्रकार ने	जो चूर्णिसूत्रकार ने
२२७	२७	उत्कृष्ट अन्त	उत्कृष्ट अन्तर
२३४	१५	जघन्य अन्तर काल	अन्तरकाल
२३५	१६-१७	सन्यग्मिथ्यात्व	सम्यग्मिथ्यात्व
२३५	२७	अन्तर कुछ कम तीन पूर्व	अन्तर कुछ कम पूर्व
२३७	३२	अनन्तगुणाहीन	असंख्यातगुणाहीन
२४०	२३	असंख्यागुणे	असंख्यातभाग
३११	१५	सव्वलहुं गंतूण	सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण
३१२	१५	जघन्य उद्वेलना	जघन्य काल द्वारा उद्वेलना

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४५	२८	कुछ कम तीन पल्य	साधिक तीन पल्य
३५५	१६	और एक नाना	और नाना
२५८	२०	संख्यात बहुभाग प्रमाण हैं। अवस्थित और अवक्तव्य संक्रामक जीव	×
३५८	३२	कितने हैं ? सोलह	कितने हैं ? असंख्यात हैं। सोलह
३६०	२	अवट्ठि० १	अवत्त०
३६०	१७	अवस्थित और अवक्तव्य संक्रामक जीवों ने	अवक्तव्य संक्रामक और असंक्रामक जीवों ने
३६२	३०	सम्यग्मिथ्यात्व की	सम्यक्त्व की
३६२	३१	तथा	×
३६२	३३	समान है। इसी प्रकार	समान है। अनन्तानुबन्धी चतुष्क के भुजगार, अल्पतर और अवस्थित संक्रामकों का काल सर्वदा है। अवक्तव्य संक्रामकों का भंग मिथ्यात्व के समान है। इसी प्रकार
३६३	३३	सम्यक्त्व	सम्यक्त्व
३६५	१५	अल्पतर संक्रामक	अवक्तव्य संक्रामक
४१५	२६	योग के द्वारा	योग के द्वारा
४२७	२१	बिरोषाधिक का	विशेषाधिक का
४५५	२४	फिर छासठ सागर	फिर दो छ्यासठ सागर
४५५	३१	अकर्षण	अपकर्षण
४८१	२३	श्रेणि में	सम्यक्त्व में
४८१	३१	अस्पबहुत्व	अल्पबहुत्व
४८२	२६	तसी के उत्कृष्ट	उसी के उत्कृष्ट
४८२	३१	सम्यक्त्व	सम्यक्त्व
४८२	३३	हीन हीता	हीन होती
४८३	२५	अतिन्म	अन्तिम
५०४	२२	असंख्यात लाक	असंख्यात लोक

●

जयधवला भाग १०

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१	८	अणंताणु० ४	अणंताणु० कोध
३१	२७	अनन्तानुबन्धी चतुष्क,	अनन्तानुबन्धी क्रोध,
१०५	१२	यार्गणातक	मार्गणा तक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	८-९	अन्तर्मुहूर्त के भीतर....करने लगता है।	अन्तर्मुहूर्त के भीतर १० का उदीरक होकर वेदक सम्यक्त्वसहित संयमी हो पांच की उदीरणा करने लगता है।
१३४	१८	जघन्य काल	जघन्य व उत्कृष्ट काल
१३५	३२	वेदक सम्यक्त्व को	वेदक सम्यक्त्व को
१३५	३३	पच्चीस	पच्चीस
१९१	२०	सो क्षपक	सो उपशमक या क्षपक
१९३	२९	आदेश से मोहनीय की	आदेश से नारकियों में मोहनीय की
२१५	१	पुव्वकोडिपुधत्तं।	पुव्वकोडिपुधत्तं। अप्प० ओघं।
२१५	१२	पूर्वकोटिपृथक्त्व प्रमाण है।	पूर्वकोटिपृथक्त्व प्रमाण है। अल्पतर ओघ के समान है।
२३२	२३	स्त्रीवेद की	नपुंसकवेद की
२३३	२१	एक सागर की	एक हजार सागर की
२३७	२१	उत्कृष्ट	जघन्य
२३९	१९-२०	भय और जुगुप्सा की	अरति और शोक की
२५६	१	सम्मामि	सम्म०
२५६	१९	सम्यग्मिथ्यात्व	सम्यक्त्व
२७६	२	एवं पुरिसवे०	एवं पुरिसवे० णवुंस०
२७६	१७	इसी प्रकार पुरुष वेद की	इसी प्रकार पुरुषवेद व नपुंसकवेद की
२८९	३१	स्त्रीवेद की	नपुंसकवेद की
२९१	१८	कितने है ? असंख्यात हैं।	कितने हैं ? संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट स्थिति के उदीरक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं।
२९२	७	संखेज्जा	असंखेज्जा
२९२	२५	संख्यात है।	असंख्यात हैं।
२९४	१२	असंख्यातवें	संख्यातवें
२९९	१	जह० अजह०	जह० खेत्तं०। अजह०
२९९	३५	जघन्य और अजघन्य	जघन्य स्थिति के उदीरकों का स्पर्शन क्षेत्र के समान है, अजघन्य
३०६	९	असंखेज्जा	संखेज्जा
३०६	२९	असंख्यात	संख्यात
३१३	१५-१६	उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट	जघन्य और अजघन्य
३१९	२९	अल्पतर	अन्यतर
३२९	३०	ओघ के	स्त्रीवेद के
३३३	१६	अनन्तानुबन्धी चतुष्क और	अनन्तानुबन्धी चतुष्क, चार संज्वलन और
३३७	५	सम्मामि०	सम्म० सम्मामि०
३३७	२१	सम्यग्मिथ्यात्व	सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व
३३८	९	मिच्छ० सम्मामि०	मिच्छ० सम्म० सम्मामि०
३३८	२९	मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व	मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४१-३४-३५		जो तिर्यंच....उत्पन्न होते हैं वे	जो सासादन तिर्यंच ऊपर की पृथिवी में मारणान्तिक समुद्घात कर रहे हैं और वहाँ सासादन से च्युत होकर मिथ्यात्व में आ जाते हैं वे
३४५	२४	सम्यग्मिथ्यात्व	सम्यक्त्व
३४६	२०	आवलिके	अंगुल के
३५६	३०	और और	ओघ और
३५८	११	गुणवड्ढि-हाणि०	गुणहाणि
३५८	२९	असंख्यातगुण वृद्धि और	×
३६६	२४	दो स्थिति	दो हानि स्थिति
३६७	१४	भव	भय
३६८	२२	जघन्य	उत्कृष्ट
३७०	१९	गुणवृद्धि	गुणहानि
३७१	२२	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व की
३७४	२९	स्थिति उदीरणा नहीं है।	स्थिति उदीरणा का अन्तर नहीं है।
३८१	९	अट्ठ—	अट्ठ-णव—
३८१	२७	आठ भाग	आठ तथा नौ भाग
३८४	२५	पल्य के	आवलिके
३९०	७	अवत्त० संखे० गुणा	×
३९०	२३	उनसे अवक्तव्य....हैं।	×
३९२	२२	गुणहानि	भागहानि

●

जयधवला भाग ११

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	२०	उदीरणा और अजघन्य	उदीरणा, जघन्य अनुभाग उदीरणा और अजघन्य
३५	३६	असंख्यात गुणे हैं।	संख्यातगुणे हैं।
३९	१७	वेदों को	वेदों की
५५	२०	विशुद्ध	विशुद्ध
७८	१५	जीव	जीव
८०	८	वेसमया।	वेसमया
८०	८	सम्मामि०	सम्म०-सम्मामि०
८०	२७	है। सम्यग्मिथ्यात्व के	है। सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व के
९५	१७	लोकषायों के	नोकषायों के

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९६	१५	चाहिए। पहली	चाहिए। किन्तु अपना-अपना स्पर्शन कहना चाहिए। पहली
११३	३४	तीन क्रोधों को	तीन कषायों को
१२१	१६-१७	इसी प्रकार पुरुषवेद की मुख्यतया से	इसी प्रकार सम्यक्त्व के साथ पुरुषवेद के विषय में
१२१	२३	इसी प्रकार तीन	इसी प्रकार मानादि तीन
१३८	१९	प्रवक्तव्य	अवक्तव्य
१४७	१७	और उपपाद पद की	× × × [उपपाद पद नहीं होता है।]
१४८	२७	किमा	किया
१५१	१२	काल सर्वदा है।	काल संख्यात समय है।
१५५	३३	हानि और	उत्कृष्ट हानि और
१७९	३३	सम्यक्त्व अनुभाग के	सम्यक्त्व के अवक्तव्य अनुभाग के
१८८	२४	कायस्थिति पूर्व कोटि पृथक्त्व	कायस्थिति से अधिक पूर्व कोटि पृथक्त्व
१९२	१४	भागगमाण	भागप्रमाण
२२६	१५	द्विचरम समय में	चरम समय में
२३२	३२	तिर्यंच पर्याप्त; सामान्य	तिर्यञ्च पर्याप्त, मनुष्य पर्याप्त, सामान्य
२४३	३५	कुल कम	कुछ कम
२५२	३२	कल्प में होते हैं,	कल्प तक होते हैं,
२७०	२७	अन्तरकाल वर्ष पृथक्त्व प्रमाण	अन्तरकाल साधिक एक वर्ष प्रमाण
२७१	१३	कहा है। क्षपक श्रेणि के	कहा है। दर्शनमोह क्षपक और क्षपकश्रेणि के
२७१	१९	वर्ष पृथक्त्व प्रमाण	साधिक एक वर्ष प्रमाण
२९८	१९	असंख्यातगुणी	विशेषाधिक
३०३	१५-१६	अनन्तगुण वृद्धि तथा अनन्तगुण हानि के	असंख्यातगुणवृद्धि तथा असंख्यातगुणहानि के
३०५	३५	अन्तर्मुर्त प्रमाण	अन्तर्मुहूर्त प्रमाण
३०७	२५	कर्मभूमिज तिर्यंचों में ही प्राप्त होने से	नपुंसकवेद के उत्कृष्ट काल की अपेक्षा
३२२	२१	अपेक्षा जो	अपेक्षा उत्कृष्टरूप से जो
३२९	१८	क्षपक मिथ्यादृष्टि जीव के दो	क्षपक जीव के मिथ्यात्व की दो
३३८	२८	क्षपक के जघन्य	क्षपक के चरम
३४२	२९	अनन्तगुणी देखी	अनन्तगुणी हीन देखी
३४६	२२	यहाँ पद कारण का	यहाँ पर कारण का
३४९	१७	उत्कृष्ट अनुभाग उदीरणा	उत्कृष्ट प्रदेश उदीरणा
३४९	१९	उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध	उत्कृष्ट प्रदेशबन्ध
३६४	२२	देवों और देवों में	देवियों और देवों में

जयधवला भाग १२

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३	१८	गतियाँ में	गतियों में
३५	२४	संख्यात हजार	बहुत संख्यात
३७	२६	संख्यात हजार	बहुत हजार
३८	१४	संख्यात हजार	बहुत संख्यात
५७	१०	संखेज्जवारमुप्पज्जिय	असंखेज्जवारमुप्पज्जिय
५७	२९	संख्यातबार	असंख्यात बार
७७	३	कसायोव	उक्कस्सकसायोव
७७	२०	और कषाय	और उत्कृष्ट कषाय
८४	२४-२५	मानोपयोग काल में	मायोपयोग काल में
१५८	७	षरुवेतस्स	पक्वेंतस्स
१८६	२३	झंशा	झंझा
१८६	२७	संज्ञा	झंझा
१८९	२७	शास्वत	शाश्वत
२०७	१३	यह कर	यह
२२८	३२	र्यादि देव है तो	यदि देव है तो
२६१	१४-२०	विशेषार्थ....यहां पर.... स्थितियों वाले बन जाते हैं।	× × ×
२९६	१९	स्थितिकत्कर्म	स्थितिसत्कर्म
३१०	१७-१८	मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व या तीनों कर्मप्रकृतियों	× × ×
३२१	१७	सम्मदृष्टि	सम्यग्दृष्टि
३२१	२९	बरमार्थ	परमार्थ
३२२	११	स्वीकार करता है	स्वीकार नहीं करता है
३२३	२६	अबस्था में	अवस्था में

नोट :—इस उक्त जयधवला भाग "१२" में कुछ शुद्ध-अशुद्ध जवाहरलाल जी शास्त्री [भीण्डर] के भी निहित हैं।

जयधवला भाग १३

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	३१	अनुभवा	देखा
४	३४	दर्शन मोननीय	दर्शन मोहनीय
६	२३	मिथ्यात्व का पूरा संक्रम जहाँ यह जीव सम्यग्मिथ्यात्व में	सम्यग्मिथ्यात्व का पूरा संक्रम जहाँ यह जीव सम्यक्त्व में
७	१०-११	तेजोलेश्या के जघन्य अंश रूप	जघन्य से तेजोलेश्यारूप
९	१०	इत	इन
९	१८	बन्ध तभी	बन्ध सभी
११	२६	अन्तर से एक	अन्तर से संख्यात
३१	१५	भाग प्रमाण है।	भाग प्रमाण है। उत्कृष्ट स्थिति सत्कर्म से उपस्थित जीव के सागरोपम-शतपृथक्त्व प्रमाण स्थितिकाण्डक होता है।
४१	१२	उपकर्षण	उत्कर्षण
४१	३१	कोटिपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण	कोटिलक्षपृथक्त्व सागरोपम प्रमाण
४५	६	संखेज्जे भागे	असंखेज्जे भागे
४५	२१	सत्कर्म में से संख्यात बहुभाग को	सत्कर्म में से असंख्यात बहुभाग को
४५	३१	प्रहुण	ग्रहण
४८	१५	२०००० ÷ ५ = ४००००	२०००० ÷ ५ = ४०००
४८	३२	द्वारा मिथ्यात्व के	द्वारा जब तक मिथ्यात्व के
४८	३२	स्थिति काण्डक को	स्थिति काण्डक को नहीं प्राप्त होता
६३	१८	अनन्तगुणाहीन है। इस प्रकार	अनन्तगुणाहीन है। इससे भी उदय समय में प्रवेश करने वाला अनुभाग अनन्तगुणाहीन है। इस प्रकार
६३	३०	हीन होता है। इस प्रकार इस क्रम को	हीन होता है। इससे भी उदय समय में प्रवेश करने वाला अनुभाग अनन्तगुणाहीन है। इस प्रकार इस क्रम को
६४	१९	ग्रत्येक	प्रत्येक
६६	३२	गुणश्रेणिशीर्ष के अधस्तन समय के	अधस्तन समय के गुणश्रेणिशीर्ष के
७२	२८	और	अर्थात्
७४	१६	जब तक कि जघन्य	जब तक कि स्थितिकाण्डक की जघन्य
१०२	३७	अन्तर्मुहूर्त कम एक	अन्तर्मुहूर्त कम दो
१०३	५	जघन्य और उत्कृष्ट	जघन्य एक पल्य और उत्कृष्ट
११४	२१	कारण परिणाम	करण परिणाम
१२३	१३	स्थितिबन्ध तथा	स्थितिबन्धापसरण तथा
१३०	२५	संयत होता है	संयतासंयत होता है
१३०	३३	संख्यातभाग हानिरूप	संख्यातभागवृद्धिरूप
१३६	२५	स्थितिकाण्डक का	स्थितिबन्ध का
१४८	२५	संयतासंयत के अप्रतिपात	संयतासंयत के जघन्य अप्रतिपात

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७२	१३	मायाकसाय० । तेउ०—	मायाकसाय० । एवं लोहकसाय० । णवरि सुहुम० अत्थि । तेउ०
१७२	३१	जानना चाहिए ।	जानना चाहिए । इसी प्रकार लोभकषाय में भी जानना चाहिए । किन्तु वहाँ पर सूक्ष्मसाम्पराय संयत भी होता है ।
१७३	३५	सामायिक-छेदोपस्थापना शुद्धि संयत और	सामायिक-छेदोपस्थापना शुद्धिसंयत परिहारविशुद्ध संयत और
१९०	२१	आदर ब	आदर न
१९१	२८	प्रलिबद्ध है ।	प्रतिबद्ध है ।
२०३	३१	अप्रस्त	अप्रशस्त
२०५	२७	वहाँ से लेकर	उसके बाद
२०६	३	सत्याणे	सत्थाणे
२११	२९	संख्यातगुणहानि और अनन्त गुणा	संख्यात गुणाहीन और अनन्तगुणा हीन
२१७	३	शुविशुद्ध	सुविशुद्ध
२२१	१८	तिर्यंचगति- देवगति इन तीनों के	तिर्यंचगति इन दोनों के
२२१	१९-२१	कर्म की नरकगति....साधारण प्रकृतियाँ तथा	कर्म तथा
२२३	३०	स्थितिकाण्डक का	स्थिति समूह का
२२३	३०	वह स्थितिकाण्डक	वह स्थिति-समूह
२२३	३३	जिस स्थितिकाण्डक का	जिस स्थिति-समूह का
२२३	३४	वह काण्डक भी	वह स्थिति-समूह भी
२३१	२१	अकर्षित	अपकर्षित
२३४	२५	मोहनीय कर्मों का ग्रहण किया	अन्तराय कर्मों का ग्रहण किया
२३८	१६	स्थितिबन्धापरण	स्थितिबन्धापसरण
२४८	२३	असंख्यातगुणा हो	असंख्यातगुणा हीन हो
२७६	१९	स्थिति को	द्रव्य को
३१७	२७	एक समय आवली प्रमाण	एक आवली प्रमाण
३२०	१८	दो त्रिभाग प्रमाण	दूसरे भाग ($\frac{1}{2}$) प्रमाण
३२०	२२	कुछ कम दो भाग प्रमाण	कुछ कम अर्द्ध भाग प्रमाण
३२०	३३	सर्वप्रथम प्रथम समय में	प्रथम समय में
३३१	२४	इनका कदाचित्	इनका कदाचित् वेदक और कदाचित्

●

जयधवला भाग १४

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	२६	उपशम	उपशामक
१०	२८	उपशम	उपशामक
११	१६	कृष्यसंक्रमद्वारा	अध:प्रवृत संक्रमद्वारा
२३	१२	णाणंतपमाणत्त-	णाणं तप्पमाणत्त-
२४	८	चव	चेव
२४	१६	उदयावलि	उदयस्थिति
२८	२२	गुणश्रेणि गोपुच्छा से	गोपुच्छा से
२९	१३	समयप्रबद्धों का	जघन्य समयप्रबद्धों का
२९	१४-१५	दो छासठ सागरोपम, नाना गुण-हानियोंकी अन्योन्याभ्यस्त राशि और गुणसंक्रमभागहार के	दो छासठ सागरोपम की नानागुणहानियों की अन्यो-न्याभ्यस्त राशि के
२९	१६	उत्कर्षण-अपकर्षण से	उत्कर्षण-अपकर्षणभागहार से
२९	१८	ज्ञात नहीं होता ?	ज्ञात नहीं होना, क्या कारण है ?
२९	२३	उसे उदय में	उसे अतिस्थापनावलि को छोड़कर उदय तक सब स्थितियों में
२९	२४	गुणकार से गुणा	भागहार से भाजित
३१	९	जाणिदू ण	जाणिदूण
३३	१९-२०	नहीं होता है इसका	नहीं होता है, इस प्रकार इस अर्थ-विशेष को मूल प्रकृतियों का आश्रय कर
४१	४	णात्थि	णत्थि
५४	चरम पंक्ति	नीचे उत्कृष्ट	नीचे छोडे गये
५५	२७	श्रेणि की प्ररूपणा की अपेक्षा अपने	इस प्ररूपणा के तुल्य
५६	२२	अनानुपूर्वी	आनुपूर्वी
५९	चरम पंक्ति	असंख्यातवां	संख्यातवां
६३	२७	प्राप्त न होने के	प्राप्त होने के
६६	१३	कायव्वो ।	कायव्वो ?
६६	२८	जाता है ।	जाता है ?
७२	२८	दुगुणा है ।	द्वितीय भाग प्रमाण है ।
७४	२८	होते समय यहाँ से	होने समय एक स्थानिक बन्ध समाप्त हो गया । यहाँ से
८३	२१	स्थितिबन्ध जाकर	स्थितिबन्धोत्सरण करके
८४	२८	स्थिति बन्ध जाकर	स्थिति-बन्धोत्सरण करके
९५	१२-१३	मायामोकड्डिदे माणस्स	मायामोकड्डे माणस्स
९५	१५	अवस्थितपने का	अनवस्थितपने का
९५	२९	करने पर मान का	करने वाले के
९६	१९	अपूर्वकरण जीव	अध:प्रवृत्तकरण संयतजीव
९७	३२	प्रथम समय से लेकर	अपूर्वकरण के प्रथम समय से लेकर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०३	११	कोहेणोवदि्ठदस्स	कोहेणोवदि्ठवस्स
१२०	२१	पुरुवेद	पुरुषवेद
१२०	चरमपंक्ति	समयसम्बन्धी	×
१२०	,,	अन्तरकरण करने पर	अन्तरकरण किये जाते समय
१२४	२९	सूक्ष्मसाम्परायिक का	बादरसाम्परायिक का
१२५	१०	बादर लोभवेदगद्धाए	लोभवेदगद्धाए
१२६	२५	निर्देश देखा जाता है	निर्देश नहीं देखा जाता है ।
१२६	७-८	तण्णिद्देसदंसणादो ।	तण्णिद्देसादंसणादो ।
१३२	६	असंखेज्जदि भागपडिभागत्तादो	संखेज्जदिभागपडिभागत्तादो
१३२	२२	असंख्यातवें	संख्यातवें
१३४	चरम पंक्ति	चाहिये । यह	चाहिए, परन्तु मोहनीय कर्मकी अनिवृत्तिकरण उपशामक के अन्तिम स्थितिबन्ध की जो आबाधा है उसे ग्रहण करना चाहिए ।
१३५	१२	ण, मोहणीयस्सेव	ण मोहणीयस्सेव
१३५	१३	मरणवसेण	करणवसेण
१३५	३१	नहीं, क्योंकि	×
१३५	३१	समान ही है,	समान नहीं है,
१३५	३२	मरण	करण
१३६	१९	अन्तर्मुहूर्त	मुहूर्त
१५१	५	अत्थि	अत्थि
१५३	२९	काल के भीतर स्थितिबन्धापसरणों को	काल के भोतर संख्यात हजार स्थितिबन्धापसरणों को
१६६	२१	अन्तर करता है	अन्तर करेगा
१६७	२१	नहीं होता ।	नहीं होता । अनन्तर समय में ये दोनों ही बातप्रवृत्त होंगे ।
१७१	१२	स्थितिकाण्डक की	स्थिति-सत्कर्म की
१७२	२७	होता है । ऐसा समझकर	होता है, क्योंकि इसके उपशमश्रेणिसम्बन्धी घात नहीं प्राप्त हुआ है । ऐसा समझकर
१८०	२३	भाग प्रमाण होता है ।	भागप्रमाण अधिक होता है ।
१८२	१२	सवसहस्स ।	सवसहस्सस्स ।
१८३	१५	लक्षण	लक्ष
१८७	१८-१९	अल्पबहुत्व इस अल्पबहुत्व विधि से	स्थितिबन्ध
२१३	२४	हो जाता है । अब	हो जाता है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है । इस प्रकार इस स्थान पर समस्त कर्मों का स्थिति-बन्ध यथाक्रम संख्यातवर्ष प्रमाण हो गया । अब
२१३	२५	स्थितिकाण्डकों के जाने पर	स्थितिकाण्डक पृथक्त्व के जाने पर
२१५	९-१०	जहाकममसंखेज्जगुणहाणीए (१)	जहाकमं संखेज्जगुणहाणीए

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१५	२५	असंख्यातगुणहानि	संख्यातगुणहानि
२२०	१७	प्रतिबद्ध है। इस प्रकार	प्रतिबद्ध है। संक्रामण-प्रस्थापक के पूर्वबद्ध कर्म कैसे अनुभाग में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार
२२१	चरम पंक्ति	समस्त द्रव्य के अनंतवें	समस्त द्रव्य के अनुभाग के अनन्तवें
२२५	१८	अब जिसने एक आवलिप्रमाण	अब जिसने अन्तरकरण सम्पन्न करने के बाद एक आवलि प्रमाण
२२५	२१	है। द्वितीय स्थिति	है। सामान्य से वह अवशिष्ट प्रथम स्थिति भी अन्त-र्मुहूर्त प्रमाण ही होने से वह यहाँ अन्तर्मुहूर्त कही गयी है। द्वितीय स्थिति
२२८	१७	निर्जरित हुई और नहीं निर्जरित हुई	संक्रान्त हुई अथवा सक्रान्त नहीं हुई
२३५	१५	आया है, क्योंकि	आया है, अथवा वह अनुक्त के समुच्चय के लिए आया है, क्योंकि
२६४	२२	उनका संक्रमद्रव्य	उनका गुणसंक्रमद्रव्य
२७०	२०	संक्रम में अल्पबहुत्व	संक्रम में स्वस्थान अल्पबहुत्व
२७४	१६	तीसरी गाथा अनुभाग	तीसरी भाष्यगाथा प्रतिसमय अनुभाग
२७८	१७	दो तीन	दो त्रिभाग
२९४	२०-२१	छोड़कर ऊपर	छोड़कर तथा ऊपर
२९५	१८-२२	नोट—मूल चूर्णिसूत्र के अर्थ को § ३६१ के बाद पढ़ना है।	
३१०	२८	जितनी स्थिति	जितने अनुभाग
३१०	२८	प्रकृति का उत्कर्षण	प्रकृति का अनुभाग उत्कर्षण
३१०	३४	अनुसार प्ररूपणा	अनुसार अर्थ-प्ररूपणा
३२३	१८-१९	अर्थात् मूल से लेकर	मूल तक
३२३	२०	हीन अनुभाग के	हीन अनुभाग स्पर्धक के
३२३	२२-२३	हिंडोले के खम्भे और रस्सी अन्त-राल में त्रिकोण होकर कर्णरेखा के आकाररूप से दिखाई देते हैं।	हिण्डोले के स्तम्भ और रस्सी के अन्तराल में त्रिकोण होकर कर्णाकार रूप से दिखता है।
३२३	३५	वहाँ से लेकर क्रोधादि	वहाँ से लेकर काण्डकघातद्वारा क्रोधादि
३२८	३०	लोभ का अनुभागसत्कर्म	मान का अनुभागसत्कर्म
३३१	चरम पंक्ति	पहली	पहले स्पर्धक की
३३५	१०	अणंता भागा अणंताभागा	अणंता भागा अणंतभागा
३३६	२७	अविशेष	अवशेष
३३७	२५	दो भाग	द्वितीय भाग
३३७	२६	दो भाग	द्वितीय भाग
३३७	३०	दो भाग अधिक	द्वितीय भाग अधिक
३३७	३१	तीन	तृतीय
३३७	३२	चार	चतुर्थ
३३८	१७	संख्यातभाग	संख्यातवें भाग

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३८	२१	असंख्यातासंख्यात भाग	असंख्याता संख्यातवें भाग
३४०	३०	निर्जरा	संक्रमण
३४३	३१	६६८०	१६८०
३४४	७	वग्गणाभागहारमेत्तं	वग्गणा भागहारमेत्तं
३४४	२२	२१/१०५	१०५
३४७	१८	एक गुणहानि	एक प्रदेशगुणहानि-
३४८	१७	जानना चाहिए।	जानना चाहिए। वह कैसे—
३४९	२६	एक गुणहानिस्थानान्तर के	एक प्रदेशगुणहानिस्थानान्तर के
३४९	३०	वर्गणाएँ निक्षिप्त	वर्गणा में निक्षिप्त
३५१	३१	पुनः द्वितीय	पुनः पूर्वोक्त द्वितीय
३५४	३१	भागहीन है, किन्तु	भागहीन नहीं है, किन्तु
३५७	२२	उदय एक स्थानीय रूप से उनमें	उदय में एक स्थानीय रूप से
३५८	३०	के असंख्यातवें	के स्पर्धकों के असंख्यातवें
३९६	२	पृष्ठ १५९	पृष्ठ १२९
४०१	२८	पृष्ठ ३४३	पृष्ठ ३४२

●

जयधवला भाग १५

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	३८	यथा समय	यथा आगम
३	१४	संख्यातगुणा होता है।	संख्यातगुणाहीन होता है।
३	३१	सत्कर्म के	काण्डक के
११	३३	अतः	×
११	३४	अनन्त कहे जाते हैं	अन्तर कहे जाते हैं
१५	२०	अनन्त	अन्तर
१५	२४	अन्तिम अन्तर कृष्टि	अन्तिम कृष्टि
१७	२५	प्रथम कृष्टि का	प्रथम संग्रह कृष्टि का
२५	२५	गोपुच्छाओं	स्पर्धकों
२६	२४	कृष्टियों को निष्पादित	कृष्टियों को द्वितीय समय में निष्पादित
२७	३३	पूर्व और अपूर्व कृष्टियों की अपेक्षा	पूर्वापूर्वों की अपेक्षा
५६	२१	रहते हैं तक	रहने तक
७४	२५	द्रव्य कुछ	द्रव्य का कुछ
८०	२१	प्रथम संग्रह	प्रथम अथवा द्वितीय संग्रह
९७	२७	चढ़ा हुआ जीव	चढ़े हुए जीव के

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०३	२४	क्योंकि गोपुच्छाविशेषों का	क्योंकि उतरे हुए अध्वान प्रमाण ही गोपुच्छाविशेषोंका
१०९	२४	वेदक अवस्थित	वेदक होकर अवस्थित
१०९	३४	अश्वकरणकाल	अश्वकर्णकरणकाल
१११	१८	शंक	शंका
११२	३१	अधिक है उससे नपुंसकवेद का	अधिक है उससे स्त्रीवेद का क्षपणाकाल विशेषाधिक है। उससे नपुंसकवेद का
११३	२६	प्रदेशों तथा	×
१३६	२१	आगता	असाता
१४५	२२	अभनीय	अभजनीय
१५२	२६-२७	का परमाणु इस क्षपक के उदय में सक्षुब्ध होता है,	के परमाणु (कुछ परमाणु ही) इस क्षपक के उदय में संक्षुब्ध होते हैं तो भी वह भवबद्ध निश्चय से उदय में संक्षुब्ध होता है, (अर्थात् वह भवबद्ध उदय में आया, ऐसा कहलाता है)
१५५	१९	उच्चारणा करके दूसरी भाष्यगाथा के संबंध से	उच्चारणा नहीं करके दूसरी भाष्यगाथा के अर्थ-सम्बन्ध से
१५७	२६	उच्चारणा करके उसके अर्थ की दूसरी	उच्चारणा नहीं करके उसके अर्थ की ही दूसरी
१६०	३६	विशेषों में होते	विशेषों में कियत्संख्यक (कतने) होते
१६३	२५	शेष असंख्यात	शेष उत्कृष्टतः असंख्यात
१६४	२७	जो प्रदेशपुंज	जो शेष प्रदेशपुंज
१७१	२१	स्थिति में शेष	समय में शेष
१७५	३४	सामान्य स्थिति नहीं पायी जाती	समयप्रबद्धशेष नहीं पाया जाता
१७८	३१-३२	इससे आगे जिस क्रम से वे स्थितियाँ बढ़ी है उसी क्रम से	×
१७८	३३	वहाँ असंख्यात	वहाँ से आगे असंख्यात
१८४	३१	भाष्यगाथा की	भाष्यगाथा के अवयवों के अर्थों की
१८४	३३	भागप्रमाण अन्तर	भागप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर
१८५	१८	जानने चाहिए	जानने चाहिए, ऐसा सूत्र के अर्थ का सम्बन्ध है।
१८५	२३	समयप्रबद्धशेष नियम से	समयप्रबद्धशेष और भवबद्धशेष नियम से
१८६	३१	स्थितियों का	स्थिति का
१८८	२८	समयप्रबद्धों के	समयप्रबद्धशेषों के
१९३	२३	निर्लेपन स्थानों	समयप्रबद्धों
१९५	२५-२६	प्रत्येक अतीत	प्रत्येक के अतीत
१९९	२३-२४	आचार्य व्याख्यान करते हैं।	व्याख्यानाचार्य कहते हैं।
२००	३५	अल्पबहुत्व का	स्तोकत्व का
२०४	२४	सामान्य और असामान्य दोनों स्थितियाँ	समयप्रबद्धशेष एवं भवबद्धशेष

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०७	२२	समाधान—इसी सूत्र से जाना जाता है।	समाधान—इसी सूत्र से जाना जाता है। और सूत्र अन्यथा नहीं होता; क्योंकि सूत्र के अन्यथात्व का विप्रतिषेध है।
२११	३३	जाते हैं	जायेंगे
२१२	२६	समयप्रबद्ध की स्थिति के	समयप्रबद्ध की कर्मस्थिति के
२१२	३४	भी तत्प्रायोग्य	भी नियम से तत्प्रायोग्य
२१४	२९	अधिक पूर्व में	अधिक काल वाले निर्लेपन स्थान में पूर्व में
२१४	३४	कि पूर्व में	कि समस्त निर्लेपन स्थानों में पूर्व में
२१५	१९	हुए हैं एक साथ	हुए हैं ऐसे अनन्त हैं; एक साथ
२१७	११	उदयट्ठिदी	उदयट्ठिदी [उदयावलि]
२१७	२८	उदयस्थिति	उदयावलि
२१८	२७	निर्लेपन काल है वह	निर्लेपन काल है वह अनुसमयनिर्लेपनकाल कहलाता है। वह
२२२	३१	द्विगुणवृद्धिरूप	×
२२६	१७	द्विगुणवृद्धि	द्विगुणहानि
२३३	१२	अणुसिद्धीदो	अणुत्तसिद्धीदो
२३५	१४	महा प्रमाण	माह प्रमाण
२३६	२१	तीनों ही अघाति कर्मों का	तीन अघातिया कर्मों का तथा तीन शेष घाति कर्मों का
२३७	२०	§ ५९६	§ ५९७
२३७	३०	परिभाषारूप प्ररूपणा	परिभाषा के अर्थ की प्ररूपणा
२३९	२०	काल तक	काल प्रमाण
२३९	२१	रखने वाला संज्वलन	रखने वाला अनुभागकाण्डकघात संज्वलन
२३९	३१	अनुभाग की अपवर्तना	अनुभाग की अनुसमय अपवर्तना
२४०	१६	होती है।	होती है उससे उसी समय बध्यमान उत्कृष्ट कृष्टि अनन्तगुणी हीन होती है।
२४२	१५	सम्भव है।	असम्भव है।
२४५	३२	प्रदेश के अग्रभाग	प्रदेश समूह
२४६	२४	क्योंकि प्रथम	क्योंकि चारों प्रथम
२५१	२२	स्थानरूप	अध्वानरूप
२५३	१८-१९	प्राप्त होने तक	नहीं प्राप्त होने तक
२५७	२२	असंख्यातासंख्यातवें	असंख्यातासंख्यात
२६३	२१	असंख्यात	अनन्त
२६४	२१	प्रथम समय में	द्वितीय समय मे
२७२	२८	रस स्थान	इस स्थान
२७४	२९	जीद	जीव
२७८	२४	पुनः इसमें क्रोध की द्वितीय संग्रह कृष्टि का	पुनः क्रोध की द्वितीय संग्रह कृष्टि मे प्रथम संग्रह कृष्टि का

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८०	१९	आगे जैसा	स्थितिबन्ध क्रम से हीन होता हुआ इस समय ३ वर्षों से ऊपर जैसा
२८०	२५	तीन.भाग	त्रिभाग
२८७	३१	तब इन	तब तीन
२९७	२६	शंका	×
२९७	२८	अनन्तगुणीहीन	अनन्तगुणी
२९८	१२	संछुद्धमाणस्स	संछुद्धे माणस्स
२९८	२४	द्रव्य को संज्वलन	द्रव्य को क्रोध-संज्वलन
२९८	३१	क्रोध में संक्रमित होने वाली	क्रोध के मान में संक्रमित होने पर मान की
३००	१६	अन्तर कृष्टियाँ	अन्तर कृष्टियों के
३०२	१६	असंख्यातवें भाग	असंख्यात बहुभाग
३०२	२२	द्वारा एक	द्वारा खंडित करने पर लब्ध एक
३०२	२७	बादरसूक्ष्मसाम्परायिक	बादर साम्परायिक
३०२	२८	संख्यातगुणाहीन	असंख्यातगुणाहीन
३०५	१८	असंख्यातभाग	असंख्यातवें भाग
३०७	२१	हीन है।	है।
३०७	२७	के अन्तिम समय तक बिना	कृष्टिकारक के प्रथम समय से लेकर चरम समयवर्ती बादरसाम्परायिक होने तक बिना
३१३	३३	असंख्यातगुणा	असंख्यातगुणाहीन
३१५	३१	उक्खेदि दो'	उक्खेदिदो'
३२२	२०	असंख्यातरूपों	संख्यातरूपों
३२३	१९	असंख्यातवें	संख्यातवें
३२४	३३	अन्तर	अनन्तर
३२६	१८	अनन्तर	अन्तर
३२८-२९	३४	क्योंकि प्रवृत्त	क्योंकि गुणश्रेणि के प्रवृत्त
३२९	२०	असंख्यातवें भाग में	असंख्यात बहुभाग को
३२९	२४	अंतिमस्थिति काण्डक	द्विचरमस्थिति काण्डक

जयधवला भाग १६

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	८	सोडसमो	पण्णारसमो
४	११	-मणुगंतव्या	-मणुगंतव्वा
६	१	लोभस्य	लोभस्स
७	११	चरमसमवबावरसांबराइओ	चरमसमयबादरसांपराइओ
७	२७	प्रदेशपुंज के	प्रदेशपुंज को
८	४	हेट्टिमो	हेट्ठिमो
८	७	पढमवसमय	पढमसमय
८	१७	कृष्टियो कां	कृष्टियों का
९	३	सरूपपरूवणा	सरूवपरूवणा
९	८	ठिदिखडय	ठिदिखंडय
१०	१५	माकड्डियूण	दव्वमोकड्डियूण
११	१	णिक्खव-	णिक्खिव-
११	२३	अनिस्थापनावलि	अतिस्थापनावलि
११	२५	श्रेणिपरूपणा के	श्रेणिपरूपणा
११	३१	पल्यापम	पल्योपम
१२	४	विं	वि
१२	१२	निजरा	निर्जरा
१३	२२	अथ-मुख से	अर्थमुख से
१३	२७	पूवाक्त	पूर्वोक्त
१४	१०	परिणमिदे	परिणामिदे
१४	२७	परिणमित होने पर	परिणमा देने पर
१४	३१	? परिणामिदे प्रे० का०	×
१९	६-७	णिद्देसदेसणादो	णिद्देसदंसणादो
२०	१०	ꙮ चरिमो य	(१५७) ꙮ चरिमो य
२१	१५	गवेसणट्ठ	गवेसणट्ठं
२२	१०	दोसाणुवलभादो	दोसाणुवलंभादो
२२	११	अथेत्यय	अथेत्ययं
२३	२	देसघादि,	देसघादि-
२३	३	वुत्त	वुत्तं
२३	८	लद्धिकम्मसत्त	लद्धिकम्मंसत्तं
२४	९	मदिआवरणदि	मदिआवरणादि
२४	१०	भयणिज्जसरू, वेणेदस्स	भयणिज्जसरूवेणेदस्स
२५	१	सामाणं	सामण्णं
२६	२	समाराहोणासंभवो	समारोहणासंभवो
२६	१२	सुगम	सुगमं
२७	१३	संपत्ते	संपत्तो
२७	१९	एक ही	एकट्ठी के

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८	२१	आति	आती
२९	११	देसाभासयं	देसामासयं
३१	९	परिणामप्पाइय	परिणामप्पप्पाइय
३२	७	देसाभासय	देसामासय
३२	२२	देखो	देखी
३३	६	पंचण्हमंतराइयाणं	पंचण्हमंतराइयाणं
३४	८	देसघादि	देसघादि
३५	११	पयाद	पयद
३६	६	कम्माण	कम्माणं
४३	२५	सग्रहकृष्टि	संग्रहकृष्टि
४४	४	वेदेंते	वेदेंतो
४४	६	किट्टिए	किट्टीए
४६	१२	रसमि त्ति ।	रसमित्ति ।
४७	११	चरिमकिट्टि	चरिमकिट्टि
४७	२४	क्षपणा	संक्रमण
४८	१०	खवेदिज्जंति	खवेज्जंति
५०	२०	क्या	×
५२	३	हादि	होदि
५२	७	सुगम	सुगमं
५४	९	ए भणिदे	एवं भणिदे
५४	१५	भासागाहाण	भासगाहाण
५९	६	ण,	ण
५९	१०	अणभागेसु	अणुभागेसु
५९	२०	संभव नहीं है । उस काल में	संभव नहीं है । इस कारण से ''ण सव्वेसु ठिदिविसेसेसु'' ऐसा कहा गया है ।
६०	५	मज्जिम	मज्झिम
६१	९	णियमो	णियमा
६५	३	पच्छासुत्तं	पुच्छासुत्तं
६७	२५	क्या अनन्तर	क्या अनन्त
६८	६	सुगम	सुगमं
६९	१	किट्टीवेगम्मि	किट्टीवेदगम्मि
६९	२५	खेद है ! कि	यह जानना चाहिए कि
७०	३	किट्टी कम्मंसिग	किट्टीकम्मंसिग
७१	१२	वड्ढीए	वड्ढीए
७२	१२	संकमगे	संकामगे
७८	८	सत्तमा	सत्तमी
८२	१४	उदीदि	उदीरेदि
८४	९	उद्दीण्णा	उदिण्णा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८५	२	संकमेदि	संकमदि
८७	४	ते वप्पा[१]	तेवप्पा[१]
८८	२४	परिणमर्ता	परिणमती
८९	३	समयणाए	समयूणाए
९०	१३	बेदिज्जमाणिगा,	बेदिज्जमाणिगा
९२	१४	पूर्वबेदित्	पूर्वबेदित
९३	२	दुसभयूण	दुसमयूण
९७	२२	आन	आने
९८	९	एवमेत्तिएण	एवमेत्तिएण
१०३	११	तुव्विल्ल	पुव्विल्ल
११२	१०	सुतमाह—	सुत्तमाह—
११२	१४	पढमट्ठिदीए	पढमट्ठिदीए
११३	७	खवेमाणस्य	खवेमाणस्स
११५	२	कुदो	×
११५	३	§ २७६ एत्तो	§ २७६ कुदो ? एत्तो
११९	३	अणुसमयमोबट्टिज्जमाण	अणुसमयमोबट्टिज्जमाण
१२०	१२	ढक्कबिदियसमये	दुक्कबिदियसमये
१२३	१	सपहि	संपहि
१२६	६	कम्मोदय	कम्मोदयं
१३३	२	ज्ञानवराग्यातिशय-	ज्ञानवैराग्यातिशय-
१३७	१९	ही	भी
१३९	१८	पीरसमाप्ति में	परिसमाप्ति में
१४५	१३	दुगम-मणिवुण	दुगममणिवुण
१४८	७	संबंधेणव	संबंधेणेव
१४९	१२	णिक्खिमाणो	णिक्खिवमाणो
१५०	६	विस्समाग	विस्समाण
१५४	५	कवाउ	कवाड
१५९	११	मवसंहरेमाणो	मुवसंहरेमाणो
१६०	२९	समय में लोकपूरण	समय में अन्तर अर्थात् लोकपूरण
१७४	८	होदि । गयत्थमेदं सुत्तं ।	होदि ।
१७७	२४	§ ३८३ अब कृष्टिगत	§ ३८३ यह सूत्र गतार्थ है । अब कृष्टिगत
१८३	३	शीलानामकाधिपत्य	शीलानामेकाधिपत्य
१८५	२३	पद के	काल के
१९३	३	मनोज्ञां	मनोज्ञा
१९४	११	तस्सहृवो	तस्सरूवो